संसद् और संसदीय प्रक्रिया

संसद् और संसदीय प्रक्रिया

भूमिका लेखक

आचार्य नरेन्द्रदेव

(उप-कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

लेखक

परिपूर्णानन्द पैन्यूली

दिसम्बर १९५२

प्रकाशक—
गढ़वाली जन-साहित्य परिषद्, टिहरी

मूल्य ५)

मुद्रक
काशी विद्यापीठ मुद्रणालय बनारस, छावनी।

भूमिका

यह लोकतन्त्र का युग है और प्रायः सभी देशों में शासन-सूत्र जनता के हुए प्रतिनिधियों के हाथ में आया है। भारतवर्ष में भी नये संविधान के गार लोकतन्त्रात्मक गण राज्य की स्थापना हुई और केन्द्र तथा ों में बालिग मताधिकार के अनुसार चुने हुए प्रतिनिधियों की धारा गाएं बनी हैं और उनके बहुमत दल के मन्त्रिमण्डल बने हैं। धारा-पाओं का कार्य-संचालन एक विशेष प्रक्रिया के अनुसार होता है। अंग्रेजी ाषा में इस प्रक्रिया के सम्बन्ध में बहुत सी पुस्तकें हैं पर हिन्दी भाषा में सी पुस्तकों का सर्वथा अभाव है। हमारी धारा-सभाओं की कार्यवाही अब हिन्दी भाषा में होनी आवश्यक है और कितनी धारा-सभाओं में कार्य-गाही हिन्दी में होने भी लगी है। अतः संसदीय प्रक्रिया के सम्बन्ध में हिन्दी भाषा में पुस्तकों का होना बहुत आवश्यक है। श्री परिपूर्णानन्द पैन्यूली ने इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये इस पुस्तक को लिखा है।

पुस्तक के प्रारम्भ के अध्यायों में लेखक ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ाय से ब्रिटिश शासन-काल के अन्त तक भारतीय संविधान के विकास का क्षेप्त इतिहास लि... ज्यों-ज्यों राजनीतिक जागृति बढ़ती गई अंग्रेज ... धीरे-धीरे शासन का थोड़ा-थोड़ा अधिकार भारतवासियों को ... लेखक ने यह दिखलाया है कि किस प्रकार ५७ की क्रान्ति के बाद शासन-सूत्र ईस्ट इन्डिया कम्पनी के हाथ से निकल कर ब्रिटिश संसद् के हाथ में आया और किस प्रकार धीरे-धीरे १८६१, १८९२, १९०९, १९१९ था १९३५ के कानूनों के अनुसार धारा-सभाएं स्थापित हुई और उनमें चुने हुए प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ती गई और अन्त में जन-आन्दोलन की तीव्रता के फलस्वरूप द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अंग्रेजों को भारत में शासन करना असंभव प्रतीत होने लगा और वे हिन्दुस्तान छोड़कर अपने देश को वापस चले गये।

पुस्तक के द्वितीय खण्ड में लेखक ने भारत के नये संविधान की आलोचना की है और उसकी विशेषताओं का उल्लेख किया है। नये संविधान के अनुसार केन्द्रीय तथा प्रदेश की धारा सभाओं का किस प्रकार निर्माण हुआ है, चुनाव सम्बन्धी क्या नियम हैं और धारा सभाओं का किस प्रकार चुनाव होता है, इन सबका वर्णन इस भाग में किया गया है।

पुस्तक के अन्तिम भाग में संसदीय प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। धारा सभा के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष आदि का चुनाव किस प्रकार होता है, धारा सभाओं की कार्यवाही का किस प्रकार सञ्चालन और नियमन होता है, सदस्यों को धारा सभाओं में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, प्रश्न आदि पूछने, कार्य-स्थगन के प्रस्ताव पेश करने तथा विधेयक उपस्थित करने और उनके पारित करने की क्या प्रक्रिया है, उदाहरणों के साथ इन सबका वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

अब धारा सभाओं में हिन्दी भाषा के द्वारा काम हो रहा है और बहुतसे सदस्य केवल हिन्दी भाषा ही जानते हैं। अंग्रेजी से अनभिज्ञ होने के कारण वे इस विषय की अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों से लाभ नहीं उठा सकते। उनके लिये यह पुस्तक बड़े काम की होगी। लेखक ने, निस्सन्देह, बड़े परिश्रम से इस स्तक को तैयार किया है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
२९ दिसम्बर १९५२

नरेन्द्रदेव

प्रस्तावना

किसी देश की राजकीय व्यवस्था की नींव उसके संविधान पर ही टिकती है। आज का भारत एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। भारत का संविधान भी गणतन्त्र पर निर्मित है और उसकी सरकार का स्वरूप संसदीय है। हमारी संसदीय प्रक्रिया बहुत कुछ ब्रिटिश संसदीय प्रक्रिया के अनुरूप है और ब्रिटिश संसदीय प्रक्रिया पर अंग्रेजी में अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, किन्तु भारत की संसदीय प्रक्रिया पर अब तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई है। हिन्दी में तो, जहां तक मुझे ज्ञात है, संसदीय प्रक्रिया के सम्बन्ध में एक भी पुस्तक नहीं लिखी गई है। प्रस्तुत पुस्तक में, जो संविधान और संसदीय विषयों में रुचि रखने वाले लोगों के लिये लिखी गई है, उक्त कमी को दूर करने का यत्किंचित प्रयास किया गया है। आशा है स्कूल और कालिज के छात्रों के लिये भी यह पुस्तक उपयोगी होगी।

आवश्यक सामग्री के अभाव में तथा स्वल्प साधन होने के कारण लेखक को इस पुस्तक के लिखने में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। संविधान और संसदीय प्रक्रिया सम्बन्धी पुस्तकें हमारे पुस्तकालयों में अत्यल्प मात्रा में है। जो कुछ हैं भी वे विदेशी लेखकों द्वारा विदेशी भाषा में अपने देश के सम्बन्ध में लिखी हुई हैं। अंग्रेजी शब्दों के लिये उपयुक्त पारिभाषिक शब्द भी नहीं मिल पाते। हमारी राष्ट्रीय सरकार इस कार्य को अभी पूर्णतः हाथ में नहीं ले पायी है। भारतीय संसद् की प्रक्रिया नियमावली तक का, जो अंग्रेजी में लिखी है, हिन्दी में अनुवाद नहीं हो पाया है। हिन्दी में जिन विषयों का अनुवाद है वह भी अधिक क्लिष्ट और दोषपूर्ण होने के कारण सन्तोषजनक नहीं है। भारत के संविधान का हिन्दी संस्करण इसका एक प्रमाण है। लेखक ने इस पुस्तक को यथासंभव सरल भाषा में लिखने का प्रयास किया है। संविधान और संसदीय

प्रक्रिया सम्बन्धी अध्यायों में प्रायोगिक शब्दों के लिये उसी शब्दावली का प्रयोग किया गया है जो भारत सरकार द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दों की सूची में है। इसलिये भाषा कहीं-कहीं अनिवार्यतः क्लिष्ट हो गई है। पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक शब्दों की एक सूची भी परिशिष्ट के रूप में जोड़ दी गई है।

पाठकों की सुविधा के लिये "संसद् और संसदीय प्रक्रिया" को तीन भागों में विभक्त किया गया है। पहले भाग में भारत के सवैधानिक विकास का विश्लेषण किया गया है। दूसरे भाग में विधान सम्बद्ध संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण है और तीसरे भाग में भारत की संसदीय प्रक्रिया दी गई है। पुस्तक को यथासम्भव रोचक और सूचनाप्रद बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक को लिखने में जिन पुस्तकों की सहायता ली गई है उनकी सूची मैं पुस्तक के अन्त में दे रहा हूँ। उनके अलावा बहुत-सी पत्र-पत्रिकाओं से भी सहायता प्राप्त हुई है। मैं उन सब लेखकों और पत्र पत्रिकाओं के सम्पादकों, तथा उत्तर प्रदेश विधान सभा पुस्तकालय और श्री काशी विद्यापीठ पुस्तकालय का ऋणी एवं कृतज्ञ हूँ।

मैं उन मित्रों का, जिन्होंने इस पुस्तक के लिखने में अपनी अमूल्य सहायता और सुझाव दिये, अत्यन्त आभारी हूँ, विशेषकर काशी विद्यापीठ के पीठस्थविर श्री चन्द्रशेखर अस्थाना का, जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर पुस्तक की त्रुटियों को दूर करने और इसे इतना शीघ्र छपवाने की व्यवस्था की।

मैं उन मित्रों का अत्यन्त आभारी हूँगा जो इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने का सुझाव देंगे।

टिहरी, —परिपूर्णानन्द पैन्यूली

२७–१२–५२

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

भारत का संवैधानिक विकास १

१—ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना १

१७६५— ३
१७७३ ३
१७८४ ४
१८१३ ६
१८३३ ७
१८५३ ८
१८५८ १०
१८६१ ११
१८९२ १३
१९०९ १६
१९१९ २१

२—१९३५ का विधान २५

चुनाव-क्षेत्रों की सदस्य-संख्या २८
गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार ३१
जनता का विरोध ३२

३—क्रिप्स-योजना और उसके बाद ३७

वेवेल-योजना ४०
मंत्रि-मिशन ४२
राजाओं की स्थिति ४८
माउन्टबेटेन-योजना ५५

४—ब्रिटिश लोक-सभा का भारतीय स्वतंत्रता कानून ५४
५—संविधान ५८
विकसित और निर्मित संविधान ६१
कठोर और लचकदार संविधान ६२
लिखित और अ-लिखित संविधान ६३
संसदीय और अध्यक्षात्मक संविधान ६५
६—भारतीय संविधान ६६
७—भारतीय संविधान की विशेषता ७१
शक्तिशाली संघ ७४
शक्ति का श्रोत जनता ७७
नागरिक और उसके मूल अधिकार ७९
मूल अधिकार ८०
राज्य की नीति के निर्देशक तत्व ८५

संघ कार्यपालिका ८५

८—राष्ट्रपति ८७
राष्ट्रपति का चुनाव ८९
राष्ट्रपति के अधिकार ९०
राष्ट्रपति का कार्य-काल ९३
महाभियोग ९४
उप-राष्ट्रपति ९५
उप-राष्ट्रपति का चुनाव ९५
९—मंत्रि-परिषद ९६
दलीय सरकार ९८
मंत्री की योग्यता ९९
गोपनीयता की शपथ १००
मंत्रि-परिषद् के सदस्य १०१
मंत्रि-परिषद के अधिकार १०५
प्रधान मंत्री १०७
अविश्वास का प्रस्ताव ११०

व्यवस्थापिका १११

१०—संसद् १११

सदस्यों का भत्ता ११३

११—राज्य-परिषद् ११५

१२—लोकसभा १२५

अध्यक्ष १२६

अध्यक्ष का चुनाव १३०

लोकसभा पर अंकुश १३३

१३—संसदीय प्रक्रिया में दलों का महत्व १३४

दलों की की मान्यता १३५

सत्तारूढ़ दल १३७

विरोधी दल १३६

दलीय निष्ठा बनाम देश-भक्ति १४३

गुटबन्दी १४६

१४—सचेतक १४६

१५—मतदान क्यों, कैसे और किस लिये १५७

दल और स्वतंत्र उम्मीदवार १५७

चुनाव विधि १५६

उम्मीदवार १६५

गत चुनाव की अन्य विशेषतायें १६६

१६—संसद् सदस्य १७१

१७—सचिवालय १७७

१८—न्यायपालिका १८४

१६—राज्य कार्यपालिका १८८

२०—प्रथम अनुसूची में भाग 'क' के राज्य १८६

राज्यपाल १८६

राज्यपाल के विधायिनी अधिकार १६०

मंत्रि-मण्डल १६१

२१—विधान-मण्डल १६१

विधान सभा १६१

विधान परिषद् १६४

विधानीय प्रक्रिया १६६

२२—प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' के राज्य १९७

२३—प्रथम अनुसूची के भाग 'ग' के राज्य २०५

२४—प्रथम अनुसूची के भाग 'घ' के प्रदेश २०८

छोटे राज्यः सफेद हाथी २०६

संसदीय प्रक्रिया

२५—अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सभापति-श्रेणि के चुनाव की प्रक्रिया २३०

उपाध्यक्ष का चुनाव २३५

सभापति-श्रेणि २३६

२६—सदन में सदस्यों द्वारा पालनीय नियम २३८

उपस्थिति-पत्रक २३८

गण पूर्ति २३८

सदस्यों के बैठने का क्रम २४१

२७—राष्ट्रपति का भाषण २४८

२८—संसद् की भाषा २५८

२९—भाषण की स्वतंत्रता २६३

३०—भाषण और वाद-विवाद की प्रक्रिया २६६

अध्यक्ष द्वारा नाम पुकारा जाना २६६

वांछनीय यथार्थवादिता २६७

विरोध की शैली २६६

अध्यक्ष की घण्टी २८१

३१—प्रश्नोत्तर २८४

३२—प्रस्ताव और संकल्प २९५

संकल्प २९६

३३—कार्य-स्थगन प्रस्ताव	३००
३४—अविश्वास के प्रस्ताव की प्रक्रिया	३०९
३५—विधि-निर्माण की प्रक्रिया	३१५
प्रथम वाचन	३१७
द्वितीय वाचन	३१८
तृतीय वाचन	३२१
धन विधेयक	३२२
अ-लोक-विधेयक	३२३
गिलोटिन	३२५
३६—वित्तीय प्रक्रिया	३२७
लेखानुदान	३३२
विनियोग विधेयक	३३३
प्राक्कलन समिति	३३४
३७—विशेषाधिकार	३३६
विशेषाधिकार समिति	३४३
३८—लाभ का पद	३४५
३९—परिशिष्ट	
,, (क)	३४६
,, (ख)	३५३
,, (ग)	३६६

संवैधानिक
विकास की
पृष्ठभूमि

भारत का संवैधानिक विकास

किसी भी देश का संविधान एक अप्रत्यशित घटना नहीं होती, बल्कि उसके इतिहास और आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन के क्रमिक-विकास की उपज होता है। स्वतंत्र भारत का संविधान भी ब्रिटिश शासन के आरंभ से चली आ रही राज्य व्यवस्थाकी अंतिम कड़ी है। संवैधानिक विकास की यह कहानी आरंभ से ही इस बात पर निर्भर रही है कि केन्द्र अधिक शक्तिशाली हो या उसके अन्तर्गत इकाइयां। पहले-पहल गवर्नर-जनरल के अधिकार बहुत कम थे। किन्तु ज्यों-ज्यों ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य-विस्तार होता गया और उसने अपनी प्रशासकीय सुविधाओं के लिये प्रेसिडेंसियों का पुनर्निमाण आरंभ किया गवर्नर-जनरल की शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और ब्रिटिश भारत के अन्तर्गत समस्त इकाइयों का स्रोत केन्द्रीय सरकार को बना दिया गया। कालान्तर में ये इकाइयां प्रान्त कहलाये जाने लगे। हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में जैसे-जैसे प्रगति होती गई, अपनी सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये ब्रिटिश सरकार भारतवर्ष के सबन्ध में संवैधानिक परिवर्तन करती गई। इसलिये नये संविधान का विवेचन करने से पूर्व उस ऐतिहासिक प्रगति का विश्लेषण कर लेना अपेक्षित है जिसके द्वारा संवैधानिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना

लन्दन के कुछ व्यापारियों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी नामक एक व्यापारिक संस्था की स्थापना करके सन् १६०० में ब्रिटिश साम्राज्ञी एलीजावेथ से पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिये राज-पत्र प्राप्त किया। राज-पत्र में उन्हें "भूमि हस्थगत करने, शस्त्रास्त्रों द्वारा उसकी रक्षा करने, सिक्के बनाने और अपने अधिकार क्षेत्र के लिये न्याय-व्यवस्था" करने का अधिकार मिला। उस समय अंग्रेज व्यापारी यह कल्पना भी नहीं करते थे कि कालान्तर में

भारतवर्ष की सार्वभौम सत्ता उनके हाथ लग जायगी और वे इस देश के स्वामी होंगे। जिस क्रम से उन्होंने धीरे-धीरे अपना आधिपत्य किया वह शक्ति उन्हें इन तीन सूत्रों से प्राप्त हुई। (१) ब्रिटेन के इस कानून के आधार पर कि अंग्रेज नागारकों द्वारा विजित भूम सवैधानिक रूप से सम्राट् की सरकार की मिल्कियत होगी (२) कम्पनी को समय-समय पर मिले राज-पत्र, और (३) ब्रिटिश लोक-सभा द्वारा बनाये गये कानून। पहले राज-पत्र के द्वारा कम्पनी को अमेरिका, अफ्रीका, एशिया और पूर्वी द्वीप-समूहों के साथ व्यापार करने की सुविधा मिली।* भारतवर्ष में कम्पनी ने सूरत (१६१३), मसली पट्टम (१६१६), हरिहरपुर (१६३३), मद्रास (१६४), बम्बई (१६६८) और कलकत्ता में (१६९९) में कारखाने खोले। कम्पनी का व्यापार सन्तोष-जनक रूप से चलने की अवस्था में उसे पुनः १५ वर्ष के लिये बढ़ाने की व्यवस्था की गई थी। राजा चार्ल्स द्वितीय ने कम्पनी को (१६६१) युद्ध सामग्री का आयात करने और अपने व्यापारिक हितों के लिये देशी नरेशों के साथ युद्ध अथवा संधि करने का अधिकार दिया। सन् १७६३ में कम्पनी को बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक विद्रोह का मुकाबिला करने के लिये फौजी कानून लागू करने का अधिकार मिला। भारत के व्यापार पर कम्पनी का एकाधिपत्य स्थापित करने और तदनुसार यहां के आर्थिक ढांचे को कम्पनी की नीति के अनुरूप बदलने के लिये उसे भारतीय सिक्कों के मुद्रण का अधिकार मिला था। उसके अनुसार कम्पनी ने १६७६ में बम्बई में अपनी पहली टकसाल बनायी।

भारत में अन्य श्वेतांग व्यापारियों से (पुर्तगाली, डच और फ्रान्सीसी) अंग्रेजों की प्रतिद्वन्द्विता थी। किन्तु चूंकि उन्हें ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भांति अपने देशों की सरकार का पूरा समर्थन प्राप्त न था, न उनकी समुद्री शक्ति अंग्रेजों के समान सुदृढ़ थी, और न वे इतने कार्य-पटु तथा अवसर से लाभ उठाने वाले ही सिद्ध हुए इसलिये वे अंग्रेजों के आगे न टिक सके।

---

* *A. B. Keith.* A Constitutional History of India, PP. 2—3.

औरंगजेब की मृत्यु के पूर्व ही मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था। सन् १७६१ तक वह साम्राज्य का शव मात्र रह गया था। चतुर अंग्रेज व्यापारियों ने इस स्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया और अपनी साम्राज्य लिप्सा की पूर्ति में वे अग्रसर हुए।

सन् १७५७ में प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब को परास्त करके और उसके पश्चात् तंजौर, कर्नाटक, हैदराबाद आदि क्षेत्रों को आधीन करके कम्पनी का राज्य-विस्तार शुरू हुआ। इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारत में ब्रिटिश राज्य का श्रीगणेश प्लासी के युद्ध में उनकी विजय से हुआ।* ईस्ट इण्डिया कम्पनी अब केवल व्यापारिक संस्था न रहकर एक शासक संस्था बन गई थी।

१७६५–१८८५— जार्ज तृतीय के शासन काल में सन् १७६५ में बंगाल (बिहार और उड़ीसा सहित) की दीवानी मिल जाने से कम्पनी की प्रभुता कायम हो गयी। भूमि-कर वसूल करने के लिये उसने तरह-तरह के अत्याचार किये। जनता शोषण की चक्की में बुरी तरह पिसने लगी।† जनता के बढ़ते हुए असन्तोष से ब्रिटेन की सरकार को चिन्ता हुई और उसने अनुभव किया कि इतनी तेजी से शोषण का यह क्रम जारी रहा तो देश हाथ से निकल जायगा। इसलिये उसने कम्पनी के अधिकार क्षेत्र की प्रशासकीय व्यवस्था पर कानूनी नियंत्रण करने का संकल्प किया।

१७७३— फलतः सन् १७७३ में ब्रिटिश लोकसभा में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के नाम से एक कानून बना जिसके अनुसार कम्पनी के राजनीतिक अधिकारों की व्याख्या की गई और उसके अधिकार क्षेत्र पर ब्रिटिश लोकसभा का नियंत्रण स्थापित किया गया। बंगाल के गवर्नर को गवर्नर-जनरल का पद दे दिया

* Ilbert: Government of India, P. 37.

† "Never before the the natives experienced a tyranny which was at once so skilful, so searching and so strong....whole districts which had been populous and flourishing were at last depopulated...."—Lacky.

गया और उसे सहायता देने के लिये चार व्यक्तियों की एक कौन्सिल नियुक्त की गई। मद्रास और बम्बई प्रेसिडेंसियों को गवर्नर-जनरल के आधीन कर दिया गया। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल की नियुक्ति तथा उन्हें अपदस्थ करने का अधिकार कम्पनी के हाथ से छीनकर ब्रिटिश राजा के हाथ में सौंपा गया। कम्पनी के अधिकार-क्षेत्र में शांति और सुव्यवस्था कायम रखने के संबन्ध में कानून बनाने और बाह्य आक्रमण से उनकी रक्षा का अधिकार गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौन्सिल को दिया गया। कलकत्ते में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई और गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौन्सिल को आदेश दिया गया कि वे सर्वोच्च न्यायालय की स्वीकृति लिये बिना किसी कानून को लागू न करें और न ऐसा कानून ही बनायें जो इंगलैंड के प्रचलित कानूनों के विरुद्ध हो।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट को कार्यान्वित करने में कदम-कदम पर अड़चनें पैदा होने लगीं, क्योंकि वह मौलिक रूप से दोषपूर्ण था। सर्वोच्च न्यायालय तथा गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिल का आपस में सहयोग नहीं रहा। कौन्सिल के सदस्य भी सदा गवर्नर-जनरल का विरोध करते रहे। और चूंकि बहुमत का निर्णय ही मान्य समझा जाता था, इसलिये अकेला गवर्नर-जनरल कौन्सिल के सम्मुख सर्वथा शक्तिहीन था। इनके अतिरिक्त प्रशासनाधिकारियों और कम्पनी के व्यापारियों में उत्तरोत्तर कटुता बढ़ती गई जिसका कुप्रभाव प्रशासन तथा व्यापार दोनों पर पड़ा। सन् १७८१ में ब्रिटिश लोक सभा में इस कानून में संशोधन हुआ जिसके द्वारा गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौन्सिल के आपसी संबन्धों, और सर्वोच्च न्यायालय के साथ उनके संबन्धों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। किन्तु इससे भी कोई अन्तर नहीं हुआ। आवश्यकता इस बात की थी कि कम्पनी के अधिकारों में ही आमूल परिवर्तन कर दिया जाय।

१७८४— इस बीच इंगलैंड की सरकार में परिवर्तन होगया और पिट नया प्रधान मंत्री बना। उसने सन् १७८४ में लोक सभा द्वारा एक कानून बनवाया जिसका उद्देश्य कम्पनी पर ब्रिटिश सरकार का आधिपत्य स्थापित करने

का था। इस कानून के द्वारा गवर्नर-जनरल की नियुक्ति सम्राट् द्वारा न होकर लंदन में स्थापित बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के द्वारा होने लगी। बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल में ब्रिटिश सरकार के दो मन्त्री तथा प्रिवी कौन्सिल के चार सदस्य थे। उसके आधीन यहां की सेना, प्रशासन तथा आय-व्यय का नियन्त्रण सब कुछ था। इस कानून के द्वारा प्रशासन में भी परिवर्तन किया गया। गवर्नर-जनरल की कौन्सिल के सदस्यों की संख्या घटा कर तीन कर दी गई। उसके अधिकार मद्रास और बम्बई प्रेसिडेंसियों में बढ़ा दिये गये। प्रेसिडेंसियों के लिये डाइरेक्टर्स द्वारा दी गई ऐसी आज्ञाओं का, जिनकी गवर्नर-जनरल को कोई सूचना न हो, पालन करना अनिवार्य कर दिया गया।* जिन राजाओं के विरुद्ध युद्ध की तैयारी हो या युद्ध चल रहा हो उन्हें छोड़ अन्य किसी राजा के साथ युद्ध अथवा संधि करने का अधिकार बिना डाइरेक्टर्स की आज्ञा के गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिल को नहीं था। इसी प्रकार के प्रतिबन्ध प्रेसिडेंसियों के गवर्नरों पर भी थे। प्रेसिडेंसियों का प्रशासन सुचारु रूप से चलाने के लिये गवर्नरों के साथ तीन व्यक्तियों की कौन्सिल की नियुक्ति की गई। आय-व्यय तथा देशी नरेशों के साथ सम्बन्ध प्रेसिडेंसियों से छीनकर गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिल के हाथ में सौंपे गये। अपने कर्मचारियों की नियुक्ति की कम्पनी को स्वतन्त्रता थी। उसके डाइरेक्टर्स की तीन आदमियों की एक गुप्त समिति बनाई गयी। बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के गुप्त आदेश इस समिति के द्वारा कार्यान्वित किये जाते थे।

पिट्ट के कानून द्वारा भारतीय प्रशासन में दोहरी व्यवस्था स्थापित हुई। सन् १७८६ में इस कानून में भी संशोधन किया गया जिसके अनुसार गवर्नर-

---

* "The power of the governor-general and council over the minor presidencies was to extend not only to transactions with the country powers or war or peace, but also to any other points referred to their control by the Court of Directors. Moreover, the presidencies must obey the governor-general unless they had received different orders from the directors, which were not known to the governor-general"

Keith: ibid PP. 96—97

जनरल को अधिकार दिया गया कि आवश्यकता पड़ने पर कौन्सिल की सम्मति की भी उपेक्षा करके काम कर सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस कानून के द्वारा भारत के प्रशासन में ब्रिटिश सरकार की जिम्मेदारी बढ़ गई और कम्पनी अपने रहे-सहे अधिकारों से वंचित हो गई।* किन्तु व्यापार के लिये उसे दिये गये राज-पत्र की जब १७९३ में अवधि समाप्त होने को हुई तब उसे लोक सभा ने २० वर्ष के लिये और बढ़ा दिया। मद्रास और बम्बई के गवर्नरों को भी अपनी प्रेसिडेंसियों में न्यूनाधिक मात्रा में वे सब अधिकार मिल गये जो गवर्नर-जनरल को प्राप्त थे। किन्तु उनके ऊपर गवर्नर-जनरल का आधिपत्य रहा। बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के सदस्यों का वेतन तथा कार्यालय का व्यय भारत की आय से होने लगा। बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल तथा बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स में मतभेद हो जाने की स्थिति में ब्रिटिश राजा को निर्णय देने का अधिकार सौंपा गया। इस कानून के द्वारा राजा स्वेच्छा पूर्वक जब चाहे गवर्नर-जनरल को वापस बुला सकता था।

१८१३—इस बीच यूरोप तथा भारतवर्ष में बहुत से परिवर्तन हुए। नैपोलियन ने यूरोप में अंग्रेजी माल का आना बन्द करा दिया। इसलिये अंग्रेज व्यापारियों के लिये भारत को अड्डा बनाकर पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के अतिरिक्त और कोई उपाय न था। इधर वैलेजली की नीति के फलस्वरूप कम्पनी का राज्य विस्तार काफी हो गया था। कम्पनी के राज-पत्र की अवधि १८१३ में समाप्त होने जा रही थी, उसे कुछ संशोधनों के साथ पुनः बीस वर्ष के लिये बढ़ा दिया गया। १८१३ के कानून के अनुसार

* "In the year 1786, therefore, we find the English sovereignty openly established in India under a Governor-General invested with plenary authority by the representatives of the English nation. The transformation of the chief governor-ship of a chartered commercial company into a territorial pro-consulship was now virtually accomplished; and with the accession of Cornwallis there set in a new era of accelerated advance."—Sir Alfred Lyall.

अंग्रेज जाति का कोई भी व्यापारी भारत के साथ व्यापार कर सकता था। कम्पनी के पास केवल चाय का व्यापार तथा चीन के साथ व्यापार करने का एकाधिकार रह गया।

१८१३ के कानून में यह स्पष्ट लिखा था कि भारत वर्ष में कम्पनी का जो राज्य विस्तार हुआ है उसकी राज सत्ता ब्रिटेन के राजा के हाथ में रहेगी। कम्पनी को आदेश दिया गया कि वह भारत में शिक्षा पर एक लाख रुपया वार्षिक व्यय करे। इस कानून के द्वारा गवर्नर-जनरल के अधिकार और अधिक विस्तृत कर दिये गये

१८३३ — इस कानून की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लार्ड मेकाले ने एक स्थल पर लिखा है कि "१७८४ और १८५८ ईस्वी के भीतर जितने कानून बने उनमें १८३३ का कानून भारत सरकार के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।" इस कानून के द्वारा भारतवर्ष की प्रशासकीय व्यवस्था का लगभग सम्पूर्ण रूप से केन्द्रीकरण कर दिया गया। ब्रिटिश राजा ने घोषणा की कि कम्पनी द्वारा प्राप्त की गई भूमि पर मेरी सरकार का अधिकार है। उसके व्यापार सम्बन्धी एकाधिकारों को समाप्त कर दिया गया। किन्तु प्रशासन में कम्पनी का अभी भी हाथ था। गवर्नर जनरल के कानूनी अधिकारों में एक और कड़ी जोड़ दी गई। उसकी कौंसिल में एक कानूनी सदस्य की वृद्धि करके उसकी सदस्य-संख्या पुनः चार कर दी गई। कानून बनाने के समस्त अधिकार गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल को सौंप दिये गये।

किसी प्रान्त के पुराने कानून में संशोधन करने अथवा नया कानून बनाने की आवश्यकता होती तो गवर्नर उसे सुझाव के रूप में गवर्नर-जनरल को लिख भेजते और गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल उस पर अपना निर्णय देते। १८३३ के ऐक्ट के द्वारा गवर्नर-जनरल किसी कानून को, अथवा कानून के किसी भाग को यदि वह ब्रिटिश लोकसभा द्वारा निर्मित कानून के प्रतिकूल हो अथवा उसके द्वारा ब्रिटिश अधिकृत प्रदेश की शान्ति और सुरक्षा को खतरा पैदा हो, तो उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन कर सकता था या उसे रद्द कर सकता था।

लार्ड मेकाले की अध्यक्षता में, जिन्हें पहला कानूनी सदस्य नियुक्त किया गया था, एक आयोग स्थापित किया गया जिसका कार्य भारत के कानूनों में संशोधन करना था। गवर्नर-जनरल को बंगाल के लिये एक पृथक गवर्नर नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। १८३३ के कानून द्वारा एक महत्व-पूर्ण बात यह कही गई कि कम्पनी की नौकरी के लिये केवल योग्यता का मापदंड माना जायगा, और धर्म, जाति तथा रंग के आधार पर किसी को अयोग्य करार न दिया जायगा।† किन्तु इस घोषणा का भी केवल कागजी महत्त्व था क्योंकि उसे कभी कार्य रूप में नहीं परिणित किया गया। शिक्षा तथा साहित्य प्रसार के लिये दस लाख रुपया वार्षिक व्यय करने का निश्चय किया गया। १८३५ में उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश की, जिसमें आगरा भी सम्मिलित था, स्थापना की गई और उसका प्रबन्ध एक लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर को सौंपा गया।

१८५३— ईस्ट इण्डिया कम्पनी को नया राज-पत्र मिलने से पूर्व तीनों प्रेसिडेंसियों के नागरिकों ने ब्रिटिश लोक-सभा में आवेदन-पत्र भेजे जिनमें इस बात का आग्रह किया गया कि कम्पनी को अब कोई नया राज-पत्र न दिया जाय। इस बीच बीस वर्ष की अवधि में बहुत से परिवर्तन हो चुके थे। ब्रिटिश लोक-सभा में यह विचार धारा जोर पकड़ती जा रही थी कि कम्पनी के अधिकार सम्राट् को सौंप दिये जायँ। किन्तु कम्पनी के डाइरे-क्टर्स सर्व शक्तिमान थे, भारत के सबन्ध में वही निर्णायक मत देते थे। अतः कई प्रकार की शिकायतों के आने पर भी कम्पनी का राज-पत्र पुनः दुहरा दिया गया। किन्तु उसके अधिकारों में आंशिक कमी कर दी गई। बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की संख्या २४ से घटा कर १८ कर दी गई। उनमें भी ६ राजा द्वारा मनोनीत किये गये।

† कानून की धारा ८७ की भाषा इस प्रकार है:—"अब से योग्यता ही उपयुक्तता का सबसे बड़ा मापदण्ड होगा। निश्चित भू खण्डों का कोई भी निवासी या सम्राट की कोई भी प्रजा केवल धर्म, जन्म-स्थान, परम्परा, वर्ण या इनमें से किसी कारण से कम्पनी के आधिपत्य में कोई भी नौकरी या स्थान पाने से रोकी नहीं जा सकती।"

बंगाल, उड़ीसा और आसाम के लिये एक लेफ्टिनेन्ट–गवर्नर नियुक्त किया गया।

भारत के संवैधानिक विकास के मार्ग में १८५३ का कानून सबसे अधिक महत्त्व रखता है क्योंकि इसके द्वारा हमारे देश में संसदीय पद्धति का नामकरण हुआ। तथाकथित व्यवस्थापिका सभा में गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के चारों सदस्य, प्रधान सेनापति, सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश तथा एक सहायक न्यायाधीश, बंगाल, मद्रास, बम्बई तथा उत्तर पश्चिमी सूबों के एक-एक प्रतिनिधि, इस प्रकार बारह व्यक्ति सम्मिलित किये गये। व्यवस्थापिका सभा का कार्य बिल्कुल स्वतंत्र और सर्वविदित रखा गया और उसकी सब कार्यवाहियों को बाकायदा प्रकाशित किया जाने लगा। व्यवस्थापिका के नाम पर भारत के संवैधानिक इतिहास में यह कानून पहली कड़ी कहा जाता है। इस कानून के द्वारा ईस्ट-इण्डिया कंपनी को ब्रिटिश ताज के भारतीय क्षेत्रों का संरक्षक मान लिया गया और यह स्पष्ट कर दिया गया कि जब भी ब्रिटिश लोक सभा चाहेगी उससे ताज की मिल्कियत ले लेगी।

१८५३ का कानून लागू हुए अभी चार वर्ष भी न हुए थे कि भारत-वर्ष में एक क्रान्ति की लहर आ गई। अंग्रेजों के अत्याचारों से ऊबकर भारतीय जनता ने विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए १८५७ में स्वतंत्रता का बिगुल बजाया। राख में दबी हुई चिनगारी यकायक धधक उठी और भारतवासी श्वेतांगों पर टूट पड़े। उसमें जो कुछ हुआ उसका साक्षी इतिहास है। उसका हमें यहाँ विवेचन नहीं करना है।

जहाँ तक संवैधानिक स्थिति का संबन्ध है। १८५७ की क्रान्ति ने अंग्रेजों को सारी स्थिति पर पुनर्विचार करने के लिये बाध्य किया। उन्होंने अनुभव किया कि अन्य दोषों के अलावा व्यवस्थापिका संबन्धी खामियों को दूर करना अनिवार्य है। लार्ड मेकाले ने ठीक ही कहा था कि क्रान्ति तभी होती है जब एक ओर जनता की भावना निरंतर आगे बढ़ती रहती

है और दूसरी ओर विधान अपरिवर्तित रहता है। साम्राज्यवादी उद्देश्यों की पूर्ति और शोषण का क्रम जारी रखने के लिए उन्होंने यही अभीष्ट समझा कि कुछ संवैधानिक परिवर्तन करके जनता को शांत किया जाय।

१८५८— फलतः सन् १८५८ में ब्रिटिश लोकसभा ने गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट बनाकर अपने साम्राज्य के विस्तार में एक नये युग का सूत्रपात किया। इस कानून के द्वारा भारतवर्ष में द्वैध शासन का अन्त कर दिया गया और देश का शासन-प्रबन्ध पूर्णरूप से सम्राट् की सरकार के हाथ में चला गया। ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् में भारतीय प्रशासन को चलाने के लिये एक और मंत्री बढ़ा दिया गया।* भारत मंत्री को सहायता और सलाह देने के लिये उसकी अध्यक्षता में १५ व्यक्तियों की एक कौन्सिल नियुक्त की गई जिनमें ७ का निर्वाचन बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स करते थे और ८ राजा द्वारा मनोनीत होते थे। उन्हें १२०० पौन्ड वार्षिक वेतन मिलता था। भारत मंत्री तथा उसकी कौंसिल के सदस्यों का वेतन और उसके कार्यालय का सारा व्यय भारत को वहन करना पड़ा।

चूँकि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अविच्छिन्न अंग बन चुका था, इसलिये गवर्नर-जनरल अब सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में काम करने लगा। ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रों का प्रशासन करने के नाते वह वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल दोनों नामों से पुकारा जाने लगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कानून के द्वारा भारत की जनता के ऊपर तीन महाशक्तियां संयुक्तरूप से छा गईं। गवर्नर-जनरल का कार्य तो भारत में पांच वर्ष रहकर यहां शान्ति और सुरक्षा बनाये रखना तथा प्रशासन का अपना कर्त्तव्य

* One of His Majesty's principal Secretaries of State shall have and perform all such or the like powers and duties in anywise relating to the Government or revenues of India, and all such or the like powers over all officers appointed or continued under the Government of India Act, 1858, as if that Act had not been passed,"—Section 3, Govt, of India Act 1858

निभाना था। लोकसभा का भारत पर संवैधानिक अधिकार था। यहां के प्रशासन, न्याय आदि विभागों के सम्बन्ध में कानून बनाने और भारतवर्ष में संवैधानिक सुधार करने का अधिकार ब्रिटिश लोक-सभा के हाथ में था क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी से उसने सत्ता अपने पास ली थी। तीसरी शक्ति भारत मंत्री था जो यद्यपि लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी था, किन्तु उसका, उसकी कौंसिल और लन्दन स्थिति भारत कार्यालय का समस्त व्यय भारतवर्ष को देना पड़ता था। लोकसभा में इस व्यय का सूक्ष्म विवेचन मात्र होता था। ब्रिटिश सरकार भारतवर्ष में कहां कितना व्यय करती है, इसका विवरण कभी लोकसभा के सम्मुख नहीं रखा जाता था। सर (बाद में लार्ड) ल्योनर्ड कोर्टनी ने अपनी पुस्तक 'वर्किंग कान्स्टिट्यूशन ऑफ दि यूनाइटेड किंगडम' में इसका सुंदर शब्दों में उल्लेख किया है।*

१८५९— पंजाब को लेफ्टि-गवर्नर के आधीन एक प्रथक प्रान्त घोषित किया गया।

१८६१— लोक सभा का १८६१ का इन्डियन कौन्सिल ऐक्ट कई दृष्टिकोणों से अपनी विशेष महत्ता रखता है। इस कानून के द्वारा, गवर्नर-जनरल

---

* "The Secretary of State is a member of the Cabinet which must possess the confidence of the House of Commons. . . . No part of the expense involved in the Government of India comes before the House of Commons in Committee of Supply. The salary of the Colonial Secretary is voted by Parliament and there is thus a possibility of annually reviewing his policy in the full activity of the Parliamentary session. The salary of the India Secretary of State is paid by India and never comes before the House of Commons. At the end of the session, generally after the Appropriation Bill has been read a second time, the India Budget is submitted; and this consists of the review of the financial situation in India followed, after a desultory discussion, by a Resolution simply affirming that the India Accounts show certain totals of income and expenditure. It may be doubted whether this does not betray too great a jealousy of the House of Commons. If the salary of the Indian Secretary of State were submitted like the Colonial Secretary's to a vote, the opportunity for a real debate would be given which, experience suggests, would be used rather than

की कानून निर्मात्री कौन्सिल के सदस्यों की संख्या ६ से बढ़ाकर १२ कर दी गई। उनमें कम से कम आधे सदस्य गैर सरकारी रखने की व्यवस्था की गई। किन्तु इन सदस्यों को कानून बनाने में गवर्नर-जनरल को सलाह देने के अतिरिक्त और कोई अधिकार प्राप्त न था। जिस वर्ष यह कानून बना उसी वर्ष बम्बई और मद्रास में धारा सभा का निर्माण किया गया। उसके अगले वर्ष (१८६२) बंगालमें, फिर उत्तर पश्चिमी प्रान्त (१८८६), पंजाब (१८९७) और पूर्वी बंगाल तथा आसाम के क्षेत्र (१९०५) में धारा सभायें स्थापित की गई। प्रान्तीय धारा सभाओं में ४ से ८ तक सदस्य रखे गये जिनमें आधे गवर्नर द्वारा मनोनीत गैर सरकारी सदस्य होते थे। इस कानून के द्वारा पहली बार भारतवासियों ने व्यवस्थापक मंडलों के दर्शन किये। किन्तु जिन भारतवासियों को उनमें स्थान मिला वे शरीर से भारतीय होते हुए भी विचार-धारा मे अंग्रेजों के स्वामी भक्त सेवक थे। कर, मुद्रा तथा डाक; इन विषयों को छोड़ कर, क्योंकि इन पर प्रान्तीय धारा सभाओं को कोई अधिकार न था, अन्य विषयों में कानून बनाने के लिये गवर्नर-जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी।

केन्द्र में कानून बनाने वाली कौन्सिल में जो सदस्य मनोनीत होते उनमें प्रत्येक की अवधि दो वर्ष रखी गई। ब्रिटिश भारत के संबन्ध में कानून बनाने का उन्हें अधिकार था। गैर सरकारी सदस्यों को बिना गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति के बिल प्रस्तुत करने का भी अधिकार न था। इस प्रकार गवर्नर-जनरल को, जिसे पहले से ही व्यापक अधिकार प्राप्त थे, सारे भारतवर्ष की व्यवस्थापिका प्रणाली का सर्वेसर्वा बना दिया गया था। कानून निर्माण के संबन्ध में उसकी स्वीकृति भी अन्तिम नहीं थी। ब्रिटिश राजा भारत मन्त्री के द्वारा किसी भी कानून में आवश्यकतानुसार संशोधन कर सकता था या उसे रद्द करा सकता था। प्रोफेसर कावेल ने अपनी पुस्तक में (Courts and Legislative Authorities in India) भारत की व्यवस्थापिकाओं को 'कमेटियां' कह कर लिखा है कि उनसे सरकार को तो अपने प्रशासन में सम्मति तथा सहायता मिलती थी, और जनता को यह लाभ था कि जब

कभी कोई संवैधानिक परिवर्तन होता या अन्य कोई स्थिति पैदा होती तो उसकी सब लोगों को जानकारी हो जाती थी।*

१८६२ में लेजिस्लेटिव कौन्सिल की कलकत्ते में पहली बैठक हुई जिसका सभापतित्व लार्ड केनिंग ने किया। उसमें नौ अंग्रेज और तीन भारतीय सदस्य थे। सरकारी सदस्यों का स्पष्ट बहुमत था। उसकी बैठकें खुली होतीं और कार्यवाहियां प्रकाशित की जाती थीं। अध्यक्ष को कौन्सिल की बैठक को स्थगित करने, किसी भी विषय पर वाद-विवाद करने और मत-दान की अनुमति देने अथवा उस पर प्रतिबन्ध लगाने का पूर्ण अधिकार था। वह जब चाहे स्वेच्छा पूर्वक कौन्सिल को भंग भी कर सकता था। कौन्सिल का अध्यक्ष होने के नाते किसी भी प्रस्ताव या विधेयक को कानून बनने से पूर्व गवर्नर-जनरल की स्वीकृति प्राप्त होनी आवश्यक थी।

अखिल भारतीय विषयों में कानून बनाने का जो अधिकार केन्द्रीय लेजिस्लेटिव कौन्सिल को प्राप्त था, न्यूनाधिक मात्रा में वही अधिकार प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौन्सिलों को अपने सीमित क्षेत्रों में प्राप्त था।

१८९२– १८६१ को कौन्सिल ऐक्ट बहुत सीमित क्षेत्र में था। १८७० से लेकर १८८५ तक बहुत सी गैर–सरकारी संस्थायें जैसे ब्रिटिश इंडियन ऐसोसियेशन, बंगाल नेशनल लीग, बम्बई ऐसोसियेशन और महाजन सभा कौंसिलों में सुधार और उनके विस्तार के लिये आन्दोलन कर रही थीं। १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो जाने पर कांग्रेस ने भी

---

* "The Indian legislative Comjmittees are as mere committees for the purpose of making laws, Committees by means of which the Executive Government obtains advice and assisstance and the public derive the advantage of full publicity being ensured at every stage of the law-making process ... Such laws are in reality the orders of Government but they are made in a manner which ensures publicity in discussion and are enforced by the Courts and not by the executive." (Prof, Cowell: Courts and legislative Authorities n India)

कौन्सिलों में सुधार करने के संबन्ध में प्रस्ताव पास किये ।* १८९२ में लोकसभा ने इण्डियन कौन्सिल ऐक्ट बनाया । इस कानून के द्वारा केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई । केन्द्रीय धारा सभा में १८६१ के कानून के अनुसार आधे सदस्य मनोनीत किये जाते थे । अब वह संख्या कमसेकम १० और अधिक से अधिक १६ कर दी गई । बम्बई तथा मद्रास प्रेसिडेंसियों में धारासभा के सदस्यों की संख्या कम से कम ८ और अधिक से अधिक २० कर दी गई । पंजाब, बंगाल तथा उत्तर पश्चिमी प्रान्त और अवध के लिये यह संख्या क्रमशः ९, २० और १५ रखी गई । गवर्नर-जनरल को पांच सदस्य कलकत्ता चैम्बर्स ऑफ कामर्स की सिफारिश पर, तथा एक-एक सदस्य मद्रास, बम्बई, बंगाल और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त की धारासभाओं की सिफारिश पर केन्द्रीय धारासभा में मनोनीत करने का अधिकार मिला । उसी प्रकार प्रान्तीय धारासभाओं में नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों, विश्वविद्यालयों, व्यापार संघों, जमींदारों जैसी संस्थाओं की सिफारिश पर मनोनीत करने का अधिकार गवर्नरों को मिला ।

सदस्यों की संख्या में वृद्धि करने के साथ-साथ व्यवस्थापिकाओं के कुछ अधिकार भी बढ़ा दिये गये । उन्हें आय व्ययक पर वाद-विवाद करने का अधिकार प्राप्त हुआ किन्तु यह वाद-विवाद उसके अलग-अलग भाग को लेकर नहीं हो सकता था । समूचे आय व्ययक पर एक साथ विचार होता था । उस पर मत-विभाजन नहीं हो सकता था । सदस्य सार्वजनिक हित के प्रश्न पूछ सकते थे, अनुपूरक प्रश्न नहीं । कौन्सिल का अध्यक्ष जिस प्रश्न को अनुपयुक्त समझता उसे पूछने की आज्ञा नहीं देता था । यह आवश्यक

*१८८९ में कांग्रेस के अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास हुआ जिसमें कहा गया कि "जब तक हमारे देश की कौन्सिलों में हमारी जोरदार आवाज नहीं होगी और हमारे प्रतिनिधि भी निर्वाचित नहीं होंगे तब तक भारत का शासन सुचारु रूप से और न्याय पूर्वक रीति से कदापि नहीं चल सकता ।"

नहीं था कि व्यवस्थापिकाओं की सिफारिशें मानी जायं। एक तो मताधिकार इतना सीमित था कि एक वर्ग विशेष को गिने-चुने व्यक्तियों को व्यवस्थापिकाओं में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त था और जन-साधारण का उससे कोई वास्ता न था; और दूसरे व्यवस्थापिकायें इतनी पंगु थीं कि थोड़े से विषयों पर स्वल्प वाद-विवाद करने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सकती थीं।

जनता की भावना थी कि प्रशासन में भारतवासियों को अधिक से अधिक स्थान मिले और व्यवस्थापिकायें सच्चे अर्थों में प्रतिनिधि संस्थायें बनें। किन्तु सुधार की दिशा में ब्रिटिश सरकार कोई भी ठोस कदम उठाने को प्रस्तुत न थी। राष्ट्रीयता जोर पकड़ रही थी। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द आर्यसमाज का प्रचार करते हुए अपने विशेष ढंग से स्वराज्य की महत्ता लोगों को बतलाते थे। 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का पहला नारा लगानेवाले लोकमान्य तिलक बहुत बड़े विचारक, दार्शनिक और उग्र विचारों के राजनीतिज्ञ थे। १८६७ में उन्हें राजद्रोह के अपराध में काराग्रह में बन्द कर दिया गया। उस वर्ष हुए कांग्रेस अधिवेशन में भाषण देते हुए श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा,

"....अंग्रेजों ने अपने लिये मैग्नाकार्टा और हैबियसकार्पस प्राप्त किये हैं। उनके द्वारा उन्हें जो सुविधायें प्राप्त हैं वे उनके गौरव पूर्ण संविधान में सम्मिलित हैं। पर, मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती कि, वह शासन-विधान हमारा भी जन्म-सिद्ध अधिकार है। हम ब्रिटिश प्रजा हैं, इसलिए ब्रिटिश प्रजाजनों को जो विशेष अधिकार मिले हैं उनके हम भी अधिकारी हैं। हमें उन अधिकारों से कौन बंचित कर सकता है? हमने निश्चय कर लिया है और कांग्रेस इस बात का प्रण करेगी कि आप हम सब मिलकर इसके लिये एक गंभीर निश्चय करेंगे और अपना एक संघ और संगठन बनायेंगे। इस सभा-भवन से निकल कर इस ध्वनि को भारत-भर की जनता में फैलने दो, कि हम इस बातके लिये तुले हुए हैं। इस बात को जोर देनेमें हम किसी भी वैध उपाय को बाकी नहीं छोड़ेंगे, कि ईश्वर की छत्र-छाया

में ब्रिटिश प्रजाजन की हैसियत से हमारे भी वही अधिकार हैं जो अन्य ब्रिटिश प्रजाजनों के हैं और उनमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार किसी भी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं है।"*

लार्ड कर्जन की दुर्नीति के फलस्वरुप बंग-भंग आन्दोलन हुआ। सरकार ने दमन नीति का सहारा लिया। १६०६ में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया :

"यह देखते हुए कि देश के शासन में यहां के लोगों का कुछ भी हाथ नहीं है और वे सरकार से जो प्रार्थना करते हैं उन पर उचित रूप से ध्यान नहीं दिया जाता है, इस कांग्रेस की राय है कि बंग-विच्छेद के विरोध में उस प्रान्त में वहिष्कार का जो आन्दोलन चलाया गया वह न्याय-संगत था और है† ।"

अन्त में सन् १६११ में एक शाही घोषणा द्वारा बंग-भंग रद्द कर दिया गया।

१६०६— उस समय लार्ड मोर्ले भारत मंत्री के पद पर आसीन थे और लार्ड मिंटो भारत के गवर्नर-जनरल। सारी स्थिति का सिंहावलोकन करके उसकी गभीरता को देखते हुए दोनों इस परिणाम पर पहुंचे कि भारत में आंशिक सुधार कर दिये जायं और नरमदली लोगों का सहयोग प्राप्त किया जाय। दोनों ने मिलकर नये सुधारों की योजना प्रस्तुत की जिसे मोर्ले-मिंटो सुधार कानून (१९०९) कहा जाता है।

मोर्ले-मिंटो कानून (इन्डियन कौन्सिल ऐक्ट) के अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा सभाओं का विस्तार किया गया और निर्वाचन के आधार पर प्रतिनिधित्व की प्रणाली को अपनाकर भारतीत सदस्यों के अनुपात में वृद्धि कर दी गई। केन्द्रीय धारा सभा में गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल के १६ सदस्यों के अतिरिक्त ६० और सदस्य बढ़ा दिये गये। मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त प्रान्त, बिहार, उड़ीसा, आसाम और

---

* (१) डा० पट्टाभि सीतारमय्या. पृ. ३४ कांग्रेस का इतिहास,

† (२) डा० पट्टाभि—वही पृ. ४०

बर्मा में सन् १९०१ के इण्डिया कौंसिल ऐक्ट की धारा ५ को दिसम्बर १९०९ से लागू किया गया। कुछ विशेष निर्वाचन-क्षेत्र बनाये गये। अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचन की प्रणाली अपनायी गयी। नगरपालिकायें, जिला बोर्ड, विश्वविद्यालय, चेम्बर ऑफ कामर्स तथा जमींदारों द्वारा सदस्यों को चुनने का अधिकार दिया गया। केन्द्रीय धारा सभा में ६८ में से ३६ सरकारी, २५ निर्वाचित और ७ मनोनीत गैरसरकारी सदस्य रखे गये। प्रान्तीय धारा सभाओं में मनोनीत सदस्य दो प्रकार के थे—सरकारी तथा गैरसरकारी। सरकारी सदस्य अल्पसंख्या में थे। किंतु, बंगाल को छोड़कर अन्य प्रान्तों में उनका अनुपात इस प्रकार था कि सरकार मनोनीत सदस्यों की सहायता से धारा सभाओं में अपना स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लेती थी। केन्द्रीय धारा सभा में सरकारी सदस्यों का स्पष्ट बहुमत रखा गया। निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त कुछ पदेन सदस्य भी रखे गये। इस कानून के द्वारा ब्रिटिश सरकार का सबसे निन्दनीय और इतिहास पर एक कलंक का टीका लगानेवाला कार्य है, भारतवर्ष में साम्प्रदायिकता को स्थान देना है - उसके दुष्परिणाम आज हमारे सामने स्पष्ट हैं। इसशरारतपूर्ण कानून के द्वारा मुसलमानों को पृथकनिर्वाचन का अधिकार दिया गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अल्पसंख्यक जाति के विशेषाधिकारों की रक्षा के नाम पर दो सम्प्रदाय के लोगों को एक दूसरे के विरुद्ध भड़काया गया।

१९०९ के कानून के सम्बन्ध में धारासभाओं की प्रक्रिया का उल्लेख करना आवश्यक है। १९०१ के इण्डियन कौन्सिल्स ऐक्ट की धारा ५ के अनुसार बनाये गये विधान की प्रक्रिया के नियमों को दिसम्बर १९०९ में बंगाल, मद्रास, बम्बई, उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, आसाम और बर्मा की धारा सभाओं में कार्यान्वित किया गया। उन विषयों को छोड़कर जो वैदेशिक मामलों, गवर्नर-जनरल तथा भारत मंत्री के सम्बन्धों अथवा न्यायालयों से सम्बन्धित थे अन्य सार्वजनिक हित के विषयों पर विचार करने का धारा सभाओं को अधिकार मिला। नियमानुसार धारा सभा में प्रस्ताव रखने की १५ दिन पूर्व अग्रिम सूचना देनी आवश्यक थी, और उसका समर्थन

होना अनिवार्य था। प्रस्तावक को छोड़कर, जिसे उस पर दो बार बोलने का अधिकार प्राप्त था, अन्य सदस्यों को एकाधिक बार भाषण देने का अधिकार न था। किसी प्रस्ताव का विरोध करने या उस पर संशोधन रखने का अधिकार भी आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। पहले धारा सभाके सदस्यों को आय-व्ययक पर वाद-विवाद करने का अधिकार न था। अब उन्हें उस पर वाद-विवाद करने और उसकी कुछ मदों पर मत विभाजन का अधिकार मिल गया। सदस्यों को प्रस्ताव रखने और पूरक प्रश्न पूछने का भी अधिकार प्राप्त हुआ। किन्तु इतना सब होने पर भी धारासभाओं के प्रस्ताव सरकार के लिये सुझाव मात्र थे। यह गवर्नर-जनरल की स्वेच्छा पर निर्भर करता था कि वह उन्हें कार्यरूप में परिणित करे या न करे।

विधान की दिशा में आंशिक सुधार हुआ, किन्तु इससे भारतीय जनता को सन्तोष नहीं हुआ। सुधार का ढांचा दीखने में जैसा था उसका कार्य वस्तुतः वैसा न था। गवर्नर-जनरल तथा गवर्नरों की कार्यकारिणियों पर धारा सभाओं का कोई अधिकार न था। भारत मंत्री, गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की कौन्सिलों में जिन भारतवासियों को रखा गया वे भारतीय जनता की भावनाओं का किसी भी रूप में प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। शिक्षित वर्ग ने तो इस तथाकथित सुधार के प्रति बहुत असन्तोष प्रकट किया। प्रथम महायुद्ध के समय अंग्रेजों की इस घोषणा से, कि वह युद्ध स्वतंत्रता और समानता के लिये लड़ा जा रहा है, भारतवासियों को आशा थी कि युद्ध के पश्चात् हमें स्वतंत्रता मिल जायगी। किन्तु साम्राज्यवादी लड़ाई जीतकर वे स्वेच्छा से साम्राज्य से कैसे हाथ धोते!

सन् १९१५ में इस कानून में जो संशोधन किया गया उसके अनुसार बंगाल में गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी और कौन्सिल के अन्य सदस्यों (नामजद तथा निर्वाचित) की संख्या ५० निश्चित की गयी। उसी प्रकार अन्य प्रान्तों जैसे मद्रास ५०, बम्बई ५०, बिहार और उड़ीसा ५०, पंजाब ३०, आसाम ३० और मध्य प्रान्त ३० निश्चित किये गये। सन् १९१६ में इस कानून में पुनः आंशिक संशोधन किये गये।

२० अगस्त १६१७ को तत्कालीन भारत मंत्री मांटेग्यू ने ब्रिटिश लोक-सभा में भारत के सबन्ध में एक महत्वपूर्ण घोषणा की। उसने कहा—

"सम्राट की सरकार की यह स्पष्ट नीति है, और भारत सरकार भी उससे पूर्णतः सहमत है कि शासन के सब विभागों में भारतवासियों का अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त किया जाय, और भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन की स्थापना की दिशामें स्वायत्त शासन सम्बन्धी संस्थाओं का क्रमशः विकास किया जाय। इस नीति की प्रगति धीरे-धीरे होगी; और भारतवर्ष में स्थापित ब्रिटिश सरकार ही यह निश्चिय करेगी कि किस समय कितना आगे बढ़ना चाहिये।"

इस घोषणा में आगे यह भी बतलाया गया कि भारत मंत्री शीघ्र भारत आकर गवर्नर जनरल से परामर्श करेंगे और उसके बाद कानून की रूपरेखा तैयार की जायगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय ब्रिटिश सरकार ने प्रथम बार यह घोषित किया कि उसकी नीति भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना है। इसके थोड़े ही दिनों बाद कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव, जो स्वराज्य के सम्बन्ध में था, निम्न-प्रकार है—

"सम्राट् के भारत-मंत्री ने सम्राट्की सरकार की ओर से यह घोषित किया है कि उसका उद्देश्य भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करना है—इस पर यह कांग्रेस कृतज्ञता-पूर्वक सन्तोष प्रकट करती है।

"यह कांग्रेस इस बात की आवश्यकता पर जोर देती है कि भारतवर्ष में स्वशासन की स्थापना का विधान करने वाला एक पार्लियामेंटरी कानून बने और उसमें बताये हुए समय तक पूरा स्वराज्य मिल जाय।

"इस कांग्रेस की यह दृढ़ राय है कि सुधार की कांग्रेस-लीग-योजना कानून के द्वारा सुधार की पहली किस्त के रूप में प्रारंभ की जानी चाहिए।"*

इसके तीन मास बाद नवम्बर में मांटेग्यू भारत आये और गवर्नर-जनरल चेम्सफोर्ड के साथ देश का दौरा किया। दोनों ने मिलकर मौंट-फोर्ड योजना

---

* डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या, वैसेही, पृष्ठ १३७

(मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-योजना) तैयार की। इस योजना के द्वारा धारासभाओं के चुनाव के लिये पहली बार प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली को अपनाया गया। उनमें निर्वाचित सदस्यों का बहुमत स्वीकार किया गया। धारा सभा के सदस्यों के अधिकारों में यत्किंचित वृद्धि कर दी गई। धारासभा में प्रस्ताव रखने, प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछने के अतिरिक्त सार्वजनिक विषयों पर वाद-विवाद करने और आय-व्यय के अधिकांश एवं महत्वपूर्ण अंशों पर मत देने का अधिकार दिया गया।† किन्तु गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि वह केन्द्र की दोनों व्यवस्थापिकाओं द्वारा स्वीकृत की गई किसी धारा को पुनर्विचार के लिए उनके पास लौटा दे या अस्वीकृत कर दे।

इस कानून के द्वारा केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों को पृथक-पृथक कर दिया गया। केन्द्रीय व्यवस्थापिकायें एक सदन वाली धारासभा के स्थान पर दो सदनों वाली सभा बनायी गई, उच्चभवन को लेजिस्लेटिव कौन्सिल और निचले भवन को लेजिस्लेटिव एसेम्बली कहा गया। लेजिस्लेटिव कौन्सिल में अध्यक्ष के अतिरिक्त ६० सदस्य तथा लेजिस्लेटिव एसेम्बली में १४० सदस्य रखने की व्यवस्था स्वीकार की गई। लेजिस्लेटिव कौन्सिल में २४ सदस्य निर्वाचित तथा शेष ३६ सदस्य मनोनीति किये गये। मनोनीत सदस्यों में २० सरकारी और ६ गैर सरकारी सदस्य रखे गये। निर्वाचित सदस्यों में १५ विशेष क्षेत्रों से चुने गये। देशी नरेशों या उनके प्रतिनिधियों को भी दोनों सदनों में स्थान देने की व्यवस्था स्वीकार की गई। मताधिकार इतना सीमित और अधिक सम्पत्ति की योग्यता के आधार पर रखा गया कि प्रत्यक्ष निर्वाचन की पद्धति को अपनाने पर भी जनता को उसमें सही प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया और देश के लिये उसकी कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं रह गयी।

†"The estimated annual expenditure and revenue of the Governor-General's Council shall be laid in the form of a statement before both chambers of Indian legislature in each year.

"No proposal for the appropriation of any revenue or moneys for any purpose shall be made except on the recommendation of the Governor-General."

स्त्रियां मतदान से सर्वथा वञ्चित रखी गयीं। किन्तु मद्रास और बम्बई की प्रान्तीय धारासभाओं में स्त्रियों के निर्वाचन से यह अयोग्यता हटा ली गई। लेजिस्लेटिव कौन्सिल की आयु पांच वर्ष निश्चित की गई और उसका अध्यक्ष गवर्नर-जनरल द्वारा नामजद किया गया। उसकी अवधि पांच वर्ष रखी गई। केन्द्रीय धारासभा में १०० निर्वाचित सदस्य, २६ मनोनीत सरकारी और १४ मनोनीत गैर सरकारी सदस्य रखे गये। धारासभा की आयु तीन वर्ष रखी गई।

१९१९ के कानून द्वारा ब्रिटिश संसदीय प्रक्रिया के कुछ नियम भारतीय व्यवस्थापिकाओं पर भी लागू किये गये। उदाहरण के लिये कोई भी सरकारी नौकर किसी भी व्यवस्थापिका का सदस्य नहीं हो सकता था, और यदि कोई सदस्य सरकारी नौकरी स्वीकार कर लेता तो उसे तत्काल व्यवस्थापिका की सदस्यता से त्याग-पत्र देना होता। जैसी कि ब्रिटिश संसदीय प्रक्रिया है, कोई भी विधेयक चाहे जिस सदन में प्रस्तुत किया जा सकता था। जिस प्रकार ब्रिटेन में किसी विधेयक को अधिनियम बनने के लिये दोनों सदनों में पास हो जाने के बाद ब्रिटिश राजा की स्वीकृति आवश्यक होती है उसी प्रकार यहां भी विधेयक के दोनों सदनों से पास हो जाने पर उस पर गवर्नर-जनरल

"We are satisfied that the social conditions in India make it premature to extend the franchise to Indian women at this juncture, when so large a proportion of the male electors require education in the use of a responsible vote.

"Further, until the custom of seclusion of women, followed by many classe and communities, is relaxed, female suffrage would hardly be a reality: it would be out of harmony with the conservative feeling of the country; and it would involve great difficulties in the actual recording of votes. . . At the next revision (as comtemplated by the Joint Report) of the constitutions of the Councils the matter should be reconsidered in the light of the experience gained of the working of the electoral system and of social conditions as they exist."—Report by the Franchise Committee, para 8

की स्वीकृति अनिवार्य थी। कोई भी व्यक्ति एक साथ दो व्यवस्थापिकाओं का सदस्य नहीं बना रह सकता था। केन्द्रीय धारासभा को भारतवर्ष के सब नागरिकों और न्यायालयों के लिये कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ। भारतवर्ष में रहने वाले ब्रिटिश नागरिकों और भारत या भारत के बाहर निवास करने वाले सभी भारतवासियों पर यहां के कानून लागू हो सकते थे।

मंत्रि मण्डल की नियुक्ति यद्यपि गवर्नर-जनरल (प्रान्तों में गवर्नर) को करने का अधिकार था, किन्तु व्यवस्थापिकाओं का निर्माण हो जाने से वे उनके प्रति उत्तरदायी थे। व्यवस्थापिका को मंत्रियों का वेतन घटाने का भी अधिकार था। मंत्रियों के लिये धारासभा का सदस्य होंना आवश्यक था। यदि कोई व्यक्ति बिना धारासभा का सदस्य हुए मंत्री बन जाता तो या तो छ मास बाद उसे मंत्रि पदसे हटना पड़ता अथवा वह धारासभा का सदस्य बनता। ब्रिटेन में सवा सौ साल पहले मंत्रियों को रखने और उन्हें अपदस्थ करने का अधिकार राजा को प्राप्त था। उदाहरणस्वरूप लार्ड मेलबोर्न के मंत्रिपरिषद को हटाकर उसके स्थान पर सर रॉबर्ट पील के मंत्रि-परिषद को कार्य-भार सौंपा गया था। रानी विक्टोरिया के समय से यह परम्परा चली कि लोक सभा का जिस मंत्रिपरिषद पर अविश्वास हो वह त्याग-पत्र दे दे और जिस पर उसका विश्वास हो उसे राजा कार्य-भार सौंपे।

गवर्नर प्रान्तीय धारा सभा का अध्यक्ष नहीं था, तथापि उसे अधिकार था कि वह स्वेच्छा से जब चाहे धारासभा की बैठक बुलाकर उसके सम्मुख भाषण दे सकता था। धारासभाओं के कार्य-संचालन के लिये गवर्नर-जनरल अथवा गवर्नर और उसकी कौन्सिल द्वारा बनाये गये कुछ स्थायी आदेश और नियमों की प्रक्रिया थी। धारा सभा को अधिकार था कि वह किसी विशेष अवस्था में उनमें आंशिक संशोधन परिवर्धन करने का सुझाव गवर्नर-जनरल को दे।

प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में भी सदस्यों की संख्या में काफी वृद्धि की गई। उनमें कमसे कम ७५ प्रतिशत निर्वाचित तथा २० प्रतिशत तक सरकारी सदस्य रखने की व्यवस्था की गई। प्रान्तों में सदस्यों को निम्न प्रकार से रखा गया—

प्रान्त	सदस्य संख्या
बंगाल	१३९
बंबई	१११
मद्रास	१२७
संयुक्त प्रान्त	१२३
पंजाब	९३
बिहार तथा उड़ीसा	१०३
मध्य प्रान्त	७०
आसाम	५३

प्रान्तीय धारासभाओं की आयु भी तीन वर्ष की निश्चित की गई और प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर प्रतिनिधित्व को अपनाया गया।

सन् १९१९ के कानून द्वारा प्रान्तों में द्वैध*शासन प्रणाली को अपनाया गया। प्रान्तीय प्रशासन को दो भागों में विभक्त किया गया—एक रक्षित और दूसरा हस्तान्तरित। रक्षित विभाग गवर्नरकी कौन्सिल के हाथ में था और हस्तान्तरिक विभाग मंत्रि मंडल के हाथ में। रक्षित विषयों में कानून, राजस्व, शांति, कारावास, औद्योगिक विषय, नहर, भूमि-कर, दुर्भिक्ष निवारण आदि थे, और हस्तान्तरित विषयों में स्थानीय स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, सहकारी समिति, उद्योग-धन्धे आदि रखे गये। मंत्रिमडल धारासभा

"The division of the sphere of Government between two authorities, one amenable to Parliament and the other responsible to the electorates is known as dyarchy. —Sapre: Indian Constitution and Administration, p. 321

"Diarchy is obviously a cumberous, complex, confused system having no logical basis, rooted in compromise and defensible only as transitional expe- dient."—Sir Williem Marris.

के प्रति उत्तरदायी था। धारासभा के निर्वाचित सदस्यों में से कुछ को गवर्नर मंत्री मनोनीत करता था।

मौंट-फोर्ड कानून में कहा गया कि १० वर्ष के भीतर (बाद में '१० वर्ष के भीतर' के स्थान पर '१० वर्ष बाद' रखा गया) एक कमीशन भारत भेजा जायगा जो इस बात की जांच करेगा कि १९१९ का कानून, और विशेष रूप से द्वैध शासन प्रणाली, किस प्रकार दोष पूर्ण था। भारतवासियों ने इस कानून का स्वागत नहीं किया। कांग्रेस के एक पक्ष ने तो इसका कड़ा विरोध किया। दूसरा पक्ष (जिसे नरमदली पक्ष कहते थे) धारासभाओं में चला गया। अंग्रेजों की फूट डालकर शासन करने की नीति का दुष्परिणाम यह हुआ कि देश भर में व्यापक रूप से साम्प्रदायिक दंगे हुए। सन् १९२४ में मुडीमैन कमेटी भारत आयी और उसने ब्रिटिश सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसके पश्चात् १९२७ में साइमन कमीशन आया। कमीशन में कोई भी भारतवासी नहीं था, इसलिये सब क्षेत्रों के लोगों ने उसका बहिष्कार किया।

इसी बीच ब्रिटिश मन्त्रिमंडल में परिवर्तन हो गया। गुत्थी को सुलझाने के लिये ब्रिटिश सरकार ने एक गोलमेज सभा बुलाया। भारतवर्ष में कांग्रेस देश की प्रतिनिधि-संस्था समझी जाती थी, उसने इसका बहिष्कार किया। दूसरी गोलमेज सभा में उसने भाग लिया, किन्तु इस बार कोई परिणाम न निकला। फिर तीसरी गोलमेज सभा बुलाई गई। इन गोलमेज सभाओं के पश्चात् कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने सन् १९३३ में एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया जिसमें भारत के भावी संविधान की एक नयी योजना प्रस्तुत की गई। इस योजना पर विचार करने और उसे कार्य रूप में परिणित करने के निमित्त सुझाव देने के लिये ब्रिटिश लोकसभा की एक संयुक्त प्रवर समिति ने जिसके अध्यक्ष लार्ड लिनलिथगो थे, एक वृत्त-लेख प्रस्तुत किया उस वृत्त-लेख के आधार पर ही भारत सरकार का १९३५ का संविधान अवलम्बित है।

१९३५ का विधान

सन् १९२७ से १९३५ तक आठ वर्ष परिश्रम करके ब्रिटिश सरकार ने एक ऐसा विधान तैयार किया जिसका उद्देश्य अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों की पूर्ति करते हुए भारतवासियों को स्वायत्त-शासन के क्षेत्र में आंशिक स्वतंत्रता देना था। इस विधान के द्वारा केन्द्र में ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों की एक मिलीजुली संघ-सरकार की स्थापना की योजना बनाई गई। मोटे तौर पर इस विधान की निम्नलिखित विशेषतायें थीं :—

केन्द्र में भारतीय प्रांतों और देशी रियासतों की एक संघीय व्यवस्थापिका और द्वैध शासन;

मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, बङ्गाल, बिहार तथा आसाम में दो सदनों के व्यवस्थापक मण्डल और पंजाब, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, सिंध और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के लिये एक सदन के व्यवस्थापक मण्डल की स्थापना;

एक संघ-न्यायालय की स्थापना;

रिजर्व बैंक की स्थापना;

बर्मा तथा अदन को भारत से पृथक् करना।

केन्द्र में जो संघीय व्यवस्थापिका बनाई गई उसमें दो सदन (राज्य-परिषद और विधान सभा) स्थापित करने की व्यवस्था की गई। राज्य-परिषद में ब्रिटिश भारत से १५६ तथा संघ में सम्मिलित होनेवाली रियासतों से १०४ सदस्य आ सकते थे। रियासतें ('रियासतों' से अभिप्राय वहां की जनता नहीं बल्कि उनके निरंकुश शासक, उनका सरकार और यदि उनकी कोई कठपुतली व्यवस्थापिका हो तो उससे था) चाहे जिस प्रणाली से प्रतिनिधि भेज सकती थीं। भारत की कुल जन-संख्या का एक तिहाई से कम होने पर भी उन्हें ४० प्रतिशत स्थान देकर ब्रिटिश भारत की जनता के साथ एक प्रकार से सौतेली मां का सा व्यवहार करने की चेष्टा की गई। हर तीसरे वर्ष राज्य परिषद के एक तिहाई सदस्य क्रम से अलग होते और

उनके स्थान पर अन्य लोगों के चुने जाने की व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार ९ वर्ष में राज्य परिषद का स्वरूप ही बदल जाता और वह कभी भंग न हो पाती। ब्रिटिश भारत से आनेवाले प्रतिनिधियों का प्रत्यक्ष निर्वाचन होता। ६ सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को था।

१९३५ के विधान के अनुसार केन्द्रीय धारासभा में ३७५ सदस्य (२५० ब्रिटिश भारत से और १२५ रियासतों से) रखने की व्यवस्था की गई। प्रान्तों से आनेवाले २५० सदस्यों में से २४६ का अप्रत्यक्ष चुनाव होता, २४६ प्रान्तीय धारा सभाओं से चुनकर आते, ३ व्यापारिक संस्थाओं द्वारा और एक मजदूरों द्वारा। केन्द्रीय धारासभा की अवधि पांच वर्ष निश्चित की गई।

इस विधान के द्वारा संघ सरकार तथा प्रान्तीय सरकार दोनों के अधिकार परस्पर विभजित कर दिये। सेना, वायु तथा समुद्री बेड़ा, परराष्ट्र नीति, डाक तार, रेल आदि ५९ विषय संघ-सूची में थे। विवाह, तलाक, समाचार-पत्र, मजदूर आदि ३६ विषय संयुक्त सूची में थे। संघीय व्यवस्थापिका को संघ-सूची और संयुक्त सूची में वर्णित विषयों पर कानून बनाने और उन पर अपना निर्णय देने का अधिकार प्राप्त हुआ, संकट काल में वह संपूर्ण भारत के लिये कानून बना सकती थी। प्रान्तों की स्वीकृति से संघीय व्यवस्थापिका उनके लिये भी कानून बना सकती थी।

११ प्रान्तों में दो सदनों वाली व्यवस्थापिकाओं की इस विधान में व्यवस्था की गई। बाकी ५ प्रान्तों में एक व्यवस्थापिका रखी गई। दो सदनों वाले व्यवस्थापक-मण्डल स्थापित करने के मुख्य रूप से दो कारण बतलाये गये। एक तो यह कि इससे कोई भी कानून जल्दी में अथवा भावावेश में नहीं बन सकेगा। दोनों सभायें पृथक पृथक रूप से, और यदि आवश्यक हुआ तो सम्मिलित रूप से, उस पर वाद-विवाद करके निर्णय दे सकेंगे। इसका दूसरा कारण यह बतलाया जाता है कि दो भवनों के बनने से सभी वर्गों को व्यवस्थापिका

में उचित प्रतिनिधित्व मिल जाता है। आम जनता ने उस समय दो सदनों वाली व्यवस्थापिकाओं का स्वागत नहीं किया। कानून में भी यह व्यवस्था कर दी गई कि दस वर्ष बाद विधान परिषद भंग कर दी जायगी। दो सदनों पर किये गये व्यय की रोशनी में जब हम उनसे होने वाले लाभ का लेखा-जोखा करते हैं तब हम निस्सन्देह इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि राज्य-परिषद कर-दाता के ऊपर एक अनावश्यक भार है। तथापि यह एक हास्य जनक बात है कि स्वतंत्र भारत के संविधान में, जिसके निर्माण में देश के तपे हुए लोक-नायक भी सम्मिलित थे, स्थायी रूप से दो सदनों वाली व्यवस्था को मान कर न केवल अंग्रेजों के कार्यों पर, जिनकी हम पहले बड़ी आलोचना करते थे, मुहर लगादी, वरन्, एक कदम और आगे भी बढ़ गये। केन्द्रीय राज्य-परिषद की भांति प्रान्तीय राज्य-परिषदें भी स्थायी बनायी गई।

मताधिकार का जहां तक प्रश्न था। १९३५ के विधान के अनुसार ब्रिटिश भारत के १४ प्रतिशत नागरिकों को ही यह सुविधा प्राप्त हो सकी। १९१९ के कानून में तो मताधिकार इतना सीमित था कि केवल ३ प्रतिशत नागरिकों को अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजने का अधिकार मिला। उस कानून (१९१९) के अनुसार दिखाने को तो धारासभा के ७० प्रतिशत सदस्य निर्वाचित प्रतिनिधि थे किन्तु वे तीस करोड़ की जन संख्या में से १५ लाख का भी प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। स्वतंत्र भारत में १८ करोड़ नर-नारी मताधिकार के पात्र हैं। संसार में किसी अन्य देश में इतना व्यापक मताधिकार नहीं है।

केन्द्रीय धारासभा में ब्रिटिश भारत से प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये जो निर्वाचन-क्षेत्र बनाये गये उनमें कुछ तो प्रादेशिक थे, कुछ यूरोपियनों, ऐंग्लो-इण्डियनों, ईसाइयों, मुसलमानों, स्त्रियों, विश्व-विद्यालयों और चेम्बर ऑफ कॉमर्स आदि में बांट दिये गये। रियासतों के लिये ऐसी कोई व्यवस्था नहीं हो सकती थी क्योंकि एक तो यह राजाओं की स्वेच्छा पर निर्भर

करता था कि वे संघ में सम्मिलित हों या न हों. और दूसरे, वे जिस प्रकार से प्रतिनिधियों की छांट करते उन पर कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं था। दो चार रियासतों को छोड़कर, जहां कठपुतली धारासभायें थीं, बाकी सब में निरंकुश सामन्तशाही का बोलबाला था। ऐसी रियासतों का, जहां कानून और संविधान राजा की स्वेच्छा पर निर्भर हों, संघ में सम्मिलित होने का अर्थ व्यवस्थापिका में अपने मुसाहिब भर्ती करने का था। यह देखते हुए भी कि संवैधानिक रूप से उनके अधिकार सुरक्षित हैं उन्होंने संघ में सम्मिलित होने की स्वीकृति नहीं दी।

चुनाव-क्षेत्रों की सदस्य संख्या

ब्रिटिश भारत से राज्य-परिषद् तथा केन्द्रीय धारासभा के लिये निम्न प्रकार से चुनाव-क्षेत्रों का वर्गीकरण किया गया:—

केन्द्रीय राज्य परिषद्

प्रान्त या जाति	कुल स्थान	आम स्थान	परिगणित जाति	सिख	मुसलमान	स्त्रियां
मद्रास	२०	१४	१	—	४	१
बम्बई	१६	१०	१	—	४	१
बंगाल	२०	८	१	—	१०	१
संयुक्त प्रान्त	२०	११	१	—	७	१
पंजाब	१६	३	—	४	८	१
बिहार	१६	१०	१	—	४	१
मध्य प्रान्त और बरार	८	६	१	—	१	—

आसाम	५	३	—	—	२	—
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	५	१	—	—	४	—
उड़ीसा	५	४	—	—	१	—
सिंध	५	२	—	—	३	—
ब्रि. बिलोचिस्तान	१	—	—	—	१	—
दिल्ली	१	१	—	—	—	—
अजमेर-मेरवाड़	१	१	—	—	—	—
कुर्ग	१	१	—	—	—	—
ऐंग्लो-भारतीय	१	—	—	—	—	—
यूरोपियन	७	—	—	—	—	—
भारतीय ईसाई	२	—	—	—	—	—
योग	१५०	७५	६	४	४६	६

केन्द्रीय धारासभा

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
प्रान्त	कुल स्थान	आम स्थान: आमस्थानों का योग	आम स्थान: परिगणित जातियों के आम स्थान	सिख	मुसलमान	ऐंग्लो-भारतीय	यूरोपियन	भारतीय ईसाई	व्यापार और उद्योग	जमींदार	मजदूर	स्त्रियां
मद्रास	३७	१९	४	—	८	१	१	२	२	१	१	२
बम्बई	३०	१३	२	—	६	१	१	१	३	१	२	२
बंगाल	३७	१०	३	—	१७	१	१	१	३	१	२	१
संयुक्त प्रान्त	३७	१६	३	—	१२	१	१	१	—	१	१	१
पंजाब ...	३०	६	१	६	१४	—	१	१	—	१	—	१
बिहार	३०	१६	२	—	९	—	१	१	—	१	१	१
मध्य प्रदेश और बरार	१५	६	२	—	३	—	—	—	—	१	१	१
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	५	१	—	—	४	—	—	—	—	—	—	—
उड़ीसा ...	५	४	१	—	१	—	—	—	—	—	—	—
सिंध ...	५	१	—	—	३	—	१	—	—	—	—	—
ब्रिटिश बिलोचिस्तान	१	—	—	—	१	—	—	—	—	—	—	—
दिल्ली ...	२	१	—	—	१	—	—	—	—	—	—	—
अजमेर-मेरवाड़	१	१	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
आसाम ...	१०	४	१	—	३	—	१	१	—	—	१	—
कुर्ग ...	१	१	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
विविध ...	४	—	—	—	—	—	—	—	३	—	१	—
योग ...	२५०	१०५	१९	६	८२	४	८	८	११	७	१०	९

गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार

१९३५ का विधान लागू होने पर ब्रिटेन की संसदीय प्रक्रिया को काफी अंश तक यहां भी लागू कर दिया गया। उसका यहां पर पृथक उल्लेख करना विशेष लाभदायक न होगा क्योंकि संसदीय प्रक्रिया के प्रसंग में प्रक्रिया के पुराने नियमों का भी आगे समावेश किया जायगा।

किन्तु, जैसा कि संयुक्त प्रवर समिति अपनी रिपोर्ट में संकेत कर चुकी थी,* कुछ विषयों पर गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार और विशेष उत्तरदायित्व संघ-सरकार और संघीय व्यवस्थापिकाओं की शक्तियों पर प्रतिबन्ध थे। गवर्नर जनरल की विशेष विधायिनी शक्तियां, वित्तीय शक्तियां और प्रशासकीय शक्तियां इतनी व्यापक थी कि उसकी पूर्व स्वीकृति के बिना मुद्रा और चलन अथवा रिजर्व बैंक के संविधान या कार्यों से संबन्धित कोई प्रस्ताव अथवा संशोधन धारासभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। ऐसे विषयों पर कानून बनाने का धारासभा को अधिकार नहीं था जिनसे ब्रिटिश उद्योगों की कीमत पर भारतीय उद्योग पनपें। व्यवस्थापिकाओं को ऐसे विषयों पर भी कानून बनाने अथवा बाद-विवाद करने का अधिकार नहीं था जो ब्रिटिश लोक सभा द्वारा ब्रिटिश भारत के लिए बनाए गये कानून के किसी अंग के विरुद्ध हो, ब्रिटिश लोकसभा की अन्य उपनिवेशों की भांति भारतवर्ष पर भी प्रभुसत्ता कायम थी।†

संघ-शासन के निर्माण में कुछ संवैधानिक रुकावटें पैदा होने और कुछ व्यवहारिक कठिनायां उपस्थित होने के कारण वह कार्यान्वित नहीं किया जा सका।

संघ-शासन के सफल संचालन में जो संवैधानिक कठिनाइयां तथा अन्य बाधायें उपस्थित थीं वही न्यूनाधिक मात्रा में प्रान्तीय क्षेत्रों में भी थीं। गवर्नरों को प्रान्तों में उसी प्रकार के विशेषाधिकार और विशेष उत्तरदायित्व

---

* T. Erskine May: Parliamentary practice, 12th edition—p.44.

थे जो संघीय विषयों में गवर्नर जनरल के थे। प्रान्तीय व्यवस्थापिकायें ऐसे क़ानून नहीं बना सकती थीं जिनका गवर्नर के विशेषाधिकारों और विशेष उत्तरदायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना हो। संयुक्त प्रान्त और बिहार में एक बार ऐसी स्थिति पैदा हुई जब (जनवरी १९३८) में वहां के मंत्रि मंडलों ने राजबन्दियों को मुक्त करने का निर्णय किया और गवर्नरों ने शांति और सुरक्षा के खतरे की दुहाई देकर अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करके मंत्रिमंडलों के निर्णय को ठुकरा दिया। इस पर फरवरी १९३८ में दोनों प्रान्तों के मंत्रिमंडलों ने त्याग पत्र दे दिये। बाद में गवर्नरों ने उनके निर्णय स्वीकार कर लिये, इसलिये त्याग-पत्र वापस ले लिये गये केन्द्रीय व्यवस्थापिका की भांति प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को भी ब्रिटिश व्यापारिक स्वार्थों के विरुद्ध आवाज उठाने का अधिकार नहीं था।

जनता का विरोध

ब्रिटिश सरकार के विधान विशेषज्ञों द्वारा इतना श्रम और समय व्यय करने पर भी १९३५ का विधान इतना दोषपूर्ण एवं अव्यावहारिक था कि भारत के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों ने संघ सरकार बनाने का बड़ा विरोध किया। देशी नरेशों, तथा अन्य स्थिर स्वार्थवाले वर्ग ने इसका इसलिए विरोध किया कि उन्हें भय था कि संघ सरकार में उनकी आवाज नक्कार खाने में तूती की आवाज के समान होगी और उसमें जो निर्णय होंगे वे उन्हें भी मानने पड़ेंगे, इस लिये जान-बूझकर वे अपने हाथ काटकर देने को तैयार न हुए। संघ का निर्माण भी हो सकता था जब कम-से कम आधी ऐसी रियासतें संघ में शामिल हों जिनसे राज्य परिषद् में उनके कमसे कम ५२ प्रतिनिधि आवें। भारत का एक तिहाई जन संख्या के रियासती अंगकों—दूसरे शब्दों में निरंकुश राजाओं को—४० प्रतिशत प्रतिनिधित्व स्वीकार करना लोक

तंत्रीय सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध था। इस कानून के द्वारा देशी नरेशोंके स्वार्थों को काफी संरक्षण दिया गया, फिर भी उन्हों ने संघ में सम्मिलित होके स्वीकार नहीं किया।

देश की सबसे बड़ी राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस फैजपुर अधिवेशन (दिसम्बर १६३६) में इस विधान के विरुद्ध अपना स्पष्ट मत दे चुकी थी। किन्तु आने वाले चुनावों में भाग लेकर वह अपनी शक्ति का परिचय देना चाहती थी। अगले मास ही चुनाव होने वाले थे। अन्य दलों की भांति कांग्रेस ने भी चुनाव लड़ा और ग्यारह प्रान्तों में से आठ प्रान्तों की धारासभाओं में वह स्पष्ट बहुमत में आया। अब प्रश्न मंत्रिमंडल बनाने का था। कांग्रेस ने काफी सोच-विचार कर (१३ मार्च १६३७) प्रान्तों में मंत्रिमंडल बनाने की स्वीकृति दे दी,* और जवाहर लालजी नेहरू ने एक वक्तव्य में इसका स्पष्टीकरण भी कर दिया कि हम विधान को कार्यान्वित करने मंत्रिमंडलों में नहीं जा रहे हैं, बल्कि उसे असफल करने के लिए मंत्रिमंडल बना रहे हैं। † वस्तुतः महात्मा गांधी की मध्यस्थता के कारण ही यह तय किया गया कि गवर्नर मंत्रिमंडल के दिन-प्रतिदिन के कार्योंमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे†। उसके पश्चात् सब प्रान्तों के कांग्रेसदल के नेताओं ने अपने-अपने गवर्नरों से इस आशयका आश्वासन मांगा कि वे मंत्रिमंडल के वैधानिक कार्यों और उसकी सम्मतिका विरोध करने में अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग न करेंगे। २५ मार्च १६३७ को बम्बई के गवर्नर ने जब वहां के कांग्रेसदलके नेता श्री बी. जी. खेर से मंत्रिमंडल बनाने के संबन्ध में बात-चीत की तो श्री खेर ने इसी बात पर जोर दिया। गवर्नर ने इस आधार पर कि उन्हें अल्प संख्यकों के रक्षार्थ तथा

---

*"That Congressmen be permitted to accept office where they may be invited thereto, but desires to make it clear that office is to be accepted and utilised for purpose of working in accordance with the lines laid down in the Congress election manifesto, and to further in every possible way the Congress policy of Combating the new act and prosecuting the Constructive programme on the other hand."

†A Constitutional History of India A. B. Keith, P. 483.

३

कुछ अन्य विशेष कारणों से इस अधिकार को अपने पास रखना अनिवार्य है, वे इसका प्रयोग न करने का आश्वासन नहीं दे सकते। सब प्रान्तों में यह मतभेद चलता रहा। अन्त में १० जून १६३७ को बिहार के गवर्नर ने उदारता और साहस पूर्वक घोषणा की जिसमें कांग्रेस की इस मांग को स्वीकार कर लिया गया और कहा गया कि जब बुनियादी बातों में मतभेद हो जाय और आपसी बातचीत से भी समझौता न हो तब ही मंत्रिमंडल द्वारा त्याग-पत्र देने अथवा उसे भंग करने का प्रश्न पैदा हो सकता है। बिहार के गवर्नर-जनरल की इस घोषणा के पश्चात् २० जून को गवर्नर-जनरल ने भी रेडियो पर की गई घोषणा में उन सब बातों को शब्दों का हेर-फेर करके मान लिया। जुलाई में कांग्रेस ने आठ प्रान्तों में शासन-प्रबन्ध सभाला। सिंध के मंत्रीमंडल निर्माण में उसने आंशिक भाग लिया। एक राष्ट्रीय संस्था होने के नाते कांग्रेस ने सदा साम्प्रदायिकता और प्रतिक्रियावादिता का विरोध किया। चुनावों में अपने प्रतिनिधि खड़े करने और मंत्रिमंडल के निर्माण में सभ जातियों को उचित प्रतिनिधित्व देने का सदा ध्यान रखा गया। कांग्रेस ने लगभग सभी मुस्लिम स्थानों पर राष्ट्रवादी मुसलमानों को कांग्रेस टिकट पर खड़ा किया। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में जहां लगभग ८५ प्रतिशत मुसलमान थे कांग्रेस मंत्रिमडल स्थापित होना मुस्लिम सम्प्रदायवाद को एक जबर्दस्त चुनौती थी। जहां तक संभव हुआ लगभग सभी प्रान्तों में मुसलमानों तथा अन्य सम्प्रदायों और जातियों को कांग्रेस मत्रिमंडलों में स्थान मिला। केवल उड़ीसा को छोड़ कर जहां कोई भी मुसलमान कांग्रेस के टिकट पर धारासभा में न पहुंच पाया, सब कांग्रेस मंत्रिमंडलों में मुसलमानों को उदारतापूर्वक स्थान दिया गया*। अपवादस्वरूप कुछ ऐसे मुस्लिम लीगियों को

* "The action of Congress is, of course, dictated by the fact that only through the removal of communal strife is there any possibility of the attainment of full responsible government in India, even in the provincial sphere. It is pointed out that even in the Hindu-majority provinces Muslims can best promote their interests by accord with the Congress. Naturally the efforts of Congress are strongly opposed by those Muslims who place Communal considerations above nation as in Bengal,. . . ."

(A.B. Keith, ibid, p. 485)

छोड़कर जो संयुक्त निर्वाचन के समर्थक थे और कांग्रेस के साथ सहयोग की बात करते थे,* लगभग सब मुस्लिम लीगी अन्य सम्प्रदायवादियों की भांति गला फाड़-फाड़ कर साम्प्रदायिकता का विष वमन करते रहे और लीगी सरकार बन जाने पर उसको कार्यरूप में भी परिणित करने से न चूके। चूंकि लीग की साम्प्रदायिक नीति के पीछे साम्राज्य-वादी सरकार का हाथ था इसलिए उसके भीतर सदा उन्हीं तत्वों को अधिक प्रोत्साहन मिलता रहा जो धर्मांधता में अग्रणी थे।

द्वितीय महासमर सितम्बर १९३९ में शुरू हो चुका था। अंग्रेजो ने भारत वर्ष को भी, बिना भारतीय नेताओं का मत लिये, अपने साथ युद्ध में घसीट लिया। भारत के सैनिकों को सुदूर देशों में जहां भारत का कोई संबन्ध नहीं था, अपने स्वार्थ के लिये युद्ध की भट्ठी में झोंक दिया। भारतीय नेताओं ने उनसे युद्धोद्देश्यों का स्पष्टीकरण मांगा† किंतु वे टालते रहे। २७ अक्टूबर के श्वेत-पत्र में सरकार ने अपनी भारत सबन्धी नीतिकी घोषणा की। स्पष्ट था कि उनका युद्धोद्देश्य लोकतंत्र की रक्षा न होकर पिछड़े हुए और कमजोर देशों का शोषण और उनकी गुलामी था। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को उसकी सम्मति लिये बिना युद्ध में घसीट लिये जाने के फलस्वरूप कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने आठों प्रान्तों से त्याग-पत्र दे दिये। गवर्नरों ने धारा ९३ का सहारा लेकर शासन सूत्र सभाललिया। केवल तीन प्रान्तों—पंजाब, सिंध और बंगाल में जहां गैर-कांग्रेसी मंत्रिमंडल काम कर रहे थे, लोकप्रिय शासन के नाम पर ब्रिटिश नौकरशाही अपना स्वार्थ-साधन कर रही थी।

---

* "The Muslim Chief Minister of Sind has also declared in favour of joint-electorates, and Co-operation with Congress was urged on August 22 by Sir Wazir Hassan when presiding over the annual meeting of the Bengal Presidency Muslim League." Sir S. A. Khan: The Indian Federadin, P. 334

† "If Great Britain fights for the maintenance and extension of democracy then she must necessarily end imperialism in in her own possessions, establish, full democracy in India, and the Indian people must have the right of self:

भारतवर्ष की जनता का बढ़ता हुआ असंतोष देखकर ब्रिटिश सरकारने कांग्रेस के साथ समझौता करना चाहा, जिससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय कि युद्ध-काल तक उसे भारत का सहयोग मिलता रहे। ८ अगस्त १९४० को तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड लिनलिथगो ने ब्रिटिश सरकार की ओर से एक घोषणा की जिसमें कहा गया कि युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भारतवासियों के लिए भारतवासियों द्वारा एक संविधान बनाया जायगा, युद्ध-काल तक यह संभव नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि गवर्नर-जनरल की कार्यसमिति की तत्कालीन वृद्धि की जायगी और उन्हें युद्ध सम्बन्धी विषयों में परामर्श देने के लिए एक युद्ध-समिति का निर्माण किया जायगा। जुलाई १९४२ में गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में पांच भारतीय बढ़ाये गये। न केवल यही कि गवर्नर जनरल की इस घोषणा का स्वागत नहीं किया गया वरन् सितम्बर १९४० में गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा व्यक्तिगत् सत्याग्रह आरंभ कर दिया गया।

determination by framing their own Constitution through a Constituent Assembly without external interference, and must guide their own policy.

"The Working Committee therefore invite the British Government to declare in unequivocal terms what their war aims are in regard to democrac and imperialism and the new order that is envisaged; in perticular, how these are going to apply to India and to be given effect to in the present. ..
(Congress Working Committee) 14-9-39.

"If Britain is fighting to save democracy and establish a new world order. India would gladly join in the struggle; but, if the war should turn out to be aimed at the defence of imperialist possessions, India could take no part in it, Thus the Congress invites the British Government to decalare their aims regarding democracy and imperialism, and state how these aims will be applied to India now." (The Manchester Guardian, 3-10-49)

"If at any time the Governor of a Province is satisfied that a situation has arisen in which the Government of the Province cannot be carried on in accordance with the provisions of this Act, he may by proclamation—

(a) declare that his functions shall......be exercised by him in his discretion:

(b) assume to himself all or any of the powers vested in or exercisable by any Provincial body or authority. . . . ". Sec. 93 of 1935 Act.

क्रिप्स-योजना और उसके बाद

एक ओर राजनीतिक स्थिति दिन प्रतिदिन खराब होती जा रही थी दूसरी ओर युद्ध की लपटें पूर्व की ओर भारत के द्वार तक पहुंचने वाली थीं स्थिति को अधिक बिगड़ने से बचाने के लिए और न केवल साम्राज्य की वरन् अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए ब्रिटिश सरकारने भारतका सहयोग प्राप्त करने की अन्तिमबार चेष्टा की। इस बार कुशल कूटनितिज्ञ सर स्टैफर्ड क्रिप्स को समझौता वार्ता के लिये भारतवर्ष भेजा गया। विभिन्न दलों और वर्गों के नेताओं तथा विचारकों से बातचीत करने के बाद २६ मार्च १६४२ को सम्राट् की सरकार की ओर से सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने एक योजना प्रस्तुत की। उसके दो अंग थे, एक अन्तर्कालीन (युद्धकालीन) और दूसरी युद्धोत्तर कालीन। अन्तर्कालीन योजना में वे गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में लोकनायकों को रखने के लिए तो तैयार थे, किन्तु उसे एक वैधानिक अध्यक्ष का पद स्वीकार करने को तैयार नहीं थे और न वे गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी को मन्त्रिमंडल का स्थान देने को तैयार थे। कार्यकारिणी को सेना और सुरक्षा पर भी कोई अधिकार नहीं था। युद्धोत्तर कालीन योजना में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने का वचन तो दुहराया गया, किन्तु साथही यह भी कह दिया कि जो राज्य अथवा प्रान्त संघ से पृथक रहना चाहेंगे वे रह सकते हैं। भारतवर्ष को कई खण्डों में विभक्त करके साम्प्रदायिक तत्वों और देशी नरेशों को खुश करने की नीयत से ही यह बात कही गई थी। इसीलिये मुस्लिम लीग ने क्रिप्स योजना को स्वीकार कर लिया क्योंकि

> **"उसकी राय में दो पृथक राष्ट्रों को एक भारतीय संघ में रहने के लिए बाध्य करना न तो संभव ही है, और न न्यायपूर्ण। भारतवर्ष की संवैधानिक समस्या का एकमात्र हल भारत को दो स्वतंत्र क्षेत्रों में विभक्त कर देना है। वर्तमान अवस्था में ऐसा न होना, देश के विभिन्न वर्गों में केवल शत्रुता और कटुताकी ही वृद्धि करेगा।"**

विधान निर्मात्री सभा में रियासतों की ९ करोड़ जनता को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं मिला, बल्कि ५८४ राजाओं को अपने मुसाहिब नामजद करने का अधिकार दिया गया।

क्रिप्स-योजना के सबन्ध में जवाहरलाल जी का अपना मत यह था कि "क्रिप्स-योजना के अन्तर्गत सरकार का ढांचा ज्यों का त्यों बना रहता, वाइसराय की निरंकुश शक्ति भी रहती। हां, कांग्रेस और लीग के कुछ प्रतिनिधि अवश्य मंत्रियों की कुर्सियों पर बैठ जाते और सैनिक कैन्टीनों की व्यवस्था करते।" —(हिन्दुस्तान की कहानी)।

यह पहले लिखा जा चुका है कि ब्रिटिश सरकार अपने युद्धोद्देश्यों को स्पष्ट नहीं कहना चाहती थी, और कांग्रेस की मांग थी कि यदि अंग्रेजों की नियत साफ है और उनके वचन और कार्य में विभेद नहीं है तो भारत की अन्तर्कालीन मांग को अविलम्ब स्वीकार किया जाय। सन् १९३९ में ब्रिटिश समाजवादी राजनीतिज्ञ और प्रसिद्ध लेखक हेराल्ड लास्की ने भरतवर्ष को जोर देकर कह दिया था कि ब्रटेन का हित इसी में है कि वह भारतवर्ष को तत्काल स्वतंत्रता प्रदान करे।* किन्तु ब्रिटेन की राष्ट्रीय सरकार (अनुदार दल और मजदूरदल का सयुक्त मंत्रिमंडल) भारत को शब्द-जाल में फसाकर उसका सहयोग प्राप्त करना चाहती थी। क्रिप्स योजना में एक बात यह भी कही गई थी कि —

"भारत के सामने जो विषम परिस्थिति आ पड़ी है उसके निवारण के लिये जब तक नये संविधान का निर्माण नहीं हो जाता तब तक भारत की रक्षा तथा उसके युद्ध संबन्धी प्रयत्नों पर सम्राट की सरकार का ही नियंत्रण रहेगा।"

किन्तु कांग्रस का मत था कि—

"भारत के भविष्य के संबन्ध में किसी भी योजना की अच्छी तरह छान-बीन होनी चाहिये, किन्तु आज की विषम परिस्थितियों में वर्तमान पर ही जोर देना चाहिये और भविष्य-सम्बन्धी योजनाओं की उपयुक्तता भी वर्तमान को दृष्टि में रखकर जांचनी चाहिये। ....आज की स्थिति में रक्षा को उत्तरदायित्व के क्षेत्र से हटा लेना उस उत्तरदायित्व को एकदम निरर्थक कर देना है तथा यह स्पष्ट कर देना है कि भारत किसी भी प्रकार स्वतंत्र होने नहीं जा

रहा है, और न युद्ध-काल में उसकी सरकार के स्वतंत्र रूप में कार्य करने की आशा है ।

"जिस चीज की सबसे अधिक आवश्यकता है, वह है जनता का उत्साहपूर्ण सहयोग जो उनमें विना पूर्ण विश्वास तथा उन पर रक्षा का पूरा उत्तरदायित्व डाले प्राप्त नहीं हो सकता है। केवल इसी प्रकार से आज की विषम घड़ी में भी भारत के लोगों को समय की मांग का उत्तर देने के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि अपनी प्रान्तीय शाखाओं के साथ भारत की वर्तमान सरकार भारत की रक्षा करने में एकदम अयोग्य है। अपने लोक प्रिय प्रतिनिधियों के द्वारा भारतकी जनता ही रक्षा का पूरा भार ले सकती है। लेकिन यह तभी हो सकता है जब उन्हें पूरी स्वतंत्रता हो और उन्हें उत्तरदायित्व का पूरा भार सौंप दिया जाय। इन कारणों से ब्रिटिश युद्ध समिति की योजनाओं को स्वीकार करने में कमेटी असमर्थ है।"

कांग्रेस से समझौता-वार्ता सफल न हो सकी, और क्रिप्स अपने देश लौट गये।

क्रिप्स-योजना की असफलता की प्रतिक्रियास्वरूप भारतवासियों की यह सामान्य धारणा हो गई कि अंग्रेजों के साथ कभी समझौता नहीं हो सकता। सर्वत्र क्षोभ और घृणा की भावना व्याप्त थी। किन्तु जनता को महात्मा गांधी के सफल नेतृत्व पर पूरा भरोसा था। १४ जुलाई १९४२ को कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा भारत छोड़ो प्रस्ताव* पर ८ अगस्त को बम्बई में

*कांग्रेस कार्यसमिति का प्रस्ताव बहुत लम्बा था। उसके कुछ अंशों को यहां उद्धरित करना अनावश्यक न होगा। प्रस्ताव में कहा गया—"दिन प्रतिदिन होने वाली घटनाओं तथा भारतवासियों को हो रहे अनुभव से कांग्रेस की यह धारणा पक्की होती जा रही है कि भारत में अंग्रेजी राज जल्द से जल्द समाप्त हो जाना चाहिए, केवल इसी लिए नहीं कि अच्छे से अच्छा विदेशी शासन भी बुरा है और शासितों को निरन्तर हानि पहुँचाता रहता है, बल्कि इसलिए भी कि बेडियों में जकड़ा भारत न स्वयं अपनी रक्षा कर सकता है और न लड़ाई से बरबाद हो जाने वाली मानवा की......

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने मुहर लगा दी। सरकार पहले से कुछ और ही तैयारी किये बैठी थी। उसके अगले ही दिन, ९ अगस्त को, देश भर के सब कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। फिर तोड़-फोड़ का आन्दोलन शुरु हुआ। दो वर्ष से भी अधिक समय तक देश भर में यह उथल-पुथल मची रही। अंग्रेजों से समझौता-वार्ता का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता था। देश में तथा देश के बाहर समाचार पत्रों में इस पर काफी टीका टिप्पणी हुई। लन्दन के 'टाइम्स' पत्रने, जिसमें भारत के गतिरोध पर कई लोगों ने लेख प्रकाशित किये थे, अप्रैल '४५ में लिखा—

"ब्रिटेन भारत के सम्बन्ध में अपनी घोषित नीति को प्रभावपूर्ण ढंग से कार्यरूप में परिणित करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करे। 'क्रिप्स-प्रस्ताव को स्वीकार करो या ठुकरा दो' का उसका जो मौजूदा रुख है, वह पर्याप्त नहीं है। दर असल यह रुख युद्ध-काल में और इसके बादके भारत, ब्रिटेन के सहयोग-सम्बन्ध के लिए घातक है। लोगों की आज धारणा है कि भारत के सम्बन्ध में पहला कदम उठाना यह ब्रिटेन का काम है।"

वेवेल-योजना

अगस्त १९४४ में लार्ड लिनलिथगो के स्थान पर लार्ड वेवेल वाइसराय बन कर आ गये थे। समझौता-वार्ता के लिये अनुकूल वातावरण पैदा

...क्रिप्स-वार्ता की असफलता ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ब्रिटिश सरकार से भारत संबन्धी दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। कार्यसमिति की यह स्पष्ट सम्मति है कि प्रत्येक प्रकार के दमन का विरोध किया जाय क्योंकि उसे स्वीकार कर लेने का अर्थ होगा भारतीयों का पतन और उसकी पराधीनता का निरन्तर जारी रहना।

"इस अपील के निरर्थक हो जाने पर कांग्रेस वर्तमान परिस्थितियों में विवशता सहन नहीं कर सकती। ......जिस अहिंसात्मक शक्ति का संचय कांग्रेस ने १९२० से किया है उसका उपयोग करने के लिए वह विवश हो जायगी... ऐसी बड़ी लड़ाई अनिवार्यतः गांधी जी के नेतृत्व में होगी।"

करने की इच्छा से लार्ड वेवल ने एक योजना (१४ जून १९४४) प्रस्तुत की जिसके अनुसार केन्द्रीय मंत्रिमंडल की, जिसमें हिन्दू और मुसलमानों को बराबर स्थान देने की तजवीज थी, स्थापना करके उसे वैदेशिक विभाग सौंपने तथा अन्य उपनिवेशों की भांति एक ब्रिटिश हाई कमिश्नर दिल्ली में रखने का सुझाव दिया गया। गवर्नर-जनरल मंत्रिमंडल का अध्यक्ष और सर्वोच्च सेनापति रक्षा मंत्री के रूप में होते। इन दो पदों को छोड़कर अन्य पद भारतवासियों को देने की व्यवस्था थी। लार्ड वेवल का घोषणा * प्रसारित होने के अगले दिन कांग्रेस के नेता जेल से मुक्त कर दिये गये। २५ जून को गवर्नर-जनरल ने सब राजनीतिक दलों के नेताओं को बातचीत करने के लिये राजकीय भवन, शिमला में आमंत्रित किया। बातचीत हुई किन्तु कोई समझौता न हो सका। मुस्लिम लीग अपने को भारत के समस्त मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था होने का दावा करने के नाते मंत्रिमंडल में सब मुसलमान सदस्यों को नामजद करने का अधिकार चाहता था। उसे वाइसराय का भी अप्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त था। कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य दल भी उसके इस दावे को स्वीकार करने को तैयार न थे। यहां तक कि पंजाब के तत्कालीन मुख्य मंत्री मलिक खिजर हयात खां तिवाना ने भी सम्मेलन में लीग के इस दावे का विरोध किया। वार्ता की असफलता पर गवर्नर-जनरल ने कहा कि

"किसी भी दल की समस्त मांगों को पूरा करा सकना मेरे लिये संभव न था। जब मैंने समस्या का हल मिस्टर जिन्ना के सम्मुख रखा तो उन्होंने बताया कि मुस्लिम लीग उस हल को स्वीकार नहीं कर सकती। उनके निश्चय से मुझे यह अनुभव हो गया कि इस विषय पर अधिक वार्ता व्यर्थ है।"

* घोषणा में वाइसराय ने कहा कि "यह कोई वैधानिक समझौता कराने या थोपने का प्रश्न नहीं है।......आज भारत के सामने लाभ उठाने को बड़े-बड़े अवसर और हल किये जाने को बड़ी-बड़ी समस्यायें उपस्थित हैं, जिनके लिये सब दलों के प्रमुख व्यक्तियों का समान प्रयत्न अपेक्षित है।" और इसके साथ उन्होंने मार्मिक शब्दों में यह भी अपील की कि "सभी ओर से कुछ-न-कुछ क्षमा करने और भूलने को है। भारत के भविष्य में मेरा विश्वास है और मुझसे जहां तक बन पड़ेगा, उसकी महानता को आगे बढ़ाऊंगा। मैं आप सबसे सहयोग और सद्‌भावना चाहता हूँ।"

ब्रिटेन में हुए १९४५ के चुनावों में अनुदार दल की पराजय और एटली के प्रधान मन्त्रित्व में मजदूर दल की सरकार स्थापित होने से भारत की समस्या शीघ्र हल होने के लक्षण कुछ अधिक दिखाई देने लगे। नया मंत्रिमंडल बनते ही एटली ने वेवल को तुरत लन्दन बुलाया। १९ सितम्बर ४५ को लन्दन से लौटकर वेवल ने कहा—

"भारवतर्ष के नेताओं की सम्मति से सम्राट् की सरकार यथाशीघ्र स्वतंत्रता देना चाहती है।......इस सम्बन्ध में घोषणा की जा चुकी है कि युद्ध के कारण स्थगित किये गये केन्द्र तथा प्रान्तों के चुनाव शरद काल में होंगे। इसलिये सम्राट् की सरकार की यह उत्कट इच्छा है कि सभी प्रान्तों के नेता मंत्रित्व का भार स्वीकार करें। सम्राट् की सरकार की यह भी इच्छा है कि जितना शीघ्र संभव हो एक संविधान परिषद बिठाई जाय, और इसीलिये, पहला कदम उठाने के लिये उसने मुझे चुनाव के बाद प्रान्तों की धारासभाओं के प्रतिनिधियों से बातचीत करने का अधिकार दिया है ताकि यह निश्चित हो जाय कि १९४२ की घोषणा की योजना उन्हें मान्य है या इसके बदले में किसी परिवर्तित योजना की आवश्यकता है। देशी राज्यों के प्रतिनिधियों से भी यह निश्चित करने के लिये विचार-विमर्श किया जायगा कि संविधान-परिषद में वे किस प्रकार भाग लेंगे।" जिस दिन लार्ड वेवल ने यहाँ यह घोषणा की उसी दिन प्रधान मंत्री एटली की भी इससे मिलती-जुलती एक घोषणा हुई।

काफी अनुनय के बाद कांग्रेस के नेताओं ने केन्द्र तथा प्रान्तों के चुनावों में भाग लेना स्वीकार किया। इससे देश के राजनीतिक वातावरण में पुनः चेतना पैदा हुई। चुनाव हुए। पहले की भांति आठ प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रि-मण्डल स्थापित हुए। बंगाल और सिंध में लीगी मन्त्रिमंडल बने, और पंजाब में यूनियनिस्ट (जमींदार पार्टी) और कांग्रेस का संयुक्त मंत्रिमंडल स्थापित हुआ जिसके प्रधान मंत्री मलिक खिज्रहयात खां तिवाना थे।

———

मंत्रि-मिशन

नवम्बर १९४५ में ब्रिटिश लोक सभा के सदस्यों का एक मिशन भारत आया। एक मास भारत का चक्कर लगाकर वह वापस चला गया। १९ फरवरी

१९४६ को प्रधान मंत्री एटली ने घोषित किया कि तीन सदस्यों का एक मंत्रि-* मिशन भारत जायगा जो वहां के नेताओं से बातचीत करके भारत को स्वतन्त्रता दिलाने का यथाशीघ्र प्रयत्न करेगा । मंत्रि-मिशन में भारत के मंत्री लार्ड पेथिक लारेंस, बोर्ड ऑफ ट्रेड के अध्यक्ष सर स्टैफर्ड क्रिप्स और फर्स्ट लार्ड ऑफ ऐडमिरेलिटी ए. वी. ऐलेक्ज़ेंडर थे। प्रधान मंत्री ने १५ मार्च को ब्रिटिश लोकसभा में एक और महत्वपूर्ण घोषणा की जिसमें भारतवर्ष की स्वाधीनता की मांग को स्वीकार करते हुए यह भी बतला दिया गया कि वे किसी भी अल्प संख्यक जाति के लोगों का बहुसंख्यकों की प्रगति में रुकावट पैदा करने का अधिकार स्वीकार नहीं करते । † उन्होंने कहा, "...भारत को स्वयं चुनना होगा कि उसका क्या

> संविधान हो, उसकी संसार में क्या स्थिति हो...मुझे आशा है कि भारतीय जनता ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में रहने का निर्णय कर सकती है..."

२४ मार्च को मंत्रि-मिशन दिल्ली पहुंचा । उसने यहां पर विभिन्न दलों और मतों के ४७२ नेताओं के साथ १८२ बैठकें की । १६ मई को उसने भारतीय नेताओं के सम्मुख एक योजना रखी जो निम्न प्रकार थी—

(१) सारे भारतवर्ष का (ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों को मिलाकर) एक भारतीय संघ होना चाहिये जिसके आधीन पराष्ट्र-नीति, रक्षा तथा यातायात विषय होने चाहियें, और अपने इस काम के लिये उसे आवश्यक वित्त एकत्रित करने का अधिकार होना चाहिये ।

(२) संघ में ब्रिटिश भारत तथा रियासतों के प्रतिनिधियों की एक संयुक्त कार्यकारिणी तथा व्यवस्थापिका होनी चाहिये । व्यवस्थापिका में उत्पन्न होने वाले किसी बड़े साम्प्रदायिक प्रश्न के आने पर उसका निर्णय

---

* प्रधान मंत्री ने कहा—"मेरे सहयोगी इस उद्देश्य से भारत जा रहे हैं कि वे वहां के लोगों की शीघ्रताशीघ्र स्वतंत्रता-प्राप्ति में सहायता करें । वर्तमान सरकार के बदले भारतवर्ष में कौन सी सरकार होगी, यह निश्चय करना भारतवासियों का कार्य है; किन्तु हमारी इच्छा उन्हें ऐसे निश्चय करने में हर प्रकार की सहायता देना है ।"

दोनों प्रमुख सम्प्रदायों के उपस्थित प्रतिनिधियों के पृथक-पृथक तथा संयुक्त बहुमत की राय से होनी चाहियें।

(३) संघीय विषयों के अतिरिक्त अन्य सब विषय तथा सब अवशिष्ट शक्तियां प्रान्तों के पास रहनी चाहियें।

(४) उन विषयों को छोड़कर जिन्हें देशी रियासतें केन्द्र के पास देंगी अन्य सब विषयों पर उनका अधिकार होना चाहिये।

(५) प्रान्तों को कार्यपालिकाओं तथा व्यवस्थापिकाओं के साथ समूह बनाने की स्वतन्त्रता होगी, और प्रत्येक समूह सामान्य प्रान्तीय विषयों का निर्णय कर सकेगा।

(६) ऐसे समूह के संविधान में एक धारा ऐसी होनी चाहिये जिसके द्वारा प्रत्येक प्रान्त अपनी विधानसभा द्वारा पहले दस वर्ष के लिये तथा बाद में हर दस वर्ष बाद विधान की धाराओं में परिवर्तन करने की सिफारिश कर सके।

वक्तव्य में यह सुझाव था कि प्रान्तों की धारासभायें १० लाख की जन संख्या पर एक व्यक्ति विधान निर्मात्री सभा के लिये चुन कर भेजेंगी। प्रान्तों को एकाधिक समूहों में संगठित होकर अपना पृथक मंत्रिमंडल और व्यवस्थापिका सभा बनाने का अधिकार देकर मंत्रिमिशन योजना ने परोक्ष रूप से मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग को शह दी। इसके द्वारा स्पष्टतः बंगाल तथा आसाम की एक पृथक इकाई बनती; पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, सिंध और बिलोचिस्तान की दूसरी। इन्हीं क्षेत्रों को मिलाकर मुस्लिम लीग पाकिस्तान की मांग कर रही थी। इसीलिये मंत्रि-मिशन द्वारा पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार करने के कारण उसकी कड़ी आलोचना करते हुए भी लीगने ६ जून के प्रस्ताव द्वारा उसकी योजना को स्वीकार कर लिया।

मंत्रि-मिशन ने प्रान्तीय धारा सभाओं द्वारा पृथक निर्वाचन के आधार पर विधान निर्मात्री सभा का चुनाव करने की भी सिफारिश की। उसने चुनाव के लिये साधारण, मुस्लिम तथा सिक्ख तीन प्रकार के क्षेत्र या वर्ग मान कर विधान निर्मात्री सभा के सदस्यों का धारासभा द्वारा चुनाव करने के

लिये प्रान्त की जन-संख्या (साधारणतः १० लाख की जन-संख्या पर एक सदस्य) के अनुसार उसे स्थान दिये जायेंगे। विधान निर्मात्री सभा की कुल सदस्य संख्या ३८६ रखी गई जिसमें से २९२ सदस्य ब्रिटिश भारत के प्रान्तों से, ९३ देशी रियासतों से और ४ चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों से निश्चित किये गये।

देशी रियासतों के साथ हुई संधियों का हवाला देते हुए १२ मई के वक्तव्य में कहा गया कि रियासतों द्वारा ब्रिटिश सरकार को सौंपी गई प्रभुसत्ता उनके पास वापस लौट जायगी।

१६ मई की घोषणा की व्याख्या करते हुए अगले दिन वेवेल ने रेडियो-भाषण में कहा,

"आपके सम्मुख जो योजनायें रखी गई हैं वे ऐसी नहीं हैं कि जिन्हें कोई अकेला दल स्वीकार करता। किन्तु मेरा विश्वास है कि इन योजनाओं के आधार पर ही भारत का सुव्यवस्थित एवं संगठित संविधान सम्भव है। इनसे भारत की उस मूलभूत एकता की रक्षा संभव है जिससे दो बड़े वर्गों के बीच वैमनस्य का भय बना हुआ है, और ये विशेष रूप से भारतीय सैनिक शक्ति को छिन्न-भिन्न होने से बचा लेंगी, जिसके संगठन पर भारत की भावी सुरक्षा निर्भर करती है।"

मंत्रि-मिशन ने २५ मई की घोषणा में यह भी स्पष्ट कर दिया कि संविधान परिषद द्वारा कार्य आरम्भ हो जाने पर उसके निर्णयों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जायगा।

अन्तर्कालीन मंत्रि परिषद के निर्माण के सम्बन्ध में १६ जून १९४६ को मंत्रि-मिशन का एक वक्तव्य कांग्रेस तथा लीगी दलों के नेताओं में प्रसारित किया गया। इस वक्तव्य के अनुसार १४ व्यक्तियों की एक अन्तर्कालीन मंत्रि-परिषद बनाने का प्रस्ताव रखा गया। मंत्रि-परिषद में ६ सदस्य कांग्रेस के ५ मुस्लिमलीग के तथा तीन अल्पसंख्यक जातियों के रखने की तजवीज की गई। वक्तव्य में आगे कहा गया,

"वाइसराय तथा मंत्रि-मिशन के सदस्य कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की कठिनाइयों से भली भांति परिचित हैं······इसलिये वाद-विवाद को और अधिक बढ़ाना ठीक नहीं है। इस प्रकार अब केवल एक मार्ग शेष है और

वह है सभी वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली एक अन्तरिम सरकार की स्थापना······"

"अन्तरिम सरकार में दोनों प्रमुख दलों का रहना आवश्यक है। यदि वे दोनों या उनमें से कोई एक सम्मिलित न हो सकेगा तो वाइसराय एक ऐसी अन्तरिम सरकार की स्थापना करेंगे जो १६ मई की घोषणा स्वीकार करनेवालों का अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व कर सके।"

भारत के अबतक के संवैधानिक विकास का इतिहास यह बतलाता है कि अंग्रेजों ने जितने भी सुधार किये, भारत संबन्धी कानून ब्रिटिश लोक-सभा ने बनाये और जो योजनायें प्रस्तुत की गई उनमें भारत के नेताओं की सम्मति लेना तो दूर रहा ब्रिटिश शासकों ने जान बूझ कर कभी यह भी जानने की कोशिश नहीं की कि भारतवर्ष के लिये किस प्रकार का संविधान उपयुक्त है, और भारत के नेता क्या चाहते हैं? ब्रेल्सफोर्ड ने व्यंगात्मक रूप से ठीक ही कहा था कि ब्रिटेन को इसका सर दर्द है कि भारतवर्ष में किस प्रकार की सवैधानिक व्यवस्था होनी चाहिये। * ब्रिटिश शासकों ने भारत के कर्णाधार बन कर हमारा भाग्य निर्णय करने के निमित्त जो कार्य किये उनका ब्रेल्सफोर्ड ने बिल्कुल सही चित्रण किया है।

* It is fixed as an obstinate principle in our ruler's minds that God's Englishman must plan the house in which Indians are to live. Our Civil servant will do the drafting. Our Parliament, clause by clause, will debate the Bill. The votes of whitemen responsible to the electors of Govan and Clapham and Cardiff will decide whether India shall have two chambers or one, a wide or a properted franchise ... It is too late in the day for us to play Providence to this awakened nation. Indians will not submit to our paternal authority. They stand for 'self-determination'—the right to choose for themselves the type of Government under which they shall rule themselves."—H. N. Brailsford,

(Gangulee : Constituent Assembly for India, p. 176.)

मुस्लिम लीग ने १६ जून की योजना स्वीकार करली। किन्तु कांग्रेस ने उसे ठुकरा दिया और उसके स्थान पर १६ मई की योजना स्वीकार की। उसने विधान निर्मात्री परिषद् में शामिल होना तो स्वीकार कर लिया, किन्तु अन्तरिम काल के लिये संयुक्त मंत्रिमंडल में जाना अस्वीकार किया। विधान निर्मात्री परिषद् का चुनाव हुआ। उसमें कांग्रेस को २०५ स्थान, मुस्लिम लीग को ७३ और स्वतंत्र उम्मेदवारों को १८ स्थान मिले। देशी रियासतों से प्रतिनिधियों का निर्वाचन नहीं हुआ। अन्तरिम सरकार के निर्माण का जब कोई हल न निकला तब लार्ड वेवल ने २२ जुलाई को कांग्रेस तथा लीग के अध्यक्षों के पास एक और योजना बनाकर भेजी जो इस प्रकार थी—

(१) अन्तरिम सरकार में १४ सदस्य होंगे, जिसमें दलित जाति के एक सदस्य के अतिरिक्त कांग्रेस के ५ सदस्य, मुस्लिम लीग के ५ सदस्य, एक सिख, और अन्य अल्पसंख्यक जातियों में से दो सदस्य वाइसराय द्वारा नामजद होंगे ;

(२) वाइसराय की स्वीकृति हो जाने पर कांग्रेस अथवा लीग को एक दूसरे के नामजद सदस्यों के बारे में आपत्ति करने का अधिकार न होगा ;

(३) कांग्रेस और लीग द्वारा नामावली प्रस्तुत कर देने पर ही विभागों का बटवारा होगा। महत्वपूर्ण विषयों का बटवारा दोनों में बराबर होगा ;

(४) साम्प्रदायिक प्रश्नों का हल दोनों दलों की सम्मति से किया जायगा।

कांग्रेस ने इस योजना को स्वीकार कर लिया, किन्तु लीग ने विरोध किया। वाइसराय ने बिना लीग के सहयोग के ही मंत्रि मंडल का निर्माण करने की घोषणा कर दी। उन्हें पहले अन्तःकालीन योजना को कार्यान्वित करना था, क्योंकि उनका विश्वास था कि अन्तः कालीन व्यवस्था ठीक हो जाने पर दीर्घकालीन योजना स्वतः सफल हो जायगी। मंत्रिमिशन जुलाई के महीने ही वापस चला गया था। इसलिये वाइसराय को पहिले की भांति सारी जिम्मेदारी स्वयं ही निभानी पड़ी। २४ अगस्त को वाइसराय का एक

वक्तव्य प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने जवाहरलालजी के प्रधान मंत्रित्व में मंत्रिमंडल के १२ सदस्यों के नामों की घोषणा की। उसमें पांच हिन्दू, तीन मुसलमान, एक हरिजन, एक सिख, एक ईसाई और एक पारसी सम्मिलित किये गये। दो अन्य मुस्लिम सदस्यों को बाद में शामिल करने की घोषणा की गई। इसके विरोध स्वरूप मुस्लिम लीग ने देश भर में 'डाइरेक्ट ऐक्शन डे' मनाया। इससे हिन्दू मुस्लिम कटुता बढ़ी और कुछ स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे भी हुए। किन्तु अक्टूबर में लीग भी मंत्रिमंडल में शामिल हो गई। विधान निर्मात्री सभा से वह पृथक रही। ६ दिसम्बर को जिन्ना साहब ने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि **"मुस्लिम लीग का कोई भी सदस्य विधान परिषद् में भाग नहीं लेगा, और २६ जुलाई को लीग का बम्बई में पास किया हुआ प्रस्ताव ही उसे मान्य है।"**

विधान परिषद् में लीग का शामिल न होने का यह अर्थ था कि मंत्रि-मिशन योजना सफल न हो। वही हुआ भी।

राजाओं की स्थिति

देशी रियासतों को संघ में शामिल होने के लिये राजी करना एक बहुत ही टेढ़ी खीर था। अब तक रियासतों के ऊपर राजनीतिक विभाग का (जिसका आगे उल्लेख किया जायगा) नियंन्त्रण था। रियासती जनता को बाहरी संसार से अछूता रखकर राजनीतिक विभाग ने उन्हें कुएं का मेंढक बना दिया था। राजाओं को विधान-परिषद् में शामिल न होने देने के लिये उसने अपने प्रभाव का पूरा-पूरा उपयोग किया।†

१६ मई की घोषणा के पैरा १६ (२) में कहा गया था:

"इरादा यह है कि आखिरी विधान-परिषद् में रियासतों को उचित प्रतिनिधित्व मिले जो कि जन-संख्या के आधार पर ब्रिटिश भारत में किये गये हिसाब के अनुसार ६३ स्थानों से अधिक नहीं होगा। किन्तु प्रतिनिधि चुनाव का तरीका समझौते के जरिये तय करना होगा। शुरू में रियासतों का प्रतिनिधित्व एक समझौता कमेटी करेगी।"

---

† देखिये देशी राज्य और जन-आन्दोलन पृष्ठ ५२-५६

देशी नरेशों की समझौता-कमेटी नरेन्द्र मंडल द्वारा बनायी गई और विधान-परिषद की समझौता कमेटी देशी-राज्य लोक-परिषद के नेताओं की सम्मति से बनायी गई। लोक-परिषद की जनरल कौन्सिल ११ जून, १९४६ को एक प्रस्ताव द्वारा सुझाव दे चुकी थी कि "जिन रिसायतों में धारासभाओं द्वारा संविधान-परिषद का चुनाव हो वे प्रत्यक्ष रीति के अनुसार संस्थापित होनी चाहियें। उन्हींके चुने हुए प्रतिनिधियों को संविधान-परिषदके लिए प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होना चाहिये। यह क्रिया भी संबन्धित रियासतों में स्वतंत्र और नये चुनाव होने के पश्चात् स्वीकार हो।"

देशी राज्य लोक-परिषद ने इस बात पर बहुत रोष प्रकट किया कि जब रियासतों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला है तब राजाओं को, जो सिवाय अपने और किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करते, क्यों अनावश्यक महत्व दिया जा रहा है। ए.वी. कीथ का, जो भारत के संविधान पर एक अधिकारी व्यक्ति माने जाते हैं, कहना था कि—

"सम्राट् के सलाहकारों की यह धारणा व्यर्थ है कि रियासती जनता को वे अधिकार नहीं दिये जायंगे जिनका ब्रिटिश भारत के लोग उपभोग करते हैं। उनका कर्त्तव्य है कि वे सम्राट् को सलाह दें कि राजाओं को इस आधार पर संविधान-परिषद में सम्मिलित किया जाय कि वे अपनी रियासतों में शीघ्र प्रजा-राज की स्थापना करें, और उसके लिये सम्राट् को अपने अधिकारों को प्रयोग में लाना चाहिये। वह संघ, जिसमें प्रान्तोंसे जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों को गैरजिम्मेदार देशी नरेशों द्वारा नियुक्त किये हुए व्यक्तियों के साथ बैठने को वाध्य किया जाय, कभी भारतीय हितोंके लिये लाभदायक नहीं हो सकता। वस्तुतः गांधीजी के इस दावे का कोई भी उत्तर नहीं है कि ब्रिटिश सरकार की भांति राजाओं को भी शासन-सत्ता जनता के हाथों में सौंप देनी पड़ेगी।"

१३ अप्रैल १९४७ को एक पत्रकार सम्मेलन में भाषण देते हुए जवाहरलालजी ने भी कह दिया कि "यदि जनता को संविधान परिषद में उचित प्रतिनिधित्व न मिला तो यही नहीं कि वह इसे नापसन्द करेगी, बल्कि मुसीबत पैदा कर देगी।"

नरेन्द्र-मंडल की वार्ता समिति और संविधान-परिषद की वार्ता समिति में काफी वाद-विवाद के बाद अन्त में यह तय हुआ कि संविधान-परिषद में आधे प्रतिनिधि जनता के और आधे राजाओं के होंगे।

ब्रिटिश भारत की राजनीतिक गुत्थी को सुलझाने के लिये प्रधान मंत्री ऐटली ने वाइसराय, जवाहरलाल नेहरू, जिन्ना साहब, सरदार पटेल और लियाकत अली खां को लन्दन बुलाया। सरदार पटेल के अस्वस्थ होने के कारण उनके स्थान पर सरदार बलदेव सिंह गये। लन्दन-वार्ता का भी कोई सन्तोषजनक परिणाम न निकला। वार्ता की असफलता पर ब्रिटिश सरकार द्वारा एक वक्तव्य निकाला गया जिसमें कहा गया कि "यदि कोई ऐसा

संविधान तैयार होता है जिसमें भारतीय जन-संख्या के किसी बड़े भाग का प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है तो सम्राट् की सरकार उसे देश के किसी अनिच्छुक भाग पर नहीं लाद सकती।"

२० फरवरी १९४७ को ब्रिटिश लोक सभा में प्रधान मंत्री एटली ने कहा कि ३० जून १९४८ तक ब्रिटिश सरकार सत्ता भारतवासियों के हाथ में सौंप देगी। *

पाकिस्तान स्वीकार किये जाने के संबन्ध में कुछ भी स्पष्ट नहीं किया गया, किन्तु यह संकेत अवश्य किया गया कि वे भारत को दो या दो से अधिक टुकड़ों में बांटने को तैयार हैं। † जिन्ना साहब इससे बहुत प्रसन्न हुए।

---

* ऐटली ने कहा—"सम्राट् की सरकार की यह इच्छा है कि उत्तरदायित्व उन लोगों को सौंपा जाय जिन्हें भारत के सभी दलों द्वारा बनाया गया संविधान स्वीकृत हो। सत्ता हस्तान्तरित करने का यह कार्य मंत्रि-मिशन योजना के अनुसार होना चाहिये। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसी कोई संभावना नहीं दिखाई देती है कि भारत में ऐसी कोई संविधान तैयार होगा। वर्तमान अव्यवस्था से अनेक खतरे पैदा हो सकते हैं, इसलिये उसे अधिक समय तक नहीं बना रहने दिया जा सकता। सम्राट् की सरकार स्पष्ट कह देना चाहती है कि वह उत्तरदायित्वपूर्ण भारतीय हाथों में सत्ता हस्तान्तरित करने के लिये प्रस्तुत है और सत्ता हस्तान्तरित करने का अन्तिम समय जून १९४८ ही है।"

† पैरा ७ का उल्लेख करते हुए प्रधान—मंत्री ने कहा—"यदि यह प्रतीत होगा कि पैरा ७ में दिये गये समय से पूर्व भारत के सभी प्रमुख दलों की स्वीकृति-प्राप्त संविधान का निर्माण न हो सकेगा तो सम्राट् की सरकार को यह निश्चय करना पड़ेगा कि निश्चित समय पर किसे सत्ता सौंपी जाय—ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय

उन्होंने कहा कि इस घोषणा में पाकिस्तान का निर्माण निहित है। भारत-मंत्री ने हाउस ऑफ लॉर्ड्स में इसका स्पष्टीकरण भी कर दिया। *

माउण्टबेटेन-योजना

२० फरवरी को लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउण्टबेटेन को भारत का नया वाइसराय बना दिया गया। उनके भारत आगमन के थोड़े दिनों बाद ही पाकिस्तान के निर्माण को मूर्तिरूप देने का कार्य सम्पन्न हो गया। भारत के विभिन्न दलों और ब्रिटिश सरकार से परामर्श करके लार्ड माउण्टबेटेन ने ३ जून १९४७ को एक योजना प्रस्तुत की जिसके अनुसार भारत को दो टुकड़ों में खण्डित करके दो उपनिवेश—भारत और पाकिस्तान—निर्माण की तजवीज थी। उन्होंने कहा कि वर्तमान संविधान-परिषद् के कार्य में विघ्न डालने की उनकी इच्छा नहीं है। किन्तु फिर भी संविधान-परिषद् द्वारा निर्मित संविधान देश के उन भागों पर नहीं थोपा जा सकता जो उसे स्वीकार करने को अनिच्छुक हैं। यह देखने के लिये कि वह नयी संविधान परिषद् चाहते हैं अथवा नहीं, निम्न कार्य प्रणाली को अपनाया जायगा—बंगाल तथा पंजाब में यूरोपियन सदस्यों को छोड़कर दोनों प्रान्तों की धारासभायें दो भागों में मिलेंगी, एक मुस्लिम बहुसंख्यक तथा दूसरी प्रान्त के शेष भाग का प्रतिनिधित्व करेगी। व्यवस्थापिका के दोनों भागों के सदस्य अलग-अलग बैठकर इस बात का निर्णय करेंगे कि प्रान्त का विभाजन किया जाय अथवा नहीं। विभाजन का निर्णय होने की स्थितिमें, व्यवस्थापिका सभा का वह क्षेत्र, जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है, यह निर्णय करेगा कि वह

सरकार को, या वर्तमान प्रान्तीय सरकारों को, अथवा किसी अन्य रीति से जो भारतवासियों के हित में सबसे उपयुक्त हो।"

*"So far as I know the Muslim Leagee have not expressed any opinion, but I shall not be surprised if when they read the terms of the statement carefully and with due consideration they think it is so likely to produce. Pakistan.

प्रस्तुत संविधान-परिषद में सम्मिलित हों, अथवा किसी दूसरी में। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और सिलहट को जनमत से निर्णय करने का अधिकार दिया गया। सिंध का भाग्य निर्णय वहां की धारासभा करेगी।

देशी रियासतों के संबन्ध में ३ जून की योजना में कहा गया कि वे अपनी इच्छानुसार दो में से चाहे जिस उपनिवेश की विधान-परिषद में शामिल हो सकती हैं। केवल दो ही सार्वभौम राज्य स्वीकार किये जाते हैं जिन्हें सत्ता सौंपी जायगी; सर्वोच्च सत्ता का अन्त हो जायगा, किन्तु भारत सरकार और रियासतों के बीच वर्तमान समझौते तब तक जारी रहेंगे जब तक कि उन (रियासतों) के और उस उपनिवेशके बीच, जिसमें वे शामिल होंगी, नया समझौता नहीं हो जाता; रियासतें भौगोलिक आधार पर दो में से किसी एक संविधानपरिषद में शामिल होंगी। राजाओं की स्वतंत्रता की ओर १६ मई और ३ जून की घोषणा में जो संकेत किया गया था उसका विभिन्न दृष्टिकोणों से अलग-अलग अर्थ लगाया गया। इस संबन्ध में जिन्ना ने एक वक्तव्य देते हुए कहा,—

> **"सार्वभौम सत्ता का अन्त हो जाने पर रियासतें पूर्ण स्वतंत्र हो जायंगी तब उन्हें पूर्ण अधिकार होगा कि वे चाहे पूर्णतः स्वतंत्र रहें या हिन्दुस्तान अथवा पाकिस्तान किसी भी संविधान-परिषद में शामिल हों। मुस्लिम लीग किसी भी रियासत के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप न करेगी। वे यदि पाकिस्तान संविधान-परिषद में आने अथवा स्वतंत्र रूप से पाकिस्तान सरकार से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करेंगी तो हम सहर्ष बातचीत करने के लिये तैयार हैं।"**

कहना न होगा कि कई रियासत स्वतंत्र होने का स्वप्न देखने लगीं। त्रावणकोर-नरेश और निजाम—हैदराबाद ने तो अपनी स्वतंत्रता की घोषणा भी कर दी थी। यदि देशी नरेशों की स्वतंत्रताका अनधिकृत दावा स्वीकार कर लिया जाता तो भारतवर्ष दो खण्डों में विभक्त होने की अपेक्षा लगभग छः सौ खंडों में विभक्त होकर समाप्त हो जाता। यही नहीं, वे स्वतंत्र होने की स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक विचित्र समस्या उत्पन्न करतीं। भारत वर्ष में साठ रियासतें ऐसी थीं जो संयुक्त राष्ट्र-संघ का सदस्य होने के लिये निश्चित भू-भाग, जन संख्या और आय की शर्त को पूरा करती थीं।

उदाहरण के लिये लक्सेमबर्ग संयुक्त राष्ट्र-संघ का एक सदस्य है जिसका क्षेत्रफल केवल ६६६ वर्ग मील है। भारत वर्ष की ५७ से अधिक रियासतें ऐसी थीं जिनका क्षेत्रफल लक्सेमबर्ग से अधिक था। सयुक्त राष्ट्र सघका दूसरा स्वतत्र सदस्य आइसलैंड है जिसकी जनसंख्या केवल एक लाख तेईस हजार है और भारत वर्ष के ६५ रियासतों की जन-संख्या आइसलैंड से अधिक थी। उसी प्रकार लाइबेरिया का भूमि-कर ४४ लाख रुपया है। ६२ देशी रियासतों की आय उससे अधिक थी। इस प्रकार ५८४ देशी राज्यों में लगभग ६० तो ऐसी थीं ही जो सयुक्त राष्ट्र-संघ का सदस्य होने की क्षेत्रफल, जन-संख्या और भूमि-कर तीनों शर्तों को पूरा करती थीं। सन् १९४६ तक, जब कुछ देशी-नरेश स्वतंत्र होने का स्वप्न देख रहे थे, सयुक्त राष्ट्र सघ में कुल ५५ राष्ट्र थे। उनमें तीन निरंकुश राजाओं के प्रतिनिधि थे। उन तीनों देशों का समर्थन पाकर भारतीय राजे राष्ट्र-संघ में ६३ सदस्यों का एक गुट बना लेते, बिना उन तीन प्रतिनिधियों के भी उनका बहुमत होता और भारत की अन्य छोटी रियासतें भी संघ बनाकर सयुक्त राष्ट्र-सघ में प्रवेश पा जातीं तो संयुक्त राष्ट्र संघ की क्या स्थिति होती इसकी आज केवल कल्पना ही की जा सकती है।

माउण्टबेटेन-योजना के अनुसार दोनों उपनिवेशों का जन्म १५ अगस्त १९४७ को होना तय किया गया। दोनों उपनिवेश स्वेच्छा पूर्वक राष्ट्र-मंडल के सदस्य बने रहें अथवा उससे पृथक हो जायं, यह उसमें स्पष्ट कर दिया गया था। जब तक दोनों उपनिवेश अपने स्वतंत्र सविधान नहीं बना लेते दोनों का प्रशासन १९३५ के विधान के अनुसार कुछ सशोधनों के साथ चलेगा। अल्पकालीन व्यवस्था में मंत्रि-मंडल धारासभा के प्रति उत्तरदायी होगा। गवर्नर-जनरल तथा गवर्नरों की स्थिति वैधानिक शासकों की तरह होगी। दोनों उपनिवेश स्वेच्छा से अपने गवर्नर-जनरल तथा गवर्नर नियुक्त कर सकेंगे।

ब्रिटिश लोकसभा का भारतीय स्वतंत्रता कानून

४ जुलाई को मजदूर दल की सरकार ने ब्रिटिश लोकसभा के सम्मुख भारतीय-स्वाधीनता विधेयक प्रस्तुत किया। अनुदार दल ने उसका कड़ा विरोध किया।* काफी वाद-विवाद के पश्चात् १५ जुलाई को उसने कानून का रूप धारण किया। इस कानून की पहली धारा में लिखा था कि—

" १५ अगस्त १९४७ से भारतवर्ष में दो स्वतंत्र उपनिवेश बनेंगे जिनके नाम क्रमानुगत भारत और पाकिस्तान होंगे।"

दूसरी, तीसरी और चौथी धाराओं में दोनों उपनिवेशों के प्रदेशों का उल्लेख किया गया। पांचवीं धारा में कहा गया कि—

"प्रत्येक उपनिवेश के लिये सम्राट द्वारा नियुक्त एक गवर्नर-जनरल होगा, किन्तु इस शर्त पर कि जब तक किसी उपनिवेश की संविधान-सभा इसके विरुद्ध नियम न बनाये, तब तक एक ही व्यक्ति दोनों उपनिवेशों का गवर्नर-जनरल नियुक्त किया जा सकेगा।"

छटी धारा में उनकी संविधान सभाओं के निर्माण और उनके कार्यों का उल्लेख किया गया,

"प्रत्येक उपनिवेश की विधानसभा को अपने उपनिवेश सम्बन्धी सब नियमों के, जिनमें उपनिवेश के बाहर लागू होने वाले नियमों को भी सम्मिलित किया जा सकता है, बनाने का पूर्ण अधिकार होगा।"

---

*Sir John moved the motion for the opposition :

"That this House, while reaffirming its determination to provide for orderly attainment by India of self-Government, as soon as possible, is unable to accept the British Government's latest declaration on Indian policy which by fixing an arbitrary date, prejudices the possibility of working out a suitable constitutional plan either for a united or divided India, which ignores the obligation expressed to the minorities or sections of opinion, which contains no proposals for security or compensation for members of the Indian services and which offers no help to or association with India in her hour of destiny."

सातवीं धारा में देशी रियासतों और कबाइली क्षेत्रों का उल्लेख था। देशी राज्यों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गई कि—

"निश्चित तिथि से भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में सम्राट् की प्रभुसत्ता समाप्त हो जायगी।······वे सन्धियां और समझौते, जो कानून के बनने के समय सम्राट् और रियासत के सम्बन्ध में लागू थे, वे कार्य जो सम्राट् रियासतों के सम्बन्ध में करते थे, वे बन्धन जो सम्राट् पर रियासतों तथा उनके नरेशों के थे, और वे सब अधिकार जो उस दिन तक संधियों, प्रथाओं, स्वीकृतियों तथा अन्य कारणों से सम्राट् के थे, निर्धारित दिन से समाप्त हो जांयगे।"

कानून की आठवीं और नवीं धारा में संक्रमण कालीन प्रशासन का उल्लेख किया गया। दसवीं धारा भारत मंत्रीके अधिकारियों की नौकरियों के सम्बन्ध में थी। ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं धाराओं में भारतीय सेना के विभाजन की व्यवस्था थी। इस कानून की अठारहवीं धारा में लिखा था—

"जब तक कानून में दूसरी व्यवस्था न की गई हो, निश्चित तिथि को ब्रिटिश भारत और उसके विभिन्न भागों पर अथवा आवश्यकतानुसार संशोधित नियम दोनों उपनिवेशों पर लागू रहेंगे, जब तक उपनिवेशों की संविधान सभाओं तथा अन्य विधान-सभाओं या किसी अन्य अधिकार प्राप्त संस्था अथवा अधिकारी द्वारा कोई और व्यवस्था न की गई हो।"

१५ अगस्त को भारत का विभाजन हो कर दो स्वतंत्र उपनिवेशों का जन्म हुआ। पाकिस्तान का निर्माण हो जाने पर भारतीय संविधान-परिषद् के संगठन में कुछ परिवर्तन आवश्यक हो गया। उसमें प्रान्तों के अनुसार निम्न प्रकार से प्रतिनिधित्व निश्चित किया गया :—

प्रान्त	साधारण	मुसलम	सिख	योग
बम्बई	१६	२	—	२१
मद्रास	५२	४	—	५६
मध्य प्रदेश	१६	१	—	१७
उत्तर प्रदेश	४६	७	—	५३
बिहार	३०	५	—	३५

उड़ीसा	९	—	—	९
पश्चिमी बंगाल	१७	२	—	१९
आसाम	५	२	—	७
पूर्वी पंजाब	५	४	२	११
दिल्ली	१	—	—	१
कुर्ग	१	—	—	१
अजमेर-मेरवाड़	१	—	—	१
योग—	२०२	२७	२	२३१

देशी रियासतों को निम्न प्रकार से प्रतिनिधित्व दिया गया:—

रियासत	सदस्यों की संख्या	रियासत	सदस्यों की संख्या
हैदराबाद	१६		
मैसूर	८	पूर्वी राज्य	७
ग्वालियर	४	पश्चिमी राज्य	३
बड़ोदा	२	पूर्वी राजस्थान राज्य	३
उदयपुर	२	मध्य भारत राज्य	३
जयपुर	३	कोचीन	१
जोधपुर	२	मयूरभंज	१
बीकानेर	१	सिक्किम-कूच बिहार	१
अलवर	१	मणिपुर-त्रिपुरा	१

कोटा	१	गुजरात राज्य	३
इन्दोर	१	यू, पी. की रियासतें	२
रीवाँ	२	मद्रास की रियासतें	२
पटियाला	१	काश्मीर	४
कोल्हापुर	३	शेष राज्य	४

कुल राज्यों के सदस्य—८२

मुस्लिम बहुल प्रदेशों के पाकिस्तान चले जाने से संविधान परिषद में ३८९ के स्थान पर ३१० ही सदस्य रहे उनमें भी दो सदस्यों के निरन्तर अनुपस्थित रहने के कारण कुल ३०८ सदस्यों ने भाग लिया।

१५ अगस्त १९४७ से दोनों देशों की संविधानपरिषदें अपना-अपना संविधान बनाने लगीं। मंत्रि-मिशन योजना के अनुसार उन्हें सार्वभौम अधिकार प्राप्त नहीं थे, और उनके बनाये हुए विधान के लिए ब्रिटिश लोकसभा की स्वकृति लेनी आवश्यक थी। किन्तु लोकसभा द्वारा भारतीय स्तंत्रता विधि बन जाने पर भारत को सार्वभौम अधिकार प्राप्त हो गये। भारत की राजधानी दिल्ली ही रही। पाकिस्तान ने अपनी राजधानी कराची में स्थापित की। भारत के प्रथम गवर्नर-जनरल लार्ड माउण्टबेटेन ही रहे, पाकिस्तान के पहले गवर्नर-जनरल लीग के कर्णधार और पाकिस्तान के निर्माता मुहम्मद अली जिन्ना चुने गये। अविभाजित भारत की सम्पत्ति, जैसे रिजर्व बैंक का धन, सामरिक महत्व की वस्तुयें, डाक, तार, रेल, बड़े कारखाने इत्यादि दो भागों में बांट दिये गये।

भारत के इतिहास में १५ अगस्त और २६ जनवरी दोनों का राजनीतिक महत्व है। ये दोनों तीथियां आज और आनेवाले युग में सदा भारत की स्वतंत्रता की याद दिलाती रहेंगी। १५ अगस्तको हमें ब्रिटिश शासन से मुक्ति

मिली और राजनीतिक प्रभुसत्ता प्राप्त हुई;* २६ जनवरी को हमने एकबार स्वतंत्र होने की प्रतिज्ञा की थी और इसी २६ जनवरी को स्वतंत्रभारत का संविधान तैयार हो जाने पर हमने लोकतंत्रनात्मक गणराज्य की घोषणा की। २६ जनवरी भारतके गणराज्य - संविधान के समारम्भ का दिवस ही नहीं, बल्कि संयोगवश आस्ट्रेलिया का राष्ट्रीय दिवस भी है।

संविधान

संविधान, एक लेखक ने कहा है. किसी देश का वह बुनियादी कानून है, जो इस बात का निर्देश करता है कि प्रभुसत्ता का आधार क्या है, वह सत्ता किन संस्थाओं एवं व्यक्तियों को प्राप्त होगी और वे किस प्रकार उसका उपयोग कर सकेंगे।

संविधान-सभा से अभिप्राय एक ऐसी प्रतिनिधि सभा से होता है जिसकी स्थापना किसी स्वतंत्र देश के लिए नया विधान बनाने या पुराने विधान को बदलने अथवा उसमें संशोधन करने के लिये होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संविधान का निर्माण किसी राष्ट्र के राजनोतिक जोवन और उसके प्रशासकीय ढांचे में आमूलभूत परिवर्तन करने के लिये होता है। यह परिवर्तन अप्रत्यक्षित रूपसे अथवा केवल काल्पनिक अथवा दार्शनिक विचारधारा पर आधारित नहीं होता, वरन् समय की मांग के अनुसार एक स्थायी योजना के रूप में कुछ

---

* "By political sovereignty is meant, on the one hand, complete freedom from the legal control of any other power whatsoever, and, on the other hand, absolute and exclusive control over the legal rights and obligations of its citizens individually considered or grouped into larger or smaller association."

W. W. Willoughby : The American Constitutional —Sytem.

सिद्धान्त निर्धारित किये जाते हैं जिन्हें क्रमबद्ध करके संविधान का रूप दिया जाता है। लेखकों ने संविधान की भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है। विधानों की व्याख्या करते हुए डाक्टर ब्रजमोहन शर्मा लिखते हैं कि—

"(क) व्यवस्थापिका सभाओं के द्वारा जो प्रस्ताव पास किये जा चुके हैं वे संविधि (Statutes) के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। (ख) जो विधान कुछ ही समय के लिये बनाये जाते हैं वे समयादेश अथवा सामयिक विधि (ordinance) के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। (ग) वे रीति-रिवाज तथा प्राचीन काल से चले आनेवाले नियम जिनके अनुसार न्यायालय मुकदमों का निर्णय करती है और जो व्यवस्थापिका सभाओं के द्वारा नियमपूर्वक पास नहीं किये गये हैं, दैनिक नियम वा साधारण विधि (Common law) के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। (घ) आजकल भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में कुछ ऐसे भी नियम प्रचलित हैं जो कि बहुत कुछ स्थिर हैं और जिनमें राज्य शासन-प्रणाली तथा राज्यांगों के अधिकारों का विशेष रूप से वर्णन है। ऐसे विधानों को शासन-पद्धतीय नियम अथवा संविधान (Constitutional law) के नाम से सम्बोधित किया जाता है।"

संविधान को राष्ट्रीय-विधानों का एक महत्वपूर्ण उपभेद बतलाते हुए डाक्टर शर्मा आगे लिखते हैं कि—

"राष्ट्र के संगठन तथा राज्यकी शक्तियों का निर्देश संविधान (Constitutional law) के द्वारा होता है। इन्हीं विधानों से सर्वोच्च सत्ता का स्थान नियत किया जाता है। यदि ये विधान न हों तो सर्वोच्च सत्ता का स्थान पूर्णरूप से तथा स्पष्ट रूप से जाना न जा सके।"*

प्रभुसत्ता किसे कहा जायगा? विलोबी के शब्दों में तो—

राज्य की सर्वोच्च इच्छा का नाम ही प्रभुसत्ता है।†"

---

* डा० ब्रजमोहन शर्मा : राजशास्त्र के मूल सिद्धान्त, पृ० ३३७-३८

† Nature of the State, p. 280.

और फ्रेडाकि पोलाक के अनुसार—

"प्रभुसत्ता वह शक्ति है जो न तो स्थायी है, न प्रदत्त। न तो वह शक्ति किसी विशेष नियम पर निर्भर है और न नियम उसमें कोई परिवर्तन ही कर सकते हैं।"*

मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार सर्वहारा वर्ग के लिये अपेक्षित है कि वह शासन-सत्ता हाथ में लेने बाद भद्रलोकवर्ग द्वारा खड़े किये गये प्रस्तुत प्रतिगामी शासन के सारे ढांचे को समाप्त करके उसके स्थान पर सच्चे अर्थों में प्रतिनिधित्व पूर्ण संगठन का नव-निर्माण करे।

राज्य की प्रशासकीय व्यवस्था नागरिकों पर नियंत्रण और अनुशासन रखती है; संविधान नागरिकों के अधिकारों की रक्षा और उनके कर्त्तव्यों का ज्ञान कराता है। संविधान सरकार के विभिन्न अंशों की व्याख्या करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिस रीति से व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका पृथक-पृथक रूप से तथा एक दूसरे के सहयोग से संचालित होते हैं उसकी रूपरेखा संविधान में निहित होती है। व्यवस्थापिका कानून बनाती है, कार्यपालिका उसे कार्यान्वित करती है और न्यायपालिका निर्णय देती है कि कानून को उचित रूपसे कार्यान्वित किया गया है या नहीं।

---

*Sir F. Pollock: History of the Science of politics —p. 43.

"The Constituent Assembly is that body of rules or laws, written or unwritten. which determine the organisation of the Government, the distribution of powers to the various organs of the Government and the general principles on which these powers are to be exercised."

(R. R. Saksena: A Hand-book of Indian Legislatures, p. 3.)

",The Constituent Assembly comes into existence to protect the bourgeois class against disruption."

(N. Gangulee: Constituent Assembly for India, p. 20)

हमें यहां पर संविधान की ऐतिहासिक विवेचना करने की आवश्यकता नहीं। न यह जानना ही बहुत आवश्यक है कि प्राचीन कालसे उसका देश और कालके अनुसार क्या स्वरूप रहा है। तथापि संविधान के उन स्वरूपों का कुछ उल्लेख करना अपेक्षित है जिनकी भित्ति पर आज लोकतंत्रीय देशों की व्यवस्था आधारित है।

विकसित और निर्मित संविधान

संविधान दो प्रकार के होते हैं, एक विकसित और दूसरा निर्मित। ऐसे संविधान जिनका निर्माण किसी निश्चित तिथि में न होकर शनैः शनैः कई शताब्दियों में विकसित होकर होता है विकसित संविधान कहलाता है। विकसित संविधान अलिखित होता है। इंगलैंड का संविधान विकसित और अलिखित है।* फ्रान्सीसी लेखक ऑग ने उसके सम्बन्ध में कहा है :

> "अंग्रेजों ने अपने संविधान के विभिन्न अंगों को वहीं पर छोड़ रखा है, जहां ऐतिहासिक धाराओं ने उन्हें छोड़ दिया था। उन्होंने उनके वर्गीकरण, पूर्तिकरण एवं सामंजस्यपूर्ण इकाई के निर्माण द्वारा कभी भी उनके एकत्रित करने का प्रयत्न नहीं किया।"†

---

* "The English Constitution is a mass of precedents, carried in men's memories or recorded in writing, of dicta of lawyers or statesmen, of customs, usage, understandings and beliefs bearing upon the methods of Government, together with a certain number of statutes, some of them containing matters of petty detail, others relating to private just as much as to public law, nearly all of them pre-supposing and mixed up with precedents and customs, and all of them covered with a parasitic growth of legal decisions and political habits, apart from which the statutes would be almost unworkable, or at any rate quite different in their working from what they really are."

(Viscount Bryce : Studies in History and Jurisprudence, Vol. I, pp. 156-157.)

† Ogg : English Government and Politics, p. 63.

इसके विपरीत जो संविधान लिखित होता है तथा जिसका निर्माण किया जाता है उसे निर्मित संविधान कहते हैं। वह जनता के प्रतिनिधियों द्वारा अथवा शासनारुढ व्यक्ति की आज्ञा से निर्मित किसी कमेटी के द्वारा बनाया जा सकता है। संविधान निर्मात्री सभा अस्थायी होती है और एक बार अपना कार्य सम्पादित करने के पश्चात वह समाप्त हो जाती है।

भारतवर्ष का सवि-धान विदेशी सरकार द्वारा बनाये गये कानून के आधार पर निर्मित व्यवस्थापिकाओं के प्रतिनिधियों की संविधानपरिषद ने निर्मित्त किया।

कठोर और लचकदार संविधान

राजनीतिशास्त्र में किसी भी देश का संविधान संशोधन की प्रक्रिया की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जाता है—कठोर और लचकदार। जहां विधान सभा एक साधारण कानून की भांति संवैधानिक संशोधन पास कर सकती है, वहां लचकदार संविधान होता है। इससे देश के वैधानिक विकास में कोई रुकावट नहीं आती। इसके विपरीत, जहां विधान सभा को साधारण रूप से संविधान में संशोधन करने का अधिकार नहीं होता और उसके लिये एक भिन्न प्रकियाको अपनाना पड़ता है वहां का संविधान कठोर माना जाता है।* लचकदार कानून की व्याख्या करते हुए प्लेटो पहले ही लिख चुका

*"A flexible Constitution is one under which every law of every description can legally be changed with the same ease and in the same manner by one and the same body . . . . A 'rigid' Constitution is one under which certain laws generally known as constitutional or fundemental laws cannot be changed in the same manner as ordinary laws."

Prof. Dicey ; The Law of the Constitution, pp.122–23.

"A'rigid'Constitution is one wbich can be atterned and amended only by the employment of some special, and extra-ordinary, and prescribed machinery, distinct from the machinery, of ordinary legislation."

J. A. R. Marriot : English Political Instiuutions, p. 17.

था कि कानून निर्माता को उसमें समय-समय पर संशोधन करने की गुंजाइश रखनी चाहिये ताकि आवश्यकतानुसार कानून में तब तक सुधार किया जाय जब तक कि वह अन्तिम रूप से ठोस शक्ल नहीं अख्तियार कर लेता।* इस दृष्टि से इंगलैंड का संविधान लचकदार और अमेरिका का कठोर है। ब्रिटिश लोकसभा के साधारण कानूनों की भांति संवैधानिक कानूनों में भी संशोधन के लिये केन्द्रीय विधान-सभा के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृत होकर कुल राज्यों की कम से कम आधी संख्या के विधानसभाओं द्वारा समर्थन होना अनिवार्य है। अमेरिकन संविधान में संशोधन की व्यवस्था इस प्रकार है—

"कांग्रेस, जब कभी उसके दोनों सदन दो-तिहाई (उपस्थित सदस्यों का दो-तिहाई) बहुमत से आवश्यक समझें, संविधान में संशोधन प्रस्तुत करेगी, या दो-तिहाई राज्यों के विधान-मण्डलों की प्रार्थना पर, संशोधन प्रस्तुत करने के लिये एक राष्ट्रीय परिषद् आमंत्रित करेगी। उक्त दोनों प्रकार के संशोधन जब तीन-चौथाई राज्यों के विधान-मण्डलों या परिषदों द्वारा, दो में जिस किसी ढंगको कांग्रेस स्वीकार करे, स्पष्ट कर दिये जायंगे, तो वे सब अवस्थाओं के लिये संविधान के अंग हो जायंगे।"

लिखित और अलिखित संविधान

वो भी संविधान पूर्णतया लिखित नहीं होता, बल्कि लिखित और अलिखित शब्दों का प्रयोग सापेक्षिक अर्थ में होता है। लिखित संविधानों में प्रायः सरकार के मोटे सिद्धान्तों का ही समावेश होता है और प्रशासन की प्रक्रिया विधान सभायें अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं निर्मित कर लेती हैं। फ्रान्स, अमेरिका, रूस, अफ्रीका के संविधान लिखित हैं। जहां के संविधान

* (Laws VI, 772 B.)

एक समय बैठकर नहीं बनाये जाते वरन् विकसित होते हैं वे अलिखित परम्पराओं के रूप में विकसित होते हैं। इंगलैण्ड का संविधान इसका एक उदाहरण है। *

हमारा संविधान लिखित है और इसमें प्रशासन के नियम विस्तार के साथ दिये गये हैं। यह ससार के सब देशों के लिखित और निर्मित संविधानों से बड़ा है, इसलिये इसे विशाल लेख्य कहते हैं। सविधान के प्रारूप में कुल ३६५ धारायें तथा ८ अनुसूचियां हैं। कुछ धारायें २६ नवम्बर १९४९ से लागू हो गईं, और शेष २६ जनवरी १९५० से। २४ जनवरी को डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद प्रथम राष्ट्र-पति चुने गये। २६ जनवरी १९५० की अर्द्ध-रात्रि के समय भारत 'सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न-लोकतंत्रात्मक-गणराज्य' हुआ। संविधान निर्माण में व्यय किये गये धन और समय का लेखा-जोखा करके देखा गया है कि ६३,९६, ७२९ रुपये व्यय करके दो वर्ष बारह महीने अठारह दिन में वह तैयार हुआ। संविधान-परिषद के कुल ग्यारह अधिवेशन हुए जिनमें १६५ दिन लगे। इनमें से ११४ दिन तक संविधान के प्रारूप पर विचार किया गया। अन्य देशों में आस्ट्रेलिया का सविधान (१२८ धारायें) दो वर्ष पांच महीने में, अमेरिका का संविधान (७ धारा में) चार मास में और अफ्रीका का संविधान एक वर्ष में तैयार हुए।

* मुनरो लिखता है कि ब्रिटिश संविधान "संस्थाओं, सिद्धान्तों और प्रयोगों का संयुक्त मिश्रण है। यह चार्टरों, कानूनों, न्यायालयों के निर्णय 'कामन ला,' प्रथाओं और परम्पराओं का मिश्रण है। यह एक विवरण पत्र या 'डाकुमेंट' नहीं है वरन् हजारों पत्रों का भण्डार है। यह एक श्रोत से नहीं निकला है वरन् कितने ही श्रोतों से प्रवाहित हुआ है। यह समाप्त नहीं हुआ बल्कि इसका विकास होता जा रहा है।" Munero : Governments of Europe. P. 21.

संसदीय और अध्यक्षात्मक संविधान*

जिन देशों में लोकतन्त्रीय व्यवस्था है उनमें दो प्रकार की शासन पद्धतियां— संसदीय या अध्यक्षात्मक पद्धतियां प्रचलित हैं। संसदीय पद्धति में राज्य का प्रधान चाहे संवैधानिक रूप से सर्वशक्तिमान हो किन्तु व्यावहारिक रूप में

---

†एक लेखक ने संसदीय और अध्यक्षात्मक प्रणालियों की निम्न प्रकार तुलना की है :—

१. अध्यक्षात्मक प्रणाली अधिकार विभाजन के सिद्धान्त पर अवलम्बित है। संसदीय पद्धति अधिकार सम्मिलन (कार्यपालिका और विधान मण्डल) के आधार पर निर्मित है।

२. अध्यक्षात्मक प्रणाली में प्रधान शासक अर्थात् राष्ट्राध्यक्ष राष्ट्र का वास्तविक शासकीय प्रधान है और सारा अधिकार, व्यवहार और विधान की दृष्टि से, उसी में निहित है। संसदीय प्रणाली में राज्य का प्रधान नाम मात्र का प्रधान है। वह केवल वैधानिक प्रधान है।

३. अध्यक्षात्मक प्रणाली में कार्यपालिया विधानतः व्यवस्थापक मण्डल से स्वतंत्र होती है। संसदीय पद्धति में कार्यपालिका संसद् की एक समिति है।

४. अध्यक्षात्मक प्रणाली में राष्ट्राध्यक्ष का कार्य-काल संविधान से निश्चित है। संसदीय प्रणाली में सरकार तब तक पदासीन होती है जब तक वह विधान मंडल की विश्वास-पात्र होती है।

५. अध्यक्षात्मक प्रणाली में मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्राध्यक्ष द्वारा होती है और वे उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं। वे किसी भी रूप में व्यवस्थापक मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। संसदीय पद्धति में मंत्रि-परिषद् विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है।

६. अध्यक्षात्मक प्रणाली में मंत्रिगण विधान-मण्डल के सदस्य नहीं होते। वे विधान मण्डल की बैठकों में उपस्थित नहीं हो सकते, कोई प्रस्ताव या विधेयक पुनः स्थापित नहीं कर सकते और न बोल सकते हैं। संसदीय पद्धति में प्रमुख विधेयकों और प्रस्तावों को उपस्थित करने तथा पुनः स्थापित करने के लिये वे उत्तरदायी हैं।

७. जहां विधान-मण्डल, कार्यपालिका और न्यायपालिका एक दूसरे से स्वतंत्र है, वहां पर अध्यक्षात्मक प्रणाली होती है। जहां कार्यपालिका विधान मण्डल पर आश्रित होती है वहां संसदीय सरकार होती है।

वह केवल निमित्तमात्र होता है और उसके पास कोई शक्ति नहीं होती। राज्य का प्रशासन कार्यपालिका (मन्त्रि-परिषद) करती है जो संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। अध्यक्षात्मक व्यवस्था में राष्ट्र का प्रधान राष्ट्रपति होता है। उसके पास बहुत शक्ति होती है। मंत्रियों को रखना और उन्हें अपदस्थ करना राष्ट्रपति के हाथ में होता है। उसकी नियुक्त की हुई राज्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती।

> "मंत्री लोग सदा इस बहाने अपने उत्तरदायित्व से बच सकते हैं कि अमुक कार्य उनके अधिकार-क्षेत्र से बाहर है, या अमुक कुप्रभाव का उत्तरदायित्व, असावधानी के कामोंके कारण, संघके अंतर्गत किसी राज्य का है।"*

किसी देश का प्रधान यदि राष्ट्रपति कहलाता हो तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि वहां अध्यक्षात्मक पद्धति होगी। बात वास्तव में इस पर निर्भर करती है कि शक्ति किस में निहित है। भारत का प्रधान राष्ट्रपति है, किन्तु चूंकि यहां वास्तविक सत्ता संसद में निहित है इसलिये यहां पर संसदीय पद्धति विद्यमान है। संसदीय पद्धति में अधिकार-पृथक्करण नहीं होता, जिससे कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। बेजहॉट ने संसदीय पद्धति और अध्यक्षात्मक पद्धति की परिभाषा लिखते हुए कहा है कि—

> "व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका की एक दूसरे से स्वतंत्रता अध्यक्षात्मक पद्धति का विशिष्ट लक्षण है; इन दोनों की एक दूसरे से घनिष्ठता संसदीय पद्धति का।"

भारत की व्यवस्था संसदीय पद्धति के अनुसार है।

भारतीय संविधान

भारतीय संविधान पर ब्रिटिश संविधान की बहुत बड़ी छाप है, इसका अन्यत्र उल्लेख किया जा चुका है। और यह भी असत्य नहीं है कि ब्रिटिश संविधान के विकास का इतिहास, शक्ति और अधिकार के हस्तान्तरण की कहानी, या दूसरे शब्दों में, राजा और प्रजा के बीच शताब्दियों के संघर्ष

---

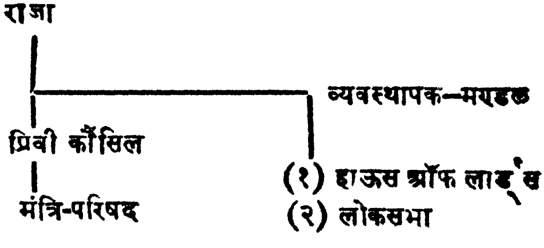
*Canway : The failure of Federalism in Austialia, p. 134.

का प्रतिफल है। प्राचीन समय में राजा राज्य के कार्यों में सहायता लेने के लिये स्वेच्छा से सामन्तों की एक सभा जिसे 'विटान' (Witan) कहा जाता था बुलाता था। बाद में उसका विकास करके 'मैगनम् कॉनसिलियम्' (Magnum Concilium) नाम से एक बड़ी सभा का निर्माण किया गया। चूंकि वह बहुत बड़ी थी, और उसमें कुछ बातें जो गोपनीय थीं, नहीं रखी जा सकती थीं इसलिये उसके साथ-साथ 'क्यूरिया रेजिस' (Curia Regis) अर्थात् राजा का दर्बार स्थापित किया गया। इसका कार्य तीनों क्षेत्रों, प्रशासन न्याय और राजस्व में विस्तृत किया गया।

आगे चलकर यह एक राजस्व मण्डल(Exchequer Privy Council) के रूप में बदल गई और कालान्तर में क्यूरियाके स्थान पर प्रिवी कौन्सिल ही रह गई। प्रिवी कौन्सिलके द्वारा केबिनेटका विकास हुआ। इस सारे परिवर्तन को क्रम से लिपिबद्ध करने में इतिहासकारों ने सैकड़ों ग्रंथ लिख डाले हैं। पहले की भांति ब्रिटेन के राजा के व्यक्तिगत अधिकार नहीं रहे। अब राजा से अभिप्राय: राजत्व (Crown) से होता है। इसीलिये कहा जाता है कि—

"राजा का देहावसान हो गया; राजा चिरंजीवी हो"*

इस वाक्य का अर्थपूर्ण प्रयोग होता है। राजत्व एक संस्था है जो राजा के अवसान करने पर भी एक क्षण के लिये खत्म नहीं होती। अब मंत्रि-परिषद ही राजा के नाम पर राज्य प्रबन्ध करता है। मंत्रि-परिषद संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। संसदमें हाउस ऑफ लार्ड्स और लोक सभा दो सदन हैं। ब्रिटिश शासक-मण्डल का स्वरूप निम्न प्रकार का है :—



* "The King is dead; Long live the king."

भारत की संवैधानिक प्रगति पर मैं पहले लिख चुका हूँ। प्रसंग वश यहां पर उन घटनाओं पर थोड़ा-सा उल्लेख करना आवश्यक है जिनके क्रमिक विकास के फलस्वरूप स्वतंत्र भारत का संविधान निर्मित हुआ। १९ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द तथा उनके पश्चात् लोकमान्य तिलक प्रभृत्त देश की स्वतंत्रता के लिये आह्वान कर चुके थे। उसके पश्चात् महात्मा गांधी का सफल नेतृत्व हमें प्राप्त हुआ और स्वराज्य प्राप्ति के आन्दोलन में हम उनके पीछे पीछे बढ़े। सन् १९२० में लाला लाजपतराय के सभापतित्व में हुए कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में महात्मा जी का स्वराज्य संबन्धी प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। उसके पश्चात् १९२२ में महात्मा जी ने और १९२४ में मोतीलाल जी नेहरू ने भारतीय संविधान सभा की मांग की। जब १९२७ में साइमन कमीशन भारत आया तब केन्द्रीय धारा सभा ने फरवरी १९२८ में कमीशन के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास करके यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय जनता तथा भारत के लोकनायक कमीशन का बहिष्कार करते हैं। तत्कालीन भारत मंत्री लार्ड बर्केनहेड ने कमीशन में भारतियों के न रखे जाने का यह कारण बतलाया कि चूंकि भारतवासियों में एकता नहीं है, इसलिये कमीशन जैसी संस्था मे परस्पर विरोधी विचारों के लोगों को रखना वाञ्छनीय न था। उनकी इस चुनौती का उत्तर देने के लिये भारत के नेताओं ने दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया और मोतीलाल जी नेहरू की अध्यक्षता में एक उपसमिति नियुक्त की। 'नेहरू-रिपोर्ट' के नाम से इस समिति ने एक योजना तैयार की जिसमें औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर भारत के संविधान की एक रूप-रेखा तैयार की गई। कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें कहा गया—

"सर्वदल समिति की रिपोर्ट द्वारा उपस्थित किये हुए संविधान पर विचार करने के पश्चात् कांग्रेस उसका स्वागत करती है क्योंकि भारत की राजनीतिक तथा साम्प्रदायिक समस्याओं के लिये यह एक महान् देन है। सुझावों पर एकमत होने के लिये कांग्रेस समिति को धन्यवाद देती है। मद्रास-कांग्रेस में स्वीकृत हुए पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव को ही मानने के साथ-साथ कांग्रेस

कमेटी द्वारा निर्मित संविधान को राजनीतिक प्रगति में एक महान् कदम के रूप में स्वीकार करती है; विशेषता इसलिये कि देश के प्रमुख दलों के बीच वह सबसे अधिक समझौते का प्रतिनिधित्व करती है।"

"यदि यह संविधान दिसम्बर १९२९ या उससे पूर्व स्वीकार नहीं किया जाता तो कांग्रेस उसे मानने को बाध्य न होगी, और यह भी घोषित किया जाता है कि यदि ब्रिटिश लोकसभा इस तिथि तक संविधान को स्वीकार नहीं करती तो कांग्रेस अहिंसात्मक सहयोग पुनः आरम्भ कर देगी जिसके अनुसार देश सरकार को कर या अन्य किसी प्रकार की सहायता देना बन्द कर देगा।"

उसके पश्चात् सन् १९३७ में कांग्रेस ने फैजपुर अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने के लिए एक संविधान-सभा की मांग की।* १९३८ में जवाहरलाल जी ने भी व्यस्क मताधिकार के आधार पर संविधान सभा की मांग की।

उसके पश्चात् जितनी भी घटनायें घटीं उनकी तीव्र गतिका, चाहे वह आन्दोलनों के रूप में रही हो अथवा संवैधानिक प्रगति के रूप में, स्वाभाविक परिणाम स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण के लिये मार्ग प्रशस्त करना था।

१६ मई १९४६ की मन्त्रि-मिशन योजना के अनुसार ९ दिसम्बर को संविधान परिषद का निर्माण हुआ। संविधान-परिषद के अस्थायी सभापति डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा चुने गये और ११ दिसम्बर को डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद स्थायी सभापति बने। यह परिषद सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न नहीं थी।

१३ दिसम्बर को प्रधान मंत्री जवाहरलाल जी नेहरू ने संविधान परिषद में उद्देश्य प्रस्ताव रखा जो २२ जनवरी १९४७ को स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव निम्न प्रकार था—

---

* "The Congress stands for a genuine democratic State in India where political power has been transferred to the people as a whole and the Government is under their effective control. Such a state can come into existence only through a Constituent Assembly, elected by adult suffrage and having the power to determine finally the constitution of the country."

"संविधान सभा का यह दृढ़ और निश्चित उद्देश्य है कि वह भारत को स्वतंत्र और सर्व प्रभुत्वपूर्ण गणतंत्र राज्य घोषित करके उसके भावी शासन का विधान निर्माण करेगी। भारत के जो क्षेत्र इस समय ब्रिटिश भारत के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा जो राज्य देशी रियासतों के नाम से प्रसिद्ध हैं, तथा जो राज्य ब्रिटिश भारत के और देशी रियासतों के बाहर हैं और अन्य ऐसे क्षेत्र जो भारत के बाहर हैं पर जो स्वतंत्र भारतीय संघ में शामिल होना चाहते हैं, वे सब उसमें शामिल होंगे। और,

"ऊपर कहे गये क्षेत्रों की जो सीमाएँ हैं और संविधान सभा उनकी जो सीमाएँ निश्चित करे अथवा बाद में संविधान के अनुसार उनकी जो सीमाएँ निश्चित की जायँ, उन सीमाओं के अनुसार ये क्षेत्र शासन की स्वतंत्र इकाइयाँ मानी जायँगी। संघ के पास शासन के जो अधिकार रहेंगे, उनको छोड़कर इन इकाइयों के पास शासन के सब अधिकार और कार्य रहेंगे। और,

"स्वतंत्र और प्रभुत्वपूर्ण सम्पन्न भारत की तथा उसकी इकाइयों और अंगों की शासन-शक्ति देश की जनता से प्राप्त होगी। और,

"भारत के सब लोगों को कानून की नज़रों में न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता तथा समान अवसर निश्चित रूप से प्राप्त होंगे। और कानून तथा सार्वजनिक नैतिकता के अन्तर्गत लोगों को विचार, भाषण, विश्वास, धार्मिक आचरण, संगठन तथा कार्यों सम्बन्धी स्वतंत्रता प्राप्त होगी। और,

"अल्पसंख्यक पिछड़ी हुई जातियों, अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े हुए वर्गों को उपयुक्त संरक्षण प्राप्त होंगे। और,

"गणतंत्र की सीमा तथा उसका प्रभुत्व स्थल जल और आकाश में सभ्य देशों के कानून और न्याय के अनुसार सुरक्षित रखे जायेंगे। और ऐसे प्रयत्न तथा कार्य किए जायेंगे जिससे इस प्राचीन राष्ट्र का स्थान संसार में गौरवपूर्ण बना रहे और यह देश संसार में शांति-स्थापन तथा मनुष्यमात्र के लिए कल्याणकारी कार्य कर सके।"

स वधान सभा ने सर्वप्रथम कुछ समितियों का निर्माण किया* जिनमें २९ अगस्त १९४७ को डा० भीमराव अम्बेडकर की अध्यक्षता में

* (1) Union Constitution Commitree ; (2) Union Subjects Cmmittee (0) Union powers Committee; (4) Provincial Constitution Committee; (5) Advisory Committee on Minorities—(a) Minorities Sub-Committee

संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिये एक समिति बनायी गयी जिसमें निम्नलिखित सदस्य थे—

(१) डा० अम्बेडकर (सभापति), (२) श्री गोपाल स्वामी आयंगर, (३) श्री अल्लादि कृष्ण स्वामी आयंगर, (४) श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, (५) श्री एम० एम० सआदुल्ला, (६) श्री माधवराव, (७) श्री बी० एल० मित्तर, (८) श्री बी० पी० खेतान।

उक्त समिति ने ५ नवम्बर १९४८ को संविधान-परिषद् के सम्मुख अपना प्रारूप उपस्थित किया जो २६ नवम्बर को स्वीकृत हुआ।

भारतीय संविधान की विशेषता

भारतीय संविधान की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसके द्वारा भारत के लिये प्रभुसत्तासम्पन्न लोकतंत्रात्मक गण-राज्य की व्यवस्था की गई है, जैसा कि उसकी प्रस्तावना में भी लिखा है। उसके अनुसार तीन बातें उल्लेखनीय है—(१) लोकतंत्रात्मक गणराज्य की व्यवस्था, (२) राज्य की प्रभुसत्ता जनता के हाथ में होना और (३) संविधान का न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की आधार-शिलाओं पर अवलम्बित होना।

संविधान की दूसरी विशेषता यह है कि इसका निर्माण स्वयं भारतवासियों ने किया है। भारत के सम्बन्ध में पहले जितने भी विधान बने थे उन्हें ब्रिटिश लोकसभा ने बनाकर भारतवर्ष पर थोपा था।

ब्रिटेन के संविधान को "बुद्धि और अवसर का शिशु"* कहा गया है, क्योंकि उसमें परस्पर विरोधी बातों की प्रचुरता है। यही बात भारतीय संविधान पर भी समानरूप से लागू होती है। कहने को तो हमारे यहां अध्यक्षात्मक या संघात्मक व्यवस्था है, किन्तु हम हर क्षेत्र में ब्रिटेन की संसदीय

(b) Fundamental Rights Sub-Committee ; (c) North-East Tribal and Excluded Areas Sub-Committee ; (d) Tribal and Excluded Areas Sub-Committee.

* "Child of wisdom and chance."

व्यवस्था का अनुगमन करते हैं। वास्तविक बात यह है कि भारत का संविधान पृथक-पृथक क्षेत्र में दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं का सम्मिश्रण है। कहा जाता है कि आस्ट्रेलिया में संघात्मक व्यवस्था के साथ संसदीय व्यवस्था को भी अपनाया गया है। किन्तु वह सफल नहीं रही, यह भी सर्वविदित है। इसीलिये कैनवे ने यह धारणा बनायी कि "यदि संघात्मक सरकार में उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्तों का समावेश होता है तो संघात्मक प्रणाली के उद्देश्य तथा गुणों की इति श्री हो जाती है।"*

भारतीय संविधान की एक विशेषता यह है कि यह एक धर्म निरपेक्ष राज्य है। धर्म निरपेक्ष राज्य से यह अभिप्राय है कि धर्म का क्षेत्र और राज्य का क्षेत्र दोनों पृथक-पृथक हैं। धर्म सापेक्ष राज्यों में राज्यका एक विशिष्ट धर्म होता है और उसी धर्म के अनुयायियों को सरकार कुछ विशेष सुविधायें प्रदान करती है। **"मुसलमानों ने संसार के अनेक भागों में धर्म के आधार पर राष्ट्रों की स्थापना की और बहुत समय तक मुस्लिम राष्ट्र जीवित रहे।……धर्म के नाम पर जब-जब संगठन किया गया और राष्ट्रीयता स्थापित की गई तब-तब अन्य धर्म के अनुयाइयों की हत्या कर व उनके नाश करने का प्रयत्न कर शुद्ध धार्मिक राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना करने का प्रयत्न किया गया, और सहस्रों और लाखों निर्दोष स्त्री पुरुषों और बच्चों की हत्या की गई।"†**

हमारे संविधान के अनुसार धर्म प्रत्येक नागरिक का व्यक्तिगत विषय है, जो जिस धर्म को चाहे स्वीकार करे अथवा उसका प्रचार करे, राज्य उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा। किन्तु धार्मिक प्रचार के नाम पर सार्वजनिक शांति को खतरा नहीं पहुंचाया जा सकता।

राज्य की ओर से धर्म को मान्यता नहीं दी गई, इसका यह अभिप्राय नहीं कि राज्य अधार्मिक है। यदि ऐसा होता तो राष्ट्र के कर्णधार धार्मिक कृत्यों का सदा विरोध करते। व्यक्तिगत रूप से भारत के प्रधान-मन्त्री जवाहरलालजी नेहरू का धर्म के प्रति चाहे कोई आकर्षण न हो, किन्तु सार्वजनिक धार्मिक समारोहों में वे पूरी दिलचस्पी के साथ भाग लेते हैं।

---

* Canway : The failure of Federalism in Australia. p. 134.

†—बी. एम. शर्मा: राजशास्त्र के मूल सिद्धान्त पृष्ठ ५६५

आये दिन विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के उत्सव और समारोह होते हैं जिनमें राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू तथा अन्य मंत्रीगण, राज्यों के राज्यपाल और मंत्री सभी भाग लेते हैं।

धर्म-निरपेक्षता की व्यापकता इतनी अधिक है कि धार्मिक स्वतंत्रता के आधार पर अस्पृश्यता को अवैध घोषित किया गया है। असवर्णों का मन्दिर प्रवेश की पूर्ण स्वतंत्रता है। साम्प्रदायिकता के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने मताधिकार की जो परिपाटी शुरू की थी वह समाप्त कर दी गई है। देश की एकता के लिये यह अत्यावश्यक है।

धर्म निरपेक्ष राज्य पर स्वर्गीय किशोरी लाल मशरूवाला ने लिखा था कि "चूंकि हमारा लोकतंत्र, कितने ही धर्मों और सम्प्रदाय के माननेवाले लोगों का बना हुआ है, यही दृष्टिकोण हमें सही और व्यावहारिक नीति देता है। मेरा अपना मत तो यह है कि जिस तरह राजनीति और जातियों की अलग-अलग संज्ञायें (लेबिल) मिटा देनी चाहियें, उसी तरह विभिन्न धर्मों के टिकटों का भी एकदम त्याग हो जाना चाहिये।"

भारतवर्ष कई राज्यों का संघ है इसलिये इसका ढांचा संघीय है। देश के प्रशासन के दो अंग हैं, एक केन्द्रीय और दूसरा राज्यों का। कुछ देशों, जैसे इङ्गलैण्ड, में कानून बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी एक ही सत्ता—एक ही सरकार—में निहित होती है। संघीय संविधान के अनुसार देश कई राज्यों से मिलकर बनता है इसलिये उसकी सरकार और प्रशासन दो भागों में विभक्त होते हैं। दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में सत्तायुक्त होती हैं और साथ-साथ कार्य करती हैं।* हमारे संविधान में संघ की

---

*प्रोफेसर स्ट्रांग के शब्दों में "संघ राज्य में कई राज्य कुछ समान उद्देश्यों के लिये एक हो जाते हैं। केन्द्रीय सरकार की शक्तियां राज्यों की शक्तियों के द्वारा सीमित हो जाती हैं, इसलिये एक ऐसी शक्ति होती है जो इस अधिकार-विभाजन को निश्चित करती है। संविधान ही वह शक्ति होता है।"

"संघ-राज्य का यह अर्थ है कि राज्य की सत्ता संघ में सम्मिलित इकाइयों में बांट कर सब पर संविधान का अधिकार हो।"

Dicy : Law of the Constitution. p. 153.

इकाइयों, के लिये जिन्हें अब राज्य कहा जाता है, एक केन्द्रीय सरकार का विनिधान है। ये इकाइयां ब्रिटिश भारत के प्रान्त, भूतपूर्व देशी रियासतों के छ संघ तथा मैसूर, हैदराबाद, जम्मू-काश्मीर और केन्द्र द्वारा प्रशासित प्रदेश हैं जो 'क' 'ख' 'ग' और 'घ' भागों में बांटे गये हैं। शुरू में जिन राज्यों का वर्गीकरण किया गया उनकी सूची निम्न प्रकार है—

भाग 'क'	भाग 'ख'	भाग 'ग'	भाग 'घ'
आसाम	जम्मू काश्मीर	अजमेर	अण्डमान
उड़ीसा	त्रावणकोर-कोचीन	कच्छ	और
पंजाब	पटियाला तथा पूर्वी पंजाब	कूच-बिहार	निकोबार
	—रियासती संघ		द्वीप
पश्चिमी बंगाल	मध्यभारत	कुर्ग	समूह
बिहार	मैसूर	त्रिपुरा	
मद्रास	राजस्थान	दिल्ली	
मध्यप्रदेश	विंध्य-प्रदेश	विलासपुर	
बम्बई	सौराष्ट्र	भोपाल	
उत्तर प्रदेश	हैदराबाद	मनीपुर	
		हिमाचल प्रदेश	

शक्तिशाली संघ

इस प्रकार एकात्मक व्यवस्था को अनेक स्वशासित इकाइयों में विभक्त करके उन्हें मिलाकर एक संघ बनाया गया है। संघ सरकार को कुछ अवशिष्ट अधिकार सौंपकर संविधान द्वारा उसे अति-शक्तिशाली बना दिया गया है। अमेरिका की भांति भारत के राज्यों को अपना संविधान बनाने का अधिकार नहीं है। राष्ट्रीय संकट की स्थिति उत्पन्न होने, आन्तरिक अशान्ति और कुशासन के कारण, राज्यों का प्रशासन संघ के पास जा सकता है। संविधान के निर्माता डा० अम्बेडकर ने तो यहां तक कहा है कि भारतवर्ष में लोकतंत्र अभी अपनी शैशवावस्था में है इसलिये विधान सभाओं को प्रशासन का रूप

निश्चित करने का अधिकार नहीं होना चाहिये। संविधान के निर्माताओं का यह तर्क है कि केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बना देने से राष्ट्र भीतरी और बाहरी शत्रुओं का मुकाबिला कर सकता है और उसकी एकता अक्षुण्ण बनी रह सकती है।* यदि संघ विभिन्न राज्यों के आपसी समझौते का फल होता तो केन्द्र चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न होता इकाइयों का उससे पृथक होने का सदा भय बना रहता। आजकी स्थिति में जब देश संक्रमण काल से होकर गुजर रहा है और यत्र-तत्र सर्वत्र पार्थक्य की भावना व्यापक होती जा रही है राज्यों का संघ से पृथक होने का अर्थ राष्ट्र को खत्म करना है। किन्तु, जैसा कि प्रस्तावना में ही स्पष्ट कर दिया गया है, भारत की किसी इकाई को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है।

किन्तु केन्द्र के बहुत अधिक शक्तिशाली होने से भी वही दुष्परिणाम हो सकते हैं जो उसके कमजोर होने से होते हैं। कुछ विद्वानों ने भारतीय संघ को अधिक शक्तिशाली बनाने की कड़ी आलोचना की है और सन्देह प्रकट किया है कि इससे तो जनता की स्वतंत्रता ही खतरे में पड़ सकती है। अमेरिकन पत्रकार श्री लुई फिशर, जो भारत के बहुत अच्छे मित्रों में हैं, संविधान लागू होने से पूर्व ही इस खतरे की ओर संकेत कर चुके थे।† केन्द्र के अधिक शक्तिशाली बनाने का विरोध संविधान सभा में काफी हो चुका है। यहां पर श्री सम्पूर्णानन्द के एक लेख का उद्धरण देना पर्याप्त

---

*५ नवम्बर १९४८ को संविधान-सभा में भाषण देते हुए तत्कालीन कानून मंत्री डाक्टर अम्बेडकर ने कहा था कि "नये संविधान में युद्ध और शांति दोनों काल में देश की एकता को बनाये रखने की क्षमता है।"

† "A weak Government is bad for democracy but so is an omnipotent government especially where, as in India, there is no big opposition party. It is paradoxical, yetture, that a government and a majority party must, in the interest of freedom, foster their democratic opponents. Through the nation-wide Congress party and by other means, the Central Gnvernment in new Delhi can make provincial self-rule a fiction, thus further enhancing the authority of federal ministers."

—Luis Fischer (Hindustan Times 14-8-49)

होगा। श्री सम्पूर्णानन्द उतर प्रदेश के गृह-मंत्री हैं, कांग्रेस के नेताओं में काफी ऊंचा स्थान रखते हैं और भारत के विद्वानों में गिने जाते हैं। वे लिखते हैं—"स्वतंत्रता प्राप्ति और भारतीय गणतंत्र की स्थापना के बाद विकेन्द्रीकरण विरोधी प्रवृत्ति का परिचय मिलने लगा और अब यह प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। राज्यों ने अपना काम ईमानदारी से किया है। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश में पंचायत राज कानून द्वारा पर्याप्त उत्तरदायित्व का अधिकार गांव की इकाइयों को दे दिये गये हैं और कालान्तर में इसी दिशा में और आगे बढ़ने का विचार किया गया है। सहकारी आन्दोलन विकेन्द्रीकरण की दिशा में दूसरा कदम है।

"किन्तु यही बात केन्द्र के बारे में नहीं कही जा सकती। केन्द्र दिनों दिन अधिकाधिक अधिकार हथियाता जा रहा है। प्रायः प्रत्येक केन्द्रीय विभाग इस ओर प्रवृत्त है। इसके लिये सबसे सुगम साधन सम्मिलित सूची में आने वाले विषय हैं। जिसे अपवादस्वरूप होना चाहिये था वही नियम होता जा रहा है और सम्मिलित सूची तेजी से रद्दी कागज का टुकड़ा बनती जा रही है। यह प्रवृत्ति केन्द्र के किसी एक मंत्री की ही नहीं है बल्कि एक प्रकार से केन्द्रीय सरकार की नीति बनती जा रही है। यह एक ओर अधिक से अधिक शक्ति अपने हाथ में कर लेने की इच्छा और दूसरी ओर राज्यीय मंत्रिमंडलों के प्रति अविश्वास पर आधारित है। ये दोनों प्रवृत्तियां खतरनाक हैं। भारत एक विशाल देश है जहां एक प्रदेश की स्थिति दूसरे से भिन्न है। दिल्ली में रहने वालों के लिये विभिन्न राज्यों की जनता के निकट सम्पर्क में आना और वहां की परिस्थितियोंकी पूरी जानकारी हासिल करना उतना आसान नहीं है जितना उन राज्यों के मंत्रियों के लिये। केन्द्र केवल फाइलों पर निर्णय कर सकता है; राज्यीय-मंत्रियों को राज्यकी जनता से व्यवहार करना होता है।

"अशक्त राज्य और सबल केन्द्र से राष्ट्र को खतरा" शीर्षक निबन्ध का उपसंहार लिखते हुए सम्पूर्णानन्दजी कहते हैं, "केन्द्रीकरण की यह प्रवृत्ति घातक है। यदि समय रहते इसे रोका न गया तो देश में अराजक-स्थिति पैदा हो सकती है। हम चाहते हैं कि केन्द्र मजबूत हो। किन्तु हम यह भी

नहीं चाहते कि राज्य सरकार दुर्बल हो। सुदृढ़ राष्ट्रीय चेतना का विकास हर तरह से होना चाहिये किन्तु साथ ही प्रत्येक प्रदेश का विशिष्ट सांस्कृतिक राजनीतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक पृष्ठभूमि का भी ध्यान रखना आवश्यक है। कुछ सीमित क्षेत्रों में विकेन्द्रीकरण जन-जीवन को स्वस्थ बनाने का एक मात्र उपाय है।"

भारतीय संविधान की कुछ विशेषतायें ऐसी हैं जो अन्य संविधानों में नहीं पायी जातीं। संघ प्रशासन लचकदार है। किन्तु किसी भी राष्ट्रीय संकट अथवा आपत्ति-काल में इसे एकात्मक रूप दिया जा सकता है। प्रवर समिति के अध्यक्ष डा० अम्बेडकर के शब्दों में—

"अपने को एकात्मक रूप में परिवर्तन करने की ऐसी शक्ति संसार के किसी भी संघ में नहीं है। प्रस्तावित भारतीय संघ में अलचकीलेपन और कानूनी-पन के दोष नहीं हैं। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि लचकदार संघ है।"

शक्ति का स्रोत जनता

भारतवर्ष एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है :—

हम भारत के लोग, भारत को एक **सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोक-तंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिये, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक **न्याय**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिये,

तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की

एकता सुनिश्चित करने वाली **बन्धुता**

बढ़ाने के लिये

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान-सभा में आज तारीख २६ नवम्बर १९४९ ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छ विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अङ्गीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं ।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना की भाषा सूत्र रूप में लिखी गई है। अन्य देशों के संविधानों की प्रस्तावना इतनी परिष्कृत, सुस्पष्ट और सार्थक नहीं प्रतीत होती। अमेरिका के संविधान में भी प्रस्तावना में कुछ इससे मिलती-जुलती भाषा का प्रयोग किया गया है।* 'सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न का अर्थ यह है कि भारत पूर्णतया स्वतंत्र है। 'लोकतंत्रात्मक-गणराज्य' से अभिप्राय जनता का शासन जनता के लिये जनता द्वारा होगा। इसलिए शक्ति का स्रोत जनता है।

अन्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है कि प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है। एक स्थान पर डी० जी० रिशी लिखते हैं कि जनता की सम्मतियों एवं विचारों में ही राष्ट्र की प्रभुसत्ता निहित होती हैं।† दूसरे विचारक मैकैनी का कहना था कि जनता में ही राष्ट्र की वास्तविक प्रभुसत्ता होती है। शासन का ढंग तथा शासक का स्वरूप इसमें बाधक नहीं। § ब्लंश्की के शब्दों (Theory of the State) को उद्धृत करते हुए डा० शर्मा लिखते हैं कि सन् १८४८ में फ्रान्स की जनता ने परिमित शक्तियुक्त एकतंत्र राज्य को पलटकर प्रतिनिधितंत्र राज्य की स्थापना की। उस समय जो घोषणा की गई, उसके शब्द ये हैं—

"प्रत्येक युवा फ्रेंच फ्रान्स का नागरिक है। प्रत्येक नागरिक निर्वाचक और प्रत्येक निर्वाचक राज्य का राजा या प्रभु है। सब नागरिकों का

---

*"We the people of the United States in order to form a more perfect Union, establish justice, insure democratic tranquility, provide for the common defence, promote the general welfare, and secure the blessings of liberty to ourselves and our posterity, do ordain and establish this constitution for the United States of America."

† D. G. Ritchie : Principles of State Interference.

§ Mechnie : State and the Individual.

समान अधिकार है कोई एक नागरिक दूसरे नागरिक को यह नहीं कह सकता कि "तुम्हारी अपेक्षा राज्य पर मेरा अधिक प्रभुत्व है ।" अपनी शक्ति को समझो और काम में लाओ। अपनी प्रभुसत्ता के उचित अधिकारी बनो।"‡

नागरिक और उसके मूल अधिकार ※

भारतीय संविधान के पाँचवें अनुच्छेद में नागरिकता का उल्लेख है। इस संविधान के लागू होने पर प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत राज्य-क्षेत्र में अधिवास है, तथा—

(क) जो भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा था, अथवा

(ख) जिसके जनकों में से कोई भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा था ; अथवा

(ग) जो ऐसे प्रारंभ से ही ठीक पहिले कम से कम पांच वर्ष तक भारत राज्य-क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा है ;

भारत का नागरिक होगा ।

इसके अतिरिक्त वह व्यक्ति जो पाकिस्तान से भारत परिव्रजन कर आया है भारत का नागरिक समझा जायगा यदि (१) वह अथवा उसके माता-पिता अथवा महाजनकों में से कोई भारत शासन अधिनियम १९३५ (यथा मूलतः अधिनियमित) में परिभाषित भारत में जन्मा था ; तथा १६ जुलाई १९४८ से पूर्व प्रवजन कर आया है तब वह अपने परिव्रजन की तारीख से भारत राज्य-क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा है ।

भारत के बाहर विदेशों में रहने वाले भारतीय जिनका या जिनके माता-पिता अथवा महाजनकों में से कोई भी अविभाजित भारत में पैदा हुआ

---

‡ डा० व्रजमोहन शर्मा, वही पृ० ३६६ ।

※ "भारत का संविधान पृष्ठ ४-२०

Amar Nandi : The Constitution of India pp. 54-98.

Sen and Das : Studies in Modern Constitutions pp. 255-58.

हों भारत के नागरिक समझे जायँगे यदि उन्होंने भारत के राजनीतिक या वाणिज्यिक प्रतिनिधि के पास आवेदन-पत्र देकर अपने को भारत का नागरिक पंजीबद्ध करा लिया है तो उन्हें भारतका नागरिक समझा जायगा।

भारतीय नागरिकता के लिये भारत में आधिवास की शर्त अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त प्रार्थी का जन्म, प्रार्थी के माता-पिता का जन्म और संविधान के लागू होने से पूर्व पांच वर्ष तक भारत में अधिवास आवश्यक है। यदि कोई भारतवासी स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार कर ले तो वह तत्काल भारत की नागरिकता से वंचित हो जाता है।

भारतीय नागरिकता के संबन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है। हमारे यहां संघीय व्यवस्था होते हुए भी अमेरिका की भांति दोहरी नागरिकता नहीं है। अमेरिका का नागरिक उस राज्य का, जिसमें वह निवास करता है, तथा संघ दोनों का नागरिक बनना आवश्यक होता है। इसके विपरीत भारत के किसी भी भाग का नागरिक समस्त भारत का नागरिक कहलायेगा।

मूल अधिकार—

संविधान द्वारा नागरिकों को कुछ मूल अधिकार दिये गये हैं जो निम्न-लिखित हैं:—

(अ) समता का अधिकार

(आ) स्वतंत्रता का अधिकार

(इ) शोषण के विरुद्ध अधिकार

(ई) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

(उ) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

(ऊ) सम्पत्ति का अधिकार

(ए) संवैधानिक उपचारों के अधिकार

लगभग सभी देशों में, जहां लिखित एवं निर्मित विधान प्रचलित है नागरिक के मूल अधिकारों को यथेष्ठ महत्व दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय संविधान में मूल अधिकारों को अन्य देशों की अपेक्षा अधिक

महत्व दिया जाने लगा है। भारत सरकार के इस कथन से कोई भी असहमत न होगा कि "मूल अधिकारों के सिद्धान्त में शासन का सीमित होना सन्निहित है। सरकार और विधान-मण्डल को तानाशाह होने से रोकना ही इसका उद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यह व्यक्ति को लिये विकास का अवसर प्रदान करता है।*

यदि स्वतंत्रता के साथ-साथ नागरिकों को समानता के अधिकार न मिले तो वह स्वतन्त्रता एकांगी और अव्यावहारिक समझी जायगी। समानता का उद्देश्य, जैसा कि हमारे संविधान में वर्णित है, प्रत्येक नागरिक को उन्नति करने का अवसर प्रदान करना है। किन्तु वह समानता तब कायम हो सकती जब कि सविधान द्वारा किसी व्यक्ति अथवा समुदाय को किसी प्रकार का विशेषाधिकार न रहे, अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने पर न्यायालय में सबको दण्ड दिये जाने की समान व्यवस्था रहे और ऊँच, नीच अथवा धनी, निर्धन का सामाजिक रूप से कोई मूल्य न रहे।

शोषण के विरुद्ध अधिकार पिछड़ी हुई तथा गरीब जातियों के लिये एक बहुत बड़ा अभयदान है। पहले बहुत से स्थानों में, विशेषकर राजाओं और जमीदारों के यहां, बेंठ, बेगार और प्रभुसेवा के नाम से गरीब किसानों से जबर्दस्ती काम लिया जाता था और उसके बदले में उन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता था। संविधान के २३ वें अनुच्छेद के अनुसार इस अनाधिकृत कार्य को बन्द कर दिया गया। हां, सार्वजनिक हित के कार्यों अथवा युद्ध-काल के समय सरकार धर्म, जाति और लिंग का भेद किये बिना किसी भी नागरिक से अनिवार्य सेवा प्राप्त कर सकती है। अमेरिका के संविधान के तेरहवें संशोधन में भी कहा गया है कि—

> "अमेरिका और उसके आधीन क्षेत्रों में किसी भी रूप में दासता अथवा बेगार नहीं होगी। केवल न्यायालय द्वारा दण्ड स्वरूप काम लिया जा सकता है।"

* Our Constitution, p. 16 (published by the Govt. of India.)

धार्मिक स्वतन्त्रता की व्याख्या संविधान के पच्चीसवें अनुच्छेद में इस प्रकार की गई है—

"सार्वजनिक व्यवस्था सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के दूसरे उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सब व्यक्तियों को, अन्तःकरण की स्वतंत्रता का तथा धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा।"

इसके अनुसार धर्माचरण और धर्म-प्रचार दोनों की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। धार्मिक स्वतंत्रता के सम्बन्ध में रूसो का कथन था कि—

"उन धर्मों के साथ सहिष्णुता दिखाना चाहिये जो धर्म दूसरों के प्रति सहिष्णुता दिखलाते हैं और जब तक नागरिकता के कर्त्तव्यों के विरोध में उनके सिद्धान्तों में कोई अनुचित बात नहीं पायी जाती।"*

सोवियत संघ के संविधान में, जिसे धर्म-विरोधी कहा जाता है, लिखा है कि—

"नागरिकों को अन्तःकरण की स्वतंत्रता देने के लिये सोवियत संघ में धर्म और राज्य को पृथक-पृथक किया जाता है। और शिक्षा तथा धर्म को भी पृथक पृथक किया जाता है। सब नागरिकों को धर्माचरण की तथा धर्म-विरोधी प्रचार की एक समान स्वतंत्रता प्राप्त है।"

भारत संविधान के २९ वें अनुच्छेद में लिखा है: "भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी विभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा।"

यह उपबन्ध मुख्य रूप से अल्पसंख्यकों और पिछड़ी जातियों के संरक्षण के लिये है। जुलाई १९५० में मद्रास के उच्चन्यायालय ने दो छात्रों द्वारा की गई परमादेश की प्रार्थना (Mandamus Petition) पर निर्णय देते हुए कहा कि राज्य के विद्यालयों में धर्म, जाति अथवा मूल वंश के आधार पर प्रवेश नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद ३१ के अनुसार "कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायगा।"

* J. J. Rousseau: Social Contract, Vol. IV, Ch. 8

और ३२ वें अनुच्छेद में संवैधानिक उपचारों के अधिकार के संबन्ध में लिखा है--

"इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये उच्चतम न्यायालय को समुचित कार्यवाहियां द्वारा प्रचलित करने का अधिकार प्रत्याभूत होगा।"

राष्ट्रपति द्वारा ३५२ वें अनुच्छेद के अनुसार संकटकाल की स्थिति की घोषणा होने पर अनुच्छेद १९ द्वारा निर्धारित मूल अधिकारों को संकट काल की स्थिति रहने तक निलम्बित किया जा सकता है। संविधान के ३३ वें अनुच्छेद के द्वारा संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह सेना में अनुशासन बनाये रखने तथा उनसे कर्त्तव्य पालन कराने के लिये मूल अधिकारों में आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक कमी करे और आवश्यकता पड़े तो उन्हें निश्चित अवधि तक समाप्त करे। सैनिक कानून के चालू रहते समय किसी भी दण्ड को संसद जायज करार दे सकती है।

मूल अधिकारों की व्याख्या कर देने मात्र से नागरिकों को वे अधिकार प्राप्त नहीं हो जाते, यदि उनकी रक्षा की उचित व्यवस्था न हो। इसलिये संविधान द्वारा नागरिक के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा के लिये उचित व्यवस्था की गई है। उसके तीन उपाय होते हैं। कोई भी नागरिक अपनी गिरफ्तारी का प्रतिकार कर सकता है। आवश्यकता होने से वह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सम्बन्धी विधि (Habeas Corpus Act) की सहायता ले सकता है, अथवा साधारण रूप से न्यायालय में अपील कर सकता है। अनुचित गिरफ्तारी के विरुद्ध न्यायालय गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति या समूह को दण्ड दे सकता है, या उससे क्षति-पूर्ति करवा सकता है। इस प्रकार की कार्यवाही प्रशासन अथवा अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध जो अपराधी पाये जायं की जा सकती है। "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" के अनुसार बन्दी न्यायालय की शरण लेकर शासन के विरुद्ध कार्यवाही करा सकता है। जैसे सरकार द्वारा जेल में नजरबन्द किये गये हैदराबाद तथा अन्य स्थानों के साम्यवादियों ने न्यायालय में अपील की और न्यायालय की आज्ञानुसार उन्हें तत्काल मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार सरकार की किसी भी अनुचित आज्ञा के विरुद्ध

न्यायन्य में अपील की जा सकती है। व्यक्तिगत भाषण, लेखन तथा सभा-सम्मेलनों में भाग लेने की स्वतंत्रता का न्यायालय से आश्रय मिल सकता है।

संविधान के ३२ वें अनुच्छेद का, जिसके अनुसार उच्चतम् न्यायालय को कुछ अधिकार दिये गये हैं, इतना अधिक महत्व है कि कुछ विद्वानों ने तो उसे—**"सर्वांगीय संविधान का हृदय और आत्मा"** कहा है। *

चूंकि सविधान परिवर्तनशील है, इसलिये मौलिक अधिकारों में भी आवश्यकतानुसार सशोधन किये जा सकते हैं। अगस्त १९५२ में संसद द्वारा स्वीकृत किया गया निवारक निरोध कानून, जिसके द्वारा भविष्य में ऐसे व्यक्तियों को जिनसे शांति भंग या अराजकता की स्थिति पैदा होने का खतरा हो अपराध करने से पूर्व ही बांध देने की व्यवस्था है नागरिक के मौलिक अधिकारों पर यह एक प्रतिबन्ध है। यदि इस कानून का दुरुपयोग किया गया तो यह संभव है कि जन-सुरक्षा के नाम पर निर्दोष व्यक्तियों को गिरफ्तार किया

---

* मूल अधिकार—अनुच्छेद ३२ :—

"(१) इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये ... न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रचालित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।"

"(२) इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिये उच्चतम न्यायालय को ऐसे निदेश या आदेश या लेख, जिन के अन्तर्गत बन्दी-प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।

"(३) उच्चतम न्यायालय को खंड (१) और (२) द्वारा दी गई शक्तियों पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले, संसद् विधि द्वारा किसी दूसरे न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर उच्चतम न्यायालय द्वारा खंड (२) के अधीन प्रयोग की जानेवाली सब अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करनेकी शक्ति दे सकेगी।

"(४) इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबन्धित अवस्था को छोड़कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलम्बित न किया जायेगा।"

भारत का संविधान, पृष्ठ १९–२०

जाय। और जेल में उनके साथ दुर्व्यवहार हो, तथा जो वास्तविक अपराधी हैं वे छूट जायं। जनता की सरकार का यह पहला कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस प्रकार के कानूनों का कभी दुरुपयोग न होने दे। किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं कि अनिवार्य होने पर भी सरकार ऐसे कानूनों का या तो डर कर प्रयोग ही न करे, और यदि करे भी तो कमजोर तरीके से। इससे सरकार में जनता का सम्मान जाता रहता है और समाज विरोधी तत्वों को बल मिलता है। मनुस्मृति में कानून को दण्ड के नाम से पुकारा गया है और कहा है "दंडः शास्ति प्रजाः सर्व दण्ड एवाभिरक्षति" अर्थात् दण्ड ही प्रजा का शासन करता है, और दण्ड ही प्रजा की रक्षा करता है। इसलिए सरकार को जनता के मूल अधिकारों की रक्षा करते हुए बिना किसी संकोच के न्यायानुकूल दण्ड का प्रयोग करना चाहिये।

राज्य की नीति के निर्देशक तत्व

अपवाद-स्वरूप भारत और आइरिश फ्री स्टेट को छोड़ कर अन्य किसी देश के संविधान में राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों का कहीं कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। हमारे संविधान के भाग ४ में राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। संविधान द्वारा व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका को दिये गये कुछ स्थायी आदेश राज्य की नीति के निर्देशक तत्व कहलाते हैं। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह उन्हें संवैधानिक रूप देने की चेष्टा करे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यदि कार्यपालिका अथवा व्यवस्थापिका किन्हीं कारणों से इनका पूर्णतः पालन न कर सकें तो वे न्यायपालिका के समक्ष जवाबदेह होंगे।*

फिर भी, चूंकि कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के सदस्यों को सदा जन-

---

* भाग ४—राज्य की नीति के निर्देशक तत्व—

"इस भाग में दिये गये उपबन्धों को किसी न्यायलय द्वारा बाध्यता न दी जा सकेगी किन्तु तो भी इनमें दिये हुए तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा।"

भारत का संविधान, अनु० ३७, पृष्ठ २२

मत का भय रहता है, वे निर्देशक तत्वों की किसी भी प्रकार उपेक्षा नहीं कर सकते। ३८ वें अनुच्छेद के अनुसार राज्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करेगा जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित होगा। तथा जनता की हर प्रकार से उन्नति के लिये प्रयत्नशील रहेगा। अनुच्छेद ३६, ४१, ४२, ४३, ४६, ४७ और ४८ में आर्थिक बिषयों पर प्रकाश डाला गया है। उनका आशय यह है कि सब नागरिकों को आजीविका के साधन उपलब्ध हो सकें; राष्ट्रीय सम्पत्ति का इस अनुपात से वितरण हो कि जिससे अधिक से अधिक व्यक्तियों को लाभ प्राप्त हो सके; समान परिश्रम के लिये समान वेतन की व्यवस्था हो; बालकों तथा प्रौढ़ श्रमिकों को संरक्षण प्राप्त हो; चौदह वर्ष तक के बालकों को निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाय; रोजगार की प्राप्ति, बेकारी, बीमारी, बुढ़ापा, अंग-हानि तथा अन्य आकस्मिक अभाव की दशाओं में सार्वजनिक सहायता प्राप्त हो; सर्वसाधारण के जीवनस्तर को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया जाय; पिछड़ी हुई जातियों की शिक्षा तथा उनके आर्थिक हितों का ध्यान रखा जाय; कृषि और पशु-पालन को वैज्ञानिक ढग पर करने के लिये प्रोत्साहन दिया जाय; सार्वजनिक स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाय, इत्यादि। ४० वें अनुच्छेद के द्वारा राज्यों को ग्राम पंचायतों की स्थापना करके उन्हें स्वायत्त-शासन के समुचित अधिकार प्रदान करने का आदेश दिया गया है। ४६ वें अनुच्छेद द्वारा राज्य को ऐतिहासिक महत्व की वस्तुओं तथा ऐसे स्थानों की रक्षा का आदेश दिया गया है; ५० वें अनुच्छेद द्वारा कार्यपालिका औा न्यायापालिका को पृथक करने का आदेश दिया गया है। इनके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को प्रोत्साहन देने, अन्य राज्यों के साथ सद्भावना और मैत्रीपूर्ण संबन्ध स्थापित करने, अन्तर्राष्ट्रीय कानून का आदर एवं अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने के लिये पञ्च फैसले की व्यवस्था का समर्थन करना, ये सब बातें राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों में दी गई है जो अन्य किसी देश में नहीं पायी जातीं। *

* "राज्य—

"(क) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की उन्नतिका;

विधान सम्बद्ध संस्थायें

संघ कार्यपालिका

राष्ट्रपति*

संविधान के ५२ तथा ५३ वें अनुच्छेदों में राष्ट्रपति का उल्लेख किया गया है।†

"(ख) राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मान पूर्ण सन्बन्धों को बनाये रखने का;

"(ग) संघठित लोगों के, एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और संधि-बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का; तथा

"(घ) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के मध्यस्थता द्वारा निपटारे के लिये प्रोत्साहन देने का, प्रयास करेगा।"

अनु० ५१, भारत का संविधान पृष्ठ २५

* भारत का संविधान, पृष्ट २६–३१

Josef Redlich : The procedure of the House of Commons, pp. 106-109.

Joseph P. Chamberlain : Legislative Processes, pp. 265.280.

Laski : Parliamentary Government in England pp. 388-442.

†अनु० ५२

"भारतका एक राष्ट्रपति होगा।

अनु० ५३ (१)

"संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा वह इस का प्रयोग इस संविधान के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा करेगा।

"(२) पूर्वगामी उपबन्ध की व्यापकता पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले संघ के रक्षा-बलों का सर्वोच्च समादेश राष्ट्रपति में निहित होगा और उसका प्रयोग विधिसे विनियमित होगा।

(३)"इस अनुच्छेद की किसी बात से

(क) "जो कृत्य किसी वर्तमान विधि ने किसी राज्य की सरकार अथवा अन्य अधिकारी को दिये हैं वे कृत्य राष्ट्रपति को हस्तान्तरित किये हुए न समझे जायेंगे; अथवा

(ख) "राष्ट्रपति के अतिरिक्त अन्य अधिकारियों को विधि द्वारा कृत्य देने में संसद को बाधा न होगी।"

संवैधानिक रूप से राष्ट्र की सारी सत्ता राष्ट्रपति के हाथों में होती है। वह संघ की प्रतिष्ठा और शक्ति का प्रतीक होता है। किन्तु व्यावहारिक रूप से उसका अनुष्ठानिक युक्ति जैसा महत्व है; न वह राज्य करता है, न शासन। कुछ लोगों को राष्ट्रपति शब्द से यह भ्रम हो जाता है कि भारत का राष्ट्रपति भी अमेरिका के राष्ट्रपति के समान है। जैसाकि मैं पहले इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि नाम की समता होते हुए भी दोनों एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं।

लार्ड ब्राइस और हेराल्ड लास्की ने अमेरिकन राष्ट्रपति पद के लिए उम्मेदवार के लिए जिन गुणों का होना आवश्यक बताया है वे भारत के राष्ट्रपति के ऊपर लागू नहीं हो सकते। ब्राइस और लास्की के अनुसार अमेरिकन राष्ट्रपति को रोमन कैथोलिक धर्म का माननेवाला होना चाहिए, उसे करनीति के विषय में मौन रहना चाहिए, प्रशासकीय अनुभव आवश्यक है, यदि वह सैनिक नेता है तो और भी अच्छा, वह आर्थिक क्षेत्र में किसी प्रकार का क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेवाला न हो, वह अन्तर्राष्ट्रीयता-वादी न हो, व्यापारिक क्षेत्र से उसका कोई सम्बन्ध न हो और वह स्वयं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो। डेमोक्रेट या रिपब्लिकन दल उक्त गुणों के आधारपर अपने-अपने उम्मीदवार खड़ा करते हैं।

डाक्टर अम्बेडकर के शब्दों में भारत का राष्ट्रपति

"राज्य का प्रमुख अवश्य है कार्यपालिका का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु उस पर शासन नहीं करता। वह राष्ट्र का प्रतीक है।"

यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति का स्थान ब्रिटेन के सम्राट के समान है। मेन ने कहा है कि

"ब्रिटेन का राजा राज्य करता है, शासन नहीं, जब कि संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति शासन करता है, पर राज्य नहीं करता।"*

भारत का राष्ट्रपति पांच वर्ष के लिए राष्ट्र का संवैधानिक राजा या प्रधान होता है।

---

* "While the King of England reigns but does not govern, the President of the United States governs but does not reign."

राष्ट्रपति का चुनाव—कोई भी व्यक्ति जिसकी अवस्था ३५ वर्ष की हो राष्ट्रपति पद के लिये उम्मेदवार हो सकता है वशर्ते कि वह चुनाव सम्बन्धी मौलिक शर्तों का पालन करता हो। लोकसभा का सदस्य होने की वह योग्यता रखता हो और किसी राज्य सरकार अथवा सघ सरकार के आधीन कोई लाभ का पद न प्राप्त करता हो। यदि कोई लोकसभा का सदस्य अथवा राज्य-परिषद का सदस्य राष्ट्रपति चुना जाय तो पदग्रहण की तिथि से वह सदन की सदस्यता से स्वतः वंचित समझा जायगा।

राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से होता है। संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित तथा राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव के लिये निर्वाचक-गण होते हैं। किन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि संसद के सब सदस्य कुल राज्यों के मतों के योग के बराबर मत दे सकते हैं। यह निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व-पद्धति के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। इस पद्धति के अनुसार जितने व्यक्ति निर्वाचित करने होते हैं उनकी संख्या से निर्वाचकों की संख्या को भाग देकर भागफल के बराबर मत जिस उम्मेदवार को प्राप्त होते हैं वह निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। मतदाता उम्मेदवारों के नाम पर अपनी पसन्द के अनुसार एक, दो, तीन इत्यादि लिखता है। मत गणना में जिस उम्मेदवार को सर्वाधिक प्राथमिकता मिलती है वह निर्वाचित घोषित हो जाता है। जिस उम्मेदवार को अपने कोटा से अधिक मत प्राप्त हो जाते हैं वे अतिरिक्त मत दूसरे उम्मेदवार को प्राप्त होंगे। इस नियम के अनुसार उम्मेदवार को मतदाताओं की संख्या के अनुपात से मत प्राप्त करने होते हैं और इस प्रकार मतदाता का मत संक्रमणीय हो जाता है।

अमेरिकन राष्ट्रपति का चुनाव एक विशेष निर्वाचक-गण द्वारा होता है जिसमें कांग्रेस (अर्थात् संसद) के दोनों सदनों—सीनेट और हाउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव के सदस्य—को मत-दान का अधिकार नहीं होता।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, जो सन् १९४६—४९ में

संविधान-सभा के अध्यक्ष भी रह चुके हैं, सन् १९५० में प्रथम राष्ट्रपति चुने गये थे। सरकार द्वारा उन्हें राष्ट्रपतिभवन में रहने और यथेष्ट भत्ता लेने के अतिरिक्त १०,००० रुपये मासिक वेतन प्राप्त करने का भी अधिकार है। किन्तु, जैसा कि कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने उनके जन्म दिवस (३ दिसम्बर १९५२) पर प्रकाशित कांग्रेस पत्रिका "अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की आर्थिक समीक्षा" में लिखा है कि राजेन्द्र बाबू ३६०० रुपया मासिक वेतन लेते हैं और राष्ट्रपति भवन के ३४० कमरों में से केवल १८ कमरों का उपयोग करते हैं।

३५ कमरों में योजना आयोग तथा भारत सरकार के अन्य कार्यालय हैं और दूसरे ३५ कमरों में राष्ट्रपति का सचिवालय है। बीच के ६ बड़े कमरों में संग्रहालय है और २३ कमरे राज्य के अतिथियों के लिये सुरक्षित रखे गये हैं।

राष्ट्रपति के निजी कर्मचारियों के पास २१ कमरे हैं। ६ कमरे राज्य के उत्सव-समारोहों के लिये हैं। शेष कमरों में से अधिकतर में गोदाम और कारखाने हैं।

राष्ट्रपति को संविधान के अनुसार १० हजार रुपया प्रतिमास वेतन मिलता है जिस पर आयकर लगता है। परन्तु डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने अपने वेतन में स्वेच्छापूर्वक ४० प्रतिशत की कमी की है। यह कटौती और कर इत्यादि मिला करके कुल रकम ६४०० रुपया होती है।

श्री अग्रवाल ने बताया है कि राष्ट्रपति के कर्मचारियों और सचिवालय का खर्चा कम से कम कर दिया गया है। राष्ट्रपति भवन से मिली जमीन पर फसल और सब्जी उगाई गई है।

राष्ट्रपति के अधिकार—यों तो राष्ट्रपति के बहुत से अधिकार होते है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक प्रकार से देश का सर्वेसर्वा है, तथा अवसर पड़ने पर देश का अधिनायक या निरकुश शासक सभी कुछ हो सकता है किन्तु वास्तविकता यह है कि राष्ट्रपति की स्थिति एक वैधानिक प्रधान से अधिक नहीं है। ब्रिटेन के राजा की भांति भारत का राष्ट्रपति भी शक्तिहीन सर्वेसर्वा है। यद्यपि संविधान में कहीं भी इसका उल्लेख नहीं किया गया है कि राष्ट्रपति कार्यपालिका की सम्मति से कार्य करेगा अथवा वह कार्यपालिका का केवल नाममात्र का प्रधान

होगा, तथापि प्रस्तुत व्यवस्था को देखते हुए तथा संसदीय व्यवहार के अनुसार यह कल्पना नहीं की जा सकती कि राष्ट्रपति कार्यपालिका की इच्छा के विरुद्ध चलकर कभी अपने अधिकारों का मनमाना प्रयोग कर सकेगा। संविधान में राष्ट्रपति के ऊपर महाभियोग की जो व्यवस्था की गई है वह निस्सन्देह उसके मनमाने कार्यों पर अंकुश लगाने का एक बहुत बड़ा शस्त्र है।

राष्ट्रपति को जो विशिष्ट शक्तियां प्राप्त हैं उन्हें निम्नलिखित पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(१) कार्यपालिका शक्तियां, (२) आपात-काल शक्तियां, (३) संवैधानिक शक्तियां, (४) वित्तीय शक्तियां और (५) न्यायपालिका शक्तियां।

कार्यपालिका का प्रमुख और सर्वोच्च सेनापति होने के नाते देश के प्रशासन के सारे अधिकार उसके पास होते हैं। वह प्रधान मंत्री तथा उनकी सलाह से कार्यपालिका के सदस्यों की नियुक्ति करता है। राज्यपाल, राजदूत, महान्यायवादी, नियंत्रत-महालेखा परीक्षक, तथा निर्वाचन और वित्त आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। कुछ विशेष क्षेत्रों (जैसे भाग 'ग' और 'घ' के राज्यों) का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त अधिकारी करते हैं।

आपत्-कालीन स्थिति का सामना करने के लिये राष्ट्रपति को विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। राष्ट्रपति नागरिकों के मूल अधिकारों को निलम्बित करके उन्हें न्यायालय को प्रवर्तित करने से रोक सकता है। वाह्य अथवा आन्तरिक संकट उत्पन्न होने के कारण यदि किसी राज्य क्षेत्र की सुरक्षा खतरे में हो तो राष्ट्रपति आपातकाल की घोषणा करके अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। ऐसी स्थिति में संघ-शासन के स्थान पर एकात्मक व्यवस्था स्थापित हो सकती है। यदि किसी राज्य का प्रशासन संविधान के अनुसार चलाना असम्भव हो जाय तो राष्ट्रपति संवैधानिक तंत्रकी विफलता की घोषणा करके राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की शक्तियो सहित राज्य का प्रशासन अपने हाथ में ले सकता है। आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति राज्य की विधान-सभा के अधिकार संसद को सौंप सकता है। संसद ऐसी अवस्था में राज्य के लिये विधि बनाने का अधिकार राष्ट्रपति को सौंप सकती है।

यदि राष्ट्रपति को ऐसा विश्वास हो कि देश के किसी भाग की राजस्व साख को खतरा पैदा हो रहा है तो वह आवश्यक निर्देश के द्वारा संघ एवं राज्यों के कर्मचारियों के वेतन और भत्तों में कमी कर सकता है। वित्तीय आपात् की स्थिति में राज्यों के विधान-मडलों द्वारा स्वीकृत सब धन विधेयकों की जांच और उनकी स्वीकृति राष्ट्रपति द्वारा होगी।

संसद् संघ की विधायिका है, और राष्ट्रपति उसका एक अभिन्न अंग संसद् के संगठन और उसके कार्यों पर राष्ट्रपति का भी कुछ अधिकार होता है। भारत के सविधान में राष्ट्रपति को संसद् के प्रत्येक सभारम्भ में विशेष भाषण देने तथा सदनों को सम्बोधन करने और संदेश भेजने का अधिकार होता है।* संसदके, प्रत्येक सत्र में राष्ट्रपति का विशेष अभिभाषण होता है† (इस संबन्ध में सूचनार्थ यह बतला देना भी आवश्यक है कि गत नवम्बर ५२ की लोकसभा के सभारंभ में राष्ट्रपति का भाषण नहीं हुआ और उन्होंने इस अधिकार का प्रयोग नहीं किया)। संसद् के विश्रान्ति-काल में राष्ट्रपति की कुछ अध्यादेश प्रख्यापन शक्तियां भी होती हैं, जो राष्ट्रपति की विधायिनी शक्तियां कही जाती हैं।§

*"(१) संसद् के किसी एक सदन को, अथवा साथ समवेत दोनों सदनों को, राष्ट्रपति सम्बोधित कर सकेगा तथा इस प्रयोजन के लिए सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकेगा।

"(२) राष्ट्रपति संसद् में उस समय लम्बित किसी विधेयक-विषयक अथवा अन्य विषयक संदेश संसद् के किसी सदन को भेज सकेगा तथा जिस सदन को कोई सन्देश इस प्रकार भेजा गया हो वह सदन उस सन्देश द्वारा अपेक्षित विचारणीय विषय पर यथा सुविधा शीघ्रता से विचार करेगा।" अनु ८६, (भारत का संविधन पृष्ट ४३)

†"(१) प्रत्येक सत्र के आरंभ में साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों को राष्ट्रपति सम्बोधन करेगा तथा संसद् को उसके आह्वान का कारण बतायेगा

"(२) प्रत्येक सदनकी प्रक्रिया के विनियामक नियमों से ऐसे अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के हेतु समय रखने के लिए, तथा सदन के अन्य कार्य पर इस चर्चा को पूर्ववर्तिता देने के लिए, उपबन्ध किया जायगा।" अनु० ८७

§ अनु० १२३

अन्य न्यायाधीशों की सलाह से राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। सार्वजनिक महत्व के विषयों में वह उच्चतम न्यायालय की सम्मति ले सकता है। न्यायालय द्वारा दण्ड पाये हुए किसी अपराधी को क्षमा करने, प्रविलम्बन, परिहार या लघुकरण का राष्ट्रपति को अधिकार होता है। सैनिक न्यायालय द्वारा दिये गये दण्ड और किसी राज्य विधि के विरुद्ध किये गये अपराध जनित दण्ड के विषय में वह कुछ नहीं कर सकता।

राष्ट्रपति का कार्य-काल—राष्ट्रपति का कार्य-काल पद की शपथ* लेने के दिन से पांच वर्ष होता है। किन्तु यदि वह इस बीच त्याग-पत्र देदे, अथवा उसकी मृत्यु हो जाय, यामहाभियोग द्वारा उसे अपदस्थ कर दिया जाय तो उसका स्थान रिक्त घोषित किया जायगा और छ मास के भीतर पुनः चुनाव करके रिक्त स्थान की पूर्ति की जायगी। त्याग-पत्र देने की स्थिति उत्पन्न होने पर उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों से अंकित उसका त्यागपत्र लोकसभा के अध्यक्ष के सम्मुख उपस्थित करेगा। नये राष्ट्रपति का चुनाव होने तक उप-राष्ट्रपति कार्यवाहक-राष्ट्रपति होगा।

* "प्रत्येक राष्ट्रपति और प्रत्येक व्यक्ति जो राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा है अथवा उसके कृत्यों का निर्वहन करता है अपने पद- ग्रहण करने से पूर्व भारत के मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसकी अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय के प्राप्य अग्रतम न्यायाधीश के समक्ष निम्न रूप में शपथ या प्रतिज्ञा करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा, अर्थात्—

मैं......अमुक... $\frac{\text{ईश्वर की शपथ लेता हूँ}}{\text{सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं}}$ कि मैं श्रद्धा-पूर्वक भारत के राष्ट्र-पति-पद का कार्य पालन (अथवा राष्ट्रपति के कार्यों का निर्वहन) करूंगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा और मैं भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूंगा।" अनु० ६०

महाभियोग—संविधान के विरुद्ध आचरण करने तथा अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने पर राष्ट्रपति के विरुद्ध संसद का कोई सदन महाभियोग का प्रस्ताव रख सकता है।* ऐसा महाभियोग प्रस्तुत करने के चौदह दिन पूर्व सदन के कमसे कम एक चौथाई सदस्यों का प्रस्तावित संकल्प पर हस्ताक्षर होना आवश्यक है। उस सदन के कमसे कम दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से संकल्प को पारित किया जा सकता है। फिर संकल्प दूसरे सदन में जायगा। दूसरा सदन उसकी जांच करायेगा और राष्ट्रपति को सदन में उपस्थित होने का अधिकार देगा। जांच के समय राष्ट्रपति स्वयं अथवा अपने किसी प्रतिनिधि को भेजकर उसमें भाग ले सकता है। दोनों सदनों का दो तिहाई बहुमत यदि महाभियोग को मान ले तो उसी दिन से राष्ट्रपति अपदस्थ समझा जायगा। इस निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकेगी।

अमेरिकन राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने का अधिकार केवल उच्च-सभा अर्थात् सीनेट को ही प्राप्त है, जब कि भारत में यह नियम है कि दोनों में से कोई भी सदन राष्ट्रपति पर महाभियोग लगा सकता है, किन्तु उसका निर्णय केवल लोकसभा करती है। अमेरिका के राष्ट्रपति के सम्बन्ध में हेराल्ड लास्की ने ठीक ही कहा है—

> **"राष्ट्रपति अपने देश का इतना बड़ा प्रतीक होता है, कि जब तक वह अपने पद पर रहता है, तब तक उसकी बराबरी का अन्य कोई व्यक्ति नहीं होता। उसकी आवाज के सामने मंत्रि-परिषद् के अधिकारी की आवाज केवल एक काना-फूसी-सी रहती है, जिसे वह सुने या न सुने।"**

उसका कार्य-काल पहले बढ़ सकता था, किन्तु उसके २२ वें संशोधन के अनुसार, जो फरवरी १९५० में कानून बना, अमेरिका का राष्ट्रपति दो बार से अधिक उस पद के लिये उम्मेदवार नहीं हो सकता।

इसके विपरीत फ्रान्स का राष्ट्रपति बिल्कुल शक्तिहीन होता है। पार्लियामेंट के द्वारा पारित किसी विधान पर उसके हस्ताक्षर किये जाने आवश्यक नहीं समझे जाते, उसका कार्य-काल सात वर्ष होता है, राष्ट्रीय एसेम्बली के

---

* अनु० ६१

द्वारा उस पर महाभियोग लगाया जा सकता है, किन्तु उस पर विचार महा न्यायालय में ही हो सकता है। उन परिवारों के व्यक्ति, जिन्होंने पहले फ्रान्स में शासन किया था, राष्ट्रपति पद के लिये चुनाव नहीं लड़ सकते।

उप-राष्ट्रपति—राष्ट्रपति के अतिरिक्त उप-राष्ट्रपति की व्यवस्था भी हमारे संविधान में की गई है। राष्ट्रपति के पदकी आकस्मिक रिक्तता के कारण उप राष्ट्रपति को राष्ट्रपति का कार्य करना पड़ता है। और तत्कालीन व्यवस्था के लिये उपराष्ट्रपति का चुनाव कर लिया जाता है। किन्तु छः मास के भीतर राष्ट्रपति का निर्वाचन अनिवार्य होता है। अमेरिका में इससे भिन्न नियम है। वहां राष्ट्रपति का स्थान रिक्त होने की अवस्था में उप-राष्ट्रपति शेष-अवधि तक राष्ट्रपति का कार्य करता है। प्रेजीडेंट रूजवेल्ट की मृत्यु के पश्चात् उप-राष्ट्रपति ट्रूमेन अमेरिका के राष्ट्रपति बने थे। और नया चुनाव होने तक वे उसी पद पर बने रहे। उप-राष्ट्रपति जिस अवधि में कार्यवाहक राष्ट्रपति होते हैं उसे भी वही वेतन तथा अन्य सुविधायें प्राप्त होती हैं जो राष्ट्रपति को मिलती हैं।

उप-राष्ट्रपति का चुनाव—संसद् के दोनों सदन अनुपाती-प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा उपराष्ट्रपति का चुनाव करते हैं। संसद के किसी सदन का अथवा किसी राज्य के विधान मंडल का सदस्य यदि उप राष्ट्रपति निर्वाचित हो जायगा तो वह उप-राष्ट्रपति का पद ग्रहण करने की तिथि से उस सदन की सदस्यता से स्वतः वंचित हो जाता है। पैंतीस वर्ष से कम आयु का व्यक्ति, भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के आधीन कोई लाभ का पद प्राप्त व्यक्ति, और वह व्यक्ति जो राज्य-परिषद का सदस्य बनने की अर्हता न रखता हो उप-राष्ट्रपति नहीं चुना जा सकता।

उप-राष्ट्रपति का कार्य-काल पांच वर्ष होता है। वह राज्य-परिषद का पदेन सभापति होता है। इस नाते वह राज्य-परिषद की कार्यवाहियों का

सभापतित्व करता है। अमेरिका में भी उप-राष्ट्रपति सिनेट का सभापति होता है। भारत का उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष निम्नलिखित शपत लेता है और उसपर अपना हस्ताक्षर करता है—

"मैं......अमुक... ईश्वर की शपथ लेता हूँ / सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूँ उसके कर्तव्यों का श्रद्धा पूर्वक निर्वहन करूगा"।

रिक्त स्थान—उप-राष्ट्रपति अपना त्याग-पत्र लिखकर राष्ट्रपति के पास देता है। उसे अपदस्थ करने के लिए राज्य-परिषद अविश्वास का प्रस्ताव पास करती है जिसका अनुमोदन लोकसभा करती है। अविश्वास का प्रस्ताव रखने की चना कमसे कम चौदह दिन पूर्व देनी आवश्यक है। ऐसी स्थित में उस पद का दुबारा चुनाव होना आवश्यक है।

मंत्रि-परिषद

७४ वें अनुच्छेद के अनुासर राष्ट्रपति को सहायता और मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रि परिषद होती है।* व्यावहारिक रूप से राष्ट्रपति के कोई अधिकार नहीं होते, वह एक प्रतीक मात्र होता है जैसा कि ब्रिटेन का प्रधान।

*"राष्ट्र-पति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रि-परिषद् होगी जिसका प्रधान प्रधान-मंत्री होगा।

"क्या मंत्रियों ने राष्ट्रपति को कोई मंत्रणा दी और यदि दी तो क्या दी, इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच न की जायगी।" अनु० ७४

"प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मंत्री की मंत्रणा पर करेगा।

"राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त मंत्री अपने पद धारण करेंगे।

"मंत्रि-परिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।

"किसी मंत्री के अपने पद-ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति उससे तृतीय अनुसूचि में इसके लिये दिये हुए प्रपत्रों के अनुसार पद की तथा गोपनीयता की शपथें करायेगा।

ब्रिटेन का राजा समस्त कानूनी अधिकार रखते हुए भी सर्वथा अशक्त होता है।* हेराल्ड लास्की के शब्दों में वहां का राजा प्रजातत्र के हाथ बिक चुका† और आज जिस स्थिति में वह है अपने परिवार के साथ एक प्रतीक के रूप में वह सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधि है। ‡ अन्य विचारकों के भी इस संबन्ध में लगभग यही विचार हैं। §

मंत्रि-परिषद् को अंग्रेजी में "कैबिनेट" कहते हैं जिसका अर्थ छोटा 'कमरा' या सन्दूक होता है। पूर्व काल में ब्रिटेन की प्रिवी कौन्सिल की गुप्त बैठकें एक छोटे से कमरे में हुआ करती थीं जहां ब्रिटेन का राजा उनके साथ परामर्श करता था। उस छोटे से कमरे को कैबिनेट कहा जाता था। कालान्तर में वह शब्द मन्त्रि-परिषद् के लिये प्रयुक्त होने लगा।

"कोई मंत्री जो निरन्तर छ मास की किसी कालावधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य न रहे उस कालावधि की समाप्ति पर मंत्री न रहेगा।

"मंत्रियों के वेतन तथा भत्ते ऐसे होंगे जैसे, समय-समय पर, संसद् विधि द्वारा निर्धारित करे तथा जब तक संसद् इस प्रकार निर्धारित करे तब तक ऐसे होंगे जैसे कि द्वितीय अनुसूचि में उल्लिखित हैं।" अनु० ७५

(शपथ और प्रतिज्ञान के प्रपत्र देखिये, तृतीय अनुसूची, भारतका संविधान पृष्ट २५४-५५

*"The King reigns but does not govern.

†"Monarchy, to put it bluntly, has been sold to the democracy as the symbol of itself, and so nearly universal has been the chorus of eulogy which has accompanied the process of sale that the rare voices of dissent have hardly been heard."

Laski : Parliamentary Government in England p. 392.

‡"It is not untrue to say that the royal family is a representative symbol of the nation in a far higher degree than was the case fifty or even thirty years ago."

(Laski, ibid, p 393)

§ Keith : The King and the Imperial Crown, p. 183.

दलीय सरकार —

संवैधानिक रूप से मंत्रि-परिषद ब्रिटेन में राजा द्वारा और भारतवर्ष तथा अमेरिका में राष्ट्रपति द्वारा निर्मित होती है (और पूर्व काल में ब्रिटेन में तथा सामन्तकाल तक भारतवर्ष में भी राजा ही स्वेच्छा से मंत्रि-परिषद को बना और तोड़ सकते थे) किन्तु कार्यरूप में लोकसभा के बहुसख्यक दल द्वारा वह निर्मित होती है और उसीके प्रति उत्तरदायी होती है। आधुनिक कालमें मंत्रि-परिषद व्यवस्था का अविर्भाव उस समय हुआ जब इंगलैण्ड में अंग्रेज कैथोलिक राजाकी अपेक्षा एक जर्मन प्रोटेस्टंट राजा (जार्ज प्रथम) को लोगों ने राजसिंहासन पर बिठाया। जार्ज प्रथम अंग्रेजी से अनभिज्ञ था, इसलिये उसने मंत्रि-परिषद की अध्यक्षता का भार उनमें से एक व्यक्ति पर, जसे प्रधान मंत्री कहा गया, सौंपा। सौभाग्य से उस समय सर रॉबर्ट वालपोल जैसा योग्य प्रधान मंत्री मिल गया जिसने मंत्रि-परिषद को एक नयी दिशा दी। लोकसभा में एक बार (१७४२) हार जाने पर उसने अविलम्ब त्याग-पत्र दे दिया और वहां की संसदीय व्यवस्था में यह परम्परा स्थापित कर दी कि मंत्रि-परिषद को जब तक लोकसभा का समर्थन प्राप्त होता है तभी तक वह कार्य करता है।*

मंत्रि-परिषद के गठन के संबन्ध में भारतवर्ष की व्यवस्था न्यूनाधिक मात्रा में ब्रिटेन से मिलती-जुलती है, यद्यपि ब्रिटेन में न लिखित संविधान ही है न निर्वाचित राष्ट्रपति। ब्रिटिश मंत्रि-परिषद की व्याख्या और उसका विवेचन लार्ड मेकाले, सिडनी लो, और मोर्ले ने अपने ग्रन्थों में किया है। †

*"Thereby the Principle, that a ministry retains office only so long as it possesses the confidence of the House of commons, and must resign when that confidence is withdrawn, was so firmly establihed that even George III found it impossible to ignore it."

Sen and Das : Studies in Modern Constitution p. 19.

†The Ministry is, in fact, a Committee of leading members of the two Houses. It is nominated by the Crown, but it consists exclusively of states-

मंत्रि की योग्यता—हमारे पुराने ग्रंथों में मंत्री और उसके कार्यों को यथेष्ट महत्व और सम्मानप्रदान किया गया है। रामायणके अयोध्या कांड* और महाभारत के शांति पर्व† में इसका जो उल्लेख किया गया है उससे इसकी महत्ता का पता लगता है। नीति शास्त्रके सुप्रसिद्ध आचार्य कौटिल्यके शब्दों को उद्धरित करते हुएश्री अम्बिका प्रसाद बाजपेयी ('हिन्दू राज्यशास्त्र'पृष्ठ १५६-१५७) लिखते है कि "कुलीन, शिल्पज्ञ, आंख वाला, बुद्धिमान स्मृतिमान्, निपुण, वाक्-पटु, प्रगल्भ, प्रतिकार और प्रतिवाद करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, क्लेश सहिष्णु, पवित्र हृदय, मित्रभाव वाला दृढ़ राजभक्त, शील, बल, आरोग्य तथा धैर्यशाली, निरभिमान, स्थिर स्वभाव वाला, सौम्य आकृत वाला, तथा भूमि और स्त्री आदि के विषय में शत्रुता न रखनेवाला अमात्य होना चाहिये।"

---

men whose opinions on the pressing questions of the time agree, in the main, with the opinion of the majority of the House of Commons. Among the members of this Committee are ditributed the great departments of administration. Each Minister conducts the ordinary business of his own office without reference to his colleagues. But the most important business of every office, and especially such business as is likely to be the subject of discussion in parliament, is brought under the consideration of the whole Ministry . . . . While the Ministers retain the confidence of the Parliamentary majority, that majority supports them against opposition, and rejects every motion which reflects on them or is likely to embarras them."

Macaulay : History. Ch. XX

Sidney Low : Government of England.

Morley : Walpole, Ch. VII.

* कच्चिदात्म समाः शूराः श्रतवन्ततो जितेन्द्रियः।
कुलीनाश्चेंगितज्ञाश्च कृतास्ते तात मंत्रिणः॥

† अमात्यांश्चाति शूरांश्च, ब्रह्मणांश्च, परिश्रतान।
ससंतुष्टांश्च कौन्तेय महोत्साहांश्च कर्मसु॥

गोपनीयता की शपथ—संविधान के ७४ वें अनुच्छेद के अनुसार प्रधान मंत्री के नेतृत्व में एक मन्त्रि-परिषद होगा जो राष्ट्रपति को "सहायता और मंत्रणा" देगा।

जिस दल या दलों के समूह का लोकसभा में बहुमत होता है राष्ट्रपति उसके नेता को मंत्रि-परिषद बनाने के लिए आमंत्रित करता है मंत्रि-परिषद को अपना कार्य-भार सभालने से पूर्व राष्ट्रपति या उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के सम्मुख पद तथा गोपनीयता की शपथ लेनी होती है उनकी संयुक्त जिम्मेदारी होने के नाते किसी मंत्री का मंत्रि-परिषद के निर्णयों से असहमत होने का कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता। यदि कोई मंत्री मंत्रि परिषद से मतभेद रखता है तो उसे तुरंत त्याग-पत्र दे देना चाहिये, इस लिए मंत्रि-परिषद के नियम सर्वसम्मति से पास हुए समझे जाते हैं। यदि अधिकांश मंत्री किसी विषय में प्रधान मंत्री से सहमत नहीं होते तो उसे उन पर अपना मत थोपने का अधिकार नहीं होता। या तो वह बहुमत की बात स्वीकार कर लेगा, अथवा समूचे मंत्रिमंडल सहित त्याग-पत्र देकर नये मंत्रि-मंडल का गठन करेगा। अमेरिका में इससे भिन्न नियम है। वहां राष्ट्र-पति के पास इतनी अधिक शक्तियां होती हैं कि किसी मंत्री के असहमत होने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता।* मंत्रि-परिषद के कार्य और उनकी बैठकें अत्यन्त गुप्त रूप से होती हैं। अपेक्षित है कि वे गोपनीयता की शपथ का ईमानदारी के साथ पालन करें। मंत्री-परिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होताहै, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि कोई मंत्री लोक सभा के किसी सदस्य के पूछने पर कोई गोपनीय बात उसे बतला ही देगा। सदन में तो वह स्पष्ट कह देता है कि अमुक प्रश्न का उत्तर सार्वजनिक हित की दृष्टि से नहीं दिया

---

* "In a cabinet meeting there are many arguments and opinions but only one vote, and that is of the President."

Abrahim Linkon.

जा सकता । * मंत्रि-परिषद के आकार-प्रकार को देखते हुए यह संभव नहीं होता, और न यह उचित ही है कि प्रधान मंत्री हर विषय में नित्य उसकी बैठक बुलाकर उसकी राय ले। इसलिये अत्यन्त महत्वपूर्ण विषयों में वह मंत्रि-परिषद के चुने हुए दो-चार साथियों की सम्मति से निर्णय करके अन्य मंत्रियों की सहमति बाद में प्राप्त कर लेता है । कौटिल्य के समय भी मंत्रि-परिषद के दो अंग थे जिनमें गुप्त मंत्रणा के लिए पृथक व्यवस्था थी। उसके अनुसार अमात्य मंत्रि-परिषद का सदस्य तो होता था, किन्तु अन्तरंग सभा में नहीं जा सकता था ।†

हमारे देशका मंत्रि-परिषद संसार में सबसे बड़ा है। उसमें चार श्रेणियों के मंत्री हैं। मंत्री, राज्य-मंत्री, उप-मंत्री और संसदीयसचिव। अपने विभाग का कार्य भलीभांति सम्पादित करने के लिए मंत्री संसद के किसी सदस्य को राज्य-मंत्री, उप-मंत्री अथवा संसदीयसचिव नियुक्त कर सकता है। पदों के अनुसार उन के पृथक-पृथक कार्य-क्षेत्र और अधिकार होते हैं।

मंत्रि परिषद की सबसे बाद की सूची निम्न प्रकार है:—

मंत्रिमण्डल के सदस्य—

नाम	मंत्रालय
श्री जवाहरलाल नेहरू (प्रधानमंत्री)	परराष्ट्र मंत्रालय
मौलाना अबुल कलाम आजाद	शिक्षा तथा प्राकृतिक साधन एवं वैज्ञानिक गवेषणा मन्त्रालय।

* २८ नवम्बर १९५२ को लोकसभा में श्री बी. राघवैया द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में शिक्षा तथा प्राकृतिक साधन और वैज्ञानिक अनुसंधान के मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा कि इस विभाग के सचिव डा. शांतिस्वरूप भटनागर की सोवियत संघ की यात्रा की रिपोर्ट सार्वजनिक हितकी दृष्टि से प्रकाशित नहीं की जा सकती ।

† अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, वही, पृ० १७२

नाम	मन्त्रालय
श्री जगजीवन राम	संवादवहन मन्त्रालय
राजकुमारी अमृत कौर	स्वास्थ्य मन्त्रालय
श्री एन० गोपालस्वामी ऐयंगार	प्रतिरक्षा मन्त्रालय
श्री चिंतामन द्वारकानाथ देशमुख	वित्त मन्त्रालय
श्री गुलजारीलाल नन्दा	आयोजन तथा सिंचन एवं विद्युत मन्त्रालय
डाक्टर कैलासनाथ काटजू	स्वराष्ट्र एवं राज्य मन्त्रालय
श्री रफी अहमद किदवई	खाद्य एवं कृषि मन्त्रालय
श्री टी० टी० कृष्णमाचारी	वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्रालय
श्री सी० सी० विस्वास	विधि तथा अल्प संख्यक मन्त्रालय
श्री लालबहादुर शास्त्री	रेलवे तथा परिवहन मन्त्रालय
सरदार स्वरन सिंह	निर्माण, आवास तथा पूर्ति मन्त्रालय
श्री वी० वी० गिरि	श्रम मन्त्रालय
श्री के० सी० रेड्डी	उत्पादन मन्त्रालय
श्री सत्य नारायण सिनहा	संसद विषयक मंत्रालय
श्री अजित प्रसाद जैन	पुनस्संस्थापन मंत्रालय
श्री महावीर त्यागी	राजस्व एवं व्यय मंत्रालय
डाक्टर बी वी० केसकर	सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय
श्री दत्तात्रय परशुराम करमारकर	वाणिज्य मंत्रालय
डाक्टर पंजाबराव एस० देशमुख	कृषि मंत्रालय

उप-मंत्री—

श्री एस० एन० बुरागोहन	निर्माण, भवन तथा पूर्ति मंत्रालय
श्री राज बहादुर	संवादवहन मंत्रालय
श्री केशवदेव मालवीय	प्राकृतिक साधन एवं वैज्ञानिक ग मंत्रालय
सरदार सुरजीत सिंह मजीठिया	प्रतिरक्षा मंत्रालय

नाम	मन्त्रालय
श्री बलवंत नगेश दातार	स्वराष्ट्र मंत्रालय
श्री आबिद अली	श्रम मंत्रालय
श्री मणिलाल चतुरभाई शाह	वित्त मंत्रालय
श्री जगन्नाथराव कृष्णराव भोंसले	पुनर्संस्थापन मंत्रालय
श्री ओ० वी० अलकेसन	रेलवे तथा परिवहन मंत्रालय
श्रीमती एम० चन्द्रशेखर	स्वास्थ्य मंत्रालय
श्री अनिल कुमार चंदा	परराष्ट्र मंत्रालय
श्री एम० वी० कृष्णप्पा	खाद्य एवं कृषि मंत्रालय
श्री जे० एस० हाथी	आयोजन तथा सिंचन एवं विद्युत मंत्रालयी

संसदीय सचिव—

श्री सतीशचन्द्र	प्रधान मंत्री के सहायतार्थ
श्रीमती लक्ष्मी एन० मेनन	परराष्ट्र मंत्री से सम्बद्ध
श्री शाहनवाज खां	रेलवे तथा परिवहन मंत्री से सम्बद्ध
श्री योगेन्द्र नाथ हजारिका	प्रधान-मंत्री से सम्बद्ध
श्री बी० आर० भण्ड	वित्त मंत्री से सम्बद्ध

मंत्रियों के पास जो विभाग सौंपे गये हैं यह आवश्यक नहीं कि वे उन विषय के विशेषज्ञ हों। उदाहरण के लिये स्वास्थ्य मंत्री का डाक्टर होना या सुरक्षा मंत्री का जनरल या ऐडमिरल होना आवश्यक नहीं है। एक सार्वजनिक व्यक्ति होने के नाते जो पहले-पहल मंत्री बनता है उसका सरकारी यंत्र से अनभिज्ञ होना स्वाभाविक ही है। उसमें भाषण देने, संगठन करने और जनता की आवश्यकताओं को सरलता से जान लेनेके गुण होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि वह शासन करना भी जाने और उसे यह भी मालूम हो कि प्रशासन के द्वारा जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रधान मंत्रीको मंत्रियों का चुनाव करने में योग्यता की कसौटी जाति, क्षेत्र और

राजनीतिक आधार बनाने होते हैं। लोकतंत्रीय व्यवस्था में यथा संभव सभी जातियों, सभी क्षेत्रों और सभी राजनीतिक विचारधारा के लोगों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कभी-कभी अधिक उपयुक्त और योग्य व्यक्तियों को व्यवस्थापिका और मंत्रिमंडल में स्थान नहीं मिल पाता। इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि कभी-कभी ऐसा व्यक्ति भी मंत्रि-परिषद में पहुँच जाय जो साधारण व्यक्ति से भी कम योग्यता रखता हो। बतलाते हैं इंगलैण्ड में एक बार एक अर्थ मंत्री ने अपना पद संभालने के बाद अपने सचिव से फाइल में अंकित दशमलव बिन्दु के विषय में पूछा, "ये क्या हैं?" सचिव ने माननीय मंत्री महोदय को बतलाया कि ये दशमलव बिन्दु है और इनका बहुत अधिक महत्व होता है। इसी प्रकार एक उपनिवेश मंत्री ने अपने सचिव से पूछा कि चित्र में हमें यह बतलाओ कि हमारे उपनिवेश कहां-कहां हैं। किसी ने कहा है कि मंत्री बनने के लिये योग्यता की आवश्यकता होती है उस पद पर कार्य करने के लिये नहीं। यह हास्यजनक किन्तु, कटु सत्य है। जिस प्रकार मंत्रियों के लिये हर विषय पर भाषण देना साधारण सा काम है उसी प्रकार किसी भी विभाग का कार्य-भार संभालना उनके लिये कठिन नहीं। कोई भी सभा हो, चाहे वह चित्रकार सम्मेलन हो या पत्रकार अधिवेशन, मेहतर सभा हो, अथवा बुनकरों की बैठक, सबमें अपनी वक्तृत्वकला का परिचय देता है। जून १९५२ में मद्रास के मुख्य मंत्री श्री राजगोपालाचारी जब धोबियों की एक सभा में बोले तब कई सम्पादकों ने अपने समाचार पत्रों के कालम रंग डाले। राज गोपालाचारी तो माने हुए नीतिज्ञ, कुशल शासक और सफल वक्ताओं में से हैं। भाषण देने की कला में तो ऐसे बहुत से व्यक्ति पारंगत हैं जो बहुत कुछ बोल जाते हैं—धाराप्रवाह—और स्वयं उस विषय की कोई जानकारी नहीं रखते। उन्हीं की तरह के ये मंत्री हैं।

स्पष्ट है कि अपने विभाग का ज्ञाता न होने पर भी वह सफल मंत्री बन सकता है यदि वह जनता की आवश्यकताओं को भलीभांति अनुभव करता है और प्रशासन सम्बन्धी दो-चार बुनियादी बातों को जानता है। विभागीय अधिकारियों और विशेषज्ञों से अपनी नीति कार्यान्वित करवाने की योग्यता ही

मंत्री की सबसे बड़ी योग्यता होती है। जिस मंत्री में प्रशासन की योग्यता होती है उसका सचिवालय पर काफी प्रभाव होता है। हमारे देश में चोटी के दो-चार नेताओं ने (जिनमें सरदार पटेल, रफी साहेब, पंडित पन्त, श्री राजगोपालाचारी मुख्य हैं) कुशल संगठनकर्ता और राजनीतिज्ञ होने के अतिरिक्त प्रशासन की योग्यता का भी परिचय दिया है।

मंत्रिपरिषद के अधिकार—

राष्ट्रपति के समस्त अधिकारों का प्रयोग मंत्रिपरिषद करता है। राष्ट्रपति के नाम पर संसद का अधिवेशन बुलाना और उसे स्थगित करना, संसद के सम्मुख धन विधेयक एवं अन्य अनुदानों की मांग करना मंत्रि-परिषद का मुख्य कर्तव्य है। राष्ट्र की गृह और विदेश नीति मंत्रि-परिषद द्वारा निर्धारित होती है। यहां तक कि राष्ट्रपति को भी अपने सन्देश और भाषण का मसविदा मंत्रि-परिषद की नीति के अनुरूप तैयार करनी होती है। चूंकि लोकसभा में बहुमत दल का मंत्रि-परिषद होता है इसलिए सदन में दल के सब सदस्य उसकी नीति का समर्थन करते है, इसलिए मंत्रि-परिषद की शक्ति लोकसभा से भी अधिक होती है। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हेमंड का यह कहना असत्य नहीं था कि नार्वे को छोड़कर वास्तविक रूप से संसद कहीं भी कानून नहीं बनाती, बल्कि मंत्रि-परिषद द्वारा बनाये गये कानून का समर्थन सत्तारूढ़ दल के सदस्य चुपचाप करते हैं और वह पास हो जाता है।* (नार्वे में अब साम्यवादी सरकार है)। मंत्रि-परिषद के इतने व्यापक

*",It is true that all the work of law-making is done in parliament, but it is misleading at the present day to speak of Parliament as the Legislative body in contradiction to the cabinet, which is called the Executive, because it leads us to forget that the course of legislation (except in Norway) is habitually regulated by the cabinet through its influence over its supporters in Parliament."

Hammond : Comparative politics, pp. 407-408.

अधिकार होने के कारण मैरियट ने उसे एक ऐसी धुरी बतलाया है जिसके चारों ओर राजनीतिक यंत्र घूमता रहता है।* और ग्लैड्सटन ने उसे अन्तिम उत्तरदायित्व का आसन माना है।† इसी कारण कुछ क्षेत्रों में मंत्रि-परिषद की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति राष्ट्र के लिये खतरे का विषय समझी जाने लगी है। कुछ समय पूर्व लार्ड सेसिल ने हाउस ऑफ लार्ड्स में इस आशय का एक प्रस्ताव भी रखा था और कहा था कि "मंत्रि-परिषद् का बढ़ता हुआ अधिकार लोकतंत्रात्मक संविधान के लिए एक खतरा है।"‡

लोकसभा में मंत्रि-परिषद की पराजय होने की स्थिति में वह त्याग-पत्र दे देता है, और राष्ट्रपति विरोधी दल के नेता को मंत्रि-परिषद का निर्माण करने के लिये आमंत्रित करता है। राष्ट्रपति को किसी दल विशेष के शासनारूढ रहने में दिलचस्पी नहीं रखनी चाहिये। वह किसी दल विशेष का नहीं, बल्कि समूचे राष्ट्र का प्रमुख है, इसलिये उससे दलबन्दी के दलदल से बचकर तटस्थ रहने की अपेक्षा की जाती है। यदि विरोधी दल का नेता ऐसा मंत्रि-परिषद बनाने में असमर्थ है जिसे लोकसभा के अधिकांश सदस्यों का

*"It is the pivot round which the whole political machinery revolves."
—Marriot.

†"The Cabinet is viewed as the seat of ultimate responsibility."
—Gladstone.

‡"The growing power of the Cabinet is a danger to the democratic constitution of country."
—Cecil.

"The power of the Cabinet against the House of Commons has grown steadily and rapidly."
—Bryce.

"It is one of the agreeable fictions of the British Government that the commons control the cabinet, but an assertion that the Cabinet controls the Commons, would come closer to actualities."
—Munro : Governments of Europe, p. 224.

समर्थन प्राप्त है तो राष्ट्रपति नये चुनाव की आज्ञा देता है। जिन राज्यों में, मंत्रि-परिषद् को सदन में बहुमत-दल का समर्थन होने पर भी, अन्य विरोधी दल संयुक्त रूप से बहुमत में होते हैं, वहां मंत्रि-परिषद को प्रायः अविश्वास के प्रस्ताव का भय बना रहता है और वहां की जनता को सरकार पर श्रद्धा नहीं रह पाती। पटियाला संघ, राजस्थान, त्रावणकोर-कोचीन और मद्रास इसका उदाहरण प्रस्तुत कर चुके हैं। जिन राज्यों की सरकार कमजोर होती है उनके प्रशासन में संघ-सरकार भी हस्तक्षेप करती है। विशेष कर 'ग' श्रेणि के राज्यों में यह पाया गया है कि खर्च की मदों पर विधान सभा द्वारा स्वीकृति मिल जाने तथा तत्सम्बन्धी विधि बन जाने पर भी वे तब तक मान्य नहीं होतीं जब तक संघ-सरकार (रियासती सचिवालय) की स्वीकृति नहीं प्राप्त हो जाती। इससे राज्य की लोकप्रिय सरकार पर जनता को विश्वास नहीं होता।

प्रधान मंत्री—

मैं अन्यत्र लिख चुका हूँ कि राष्ट्रपति लोकसभा के बहुसंख्यक दल के नेता को प्रधान मंत्री घोषित करता है और उसे मंत्रि-परिषद की सूची उपस्थित करने का आदेश देता है। मंत्रि-परिषद की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करने के नाते प्रधान मंत्री सदन का नेता भी माना जाता है। मंत्रियों में विभागों का वितरण तथा समय-समय पर उनकी देख-रेख करना संसद की विभिन्न समितियों के निर्माण में अपना निर्णायक मत देना, देश की आन्तरिक सुरक्षा और वैदेशिक मामलों में विशेष दिलचस्पी लेना, 'प्रधान मंत्री के कोष' में धन प्राप्त करके उसे स्वेच्छापूर्वक आवश्यकतानुसार व्यय करना प्रधान मंत्री के विशेष अधिकार होते हैं। प्रधान मन्त्री, बेजहाट के शब्दों में, एक आचार्य है जिसका सभी वाद-प्रतिवादों और महत्वपूर्ण कार्यों

में अद्वितीय स्थान होता है।* वह राष्ट्रपति को मंन्त्रि-परिषद् के निर्णयों की सूचना देता है; और राष्ट्रपति उच्चपदों, जैसे राज्य-पाल, राजप्रमुख, राजदूत आदि की नियुक्ति उसकी सम्मति से करता है। प्रधान मन्त्री जिस मन्त्री से चाहे त्याग-पत्र मांग सकता है। अगर कोई मन्त्री प्रधान मन्त्री के मांगने पर त्याग-पत्र न दे तो सारा मन्त्रि-परिषद राष्ट्रपति के पास अपना त्याग-पत्र दे देता है और राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री को पुन: नया मन्त्रि मन्डल बनाने को कहता है।

राज्य की समस्त प्रशासकीय व्यवस्था प्रधान मन्त्री पर आश्रित होती है।† हमारे देश में केन्द्र के अतिरिक्त राज्यों के प्रशासन के संबन्ध में भी प्रधान मन्त्री राज्य सरकारों को सलाह देता है। जवाहरलालजी ने एकाधिक बार अपने इस अधिकार का प्रयोग किया है। अगस्त १९५२ में विभिन्न राज्यों के मुख्य मन्त्रियों के नाम एक गश्तीपत्र भेजकर प्रधान मन्त्री ने उनसे कहा कि उच्च प्रशासकीय पदों पर काम करने वाले सभी बड़े कांग्रेसजनों का कर्त्तव्य है कि वे अपने दल के हितों के मुकाबिले में देश के हितों को प्राथमिकता दें। उनका मुख्य उद्देश्य जनता के हितों की रक्षा होनी चाहिये। अच्छे और निष्पक्ष प्रशासन की आवश्यकता पर जोर देते हुए प्रधान मन्त्री ने उक्त पत्र में लिखा कि राष्ट्रीय कार्यों में हमें कांग्रेस के कार्यक्रम का समर्थन करना है, किन्तु हमारे काम सभी वर्गों के लिये होने चाहियें; इसलिये, न अल्पसंख्यकों की किसी प्रकार उपेक्षा की जानी चाहिये, और न उन लोगों पर अत्याचार करना चाहिये जिन्होंने चुनाव में उनका विरोध किया था।

चूंकि प्रधान मंत्री को लोकसभा का पूर्ण समर्थन प्राप्त होता है इसलिये आवश्यकता पड़ने पर वह एक तानाशाह की भांति अपने असीमित अधिकारों

---

*"The greatest teacher of all in Parliament, the headmaster of the nation, the great elevator of the country so far as Parliament elevates it must be the Prime Minister : he has an influence, an authority, a facility in giving a great tone to discussion, or a mean tone, which no other man has."

—Bagehot.

† Laski : ibid, P. 239.

का प्रयोग कर सकता है। † अपने व्यक्तित्व और योग्यता के अनुसार प्रधान मंत्री उन अधिकारों का प्रयोग करता है। जिन देशों का संसदीय इतिहास काफी पुराना है वहां का अध्ययन करने से पता चलता है कि योग्य प्रधान-मन्त्रियों ने अपने अधिकारों की बहुत सी परम्परायें स्थापित की हैं, और जो प्रधान मंत्री अयोग्य सिद्ध हुए हैं उन्हें अपना कार्य-काल समाप्त होने से पूर्व ही उस प्रतिष्ठित पद से वंचित होना पड़ा है। हमारे देश का संसदीय विकास अभी नया ही है। फिर भी स्वतंत्र भारत के नये प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू का देश के सब क्षेत्रों में जितना सम्मान है उतना शायद अन्य किसी देश के प्रधान-मंत्री का न होगा।

लोकतंत्रीय व्यवस्था में मंत्रि-परिषद को जो महत्त्व प्राप्त है वह बहुत कुछ प्रधान-मन्त्री के व्यक्तित्व और योग्यता के विकास का फल है। इसलिये इस पद के लिये असाधारण प्रतिभा का चरित्रवान व्यक्ति चुना जाना चाहिये जिसमें नेतृत्व के सभी गुण विद्यमान हों और जिसके प्रति विरोधी लोग भी आदर और श्रद्धा का भाव रखें।

प्रधान मंत्री के बाद दूसरा स्थान विदेश-मंत्री, अर्थ-मंत्री और गृह-मंत्री का होता है। प्रधान मंत्री इन में से किसी एक को उप-प्रधान मंत्री बनाता है जो आगे चलकर आवश्यकता पड़ने पर प्रधान मंत्री का पद ग्रहण करता है। इस समय वैदेशिक विभाग स्वयं प्रधान मंत्री के हाथ में है।

अमेरिका में राष्ट्रपति को न केवल अपनी कार्यकारिणी को वरन् अन्य पदाधिकारियों को भी नियुक्त करने का अधिकार होता है। उनका किसी सदन का सदस्य होना आवश्यक नहीं। जिस तरीके से वह यह चुनाव करता है उसे लूट-प्रथा (Soils System) कहा जाता है। जब किसी राज-

† "The flexibility of the cabinet system allows the Prime Minister in an emergency to take upon himself a power not inferior to that of a dictator, provided always that the House of Commons will srand by him.':

-Lord Morley.

नीतिक दल की विजय होती हैं, तो वह अपने समर्थयों को पुरस्कृत करने के लिये प्रयत्नशील होता है। वह न केवल सरकारी पदों पर अपने समर्थकों को नियुक्त करता है वरन् सार्वजनिक ठेकों को भी उन्हें सुविधायें देता है, और उन्हीं से सरकारी आवश्यकता की वस्तुओं को मोल लेता है। दल के लिये प्राप्त की गई उनकी राजनीतिक सेवाओं को महत्व दिया जाता है, उनकी प्रशासन आदि की योग्यता को नहीं।

अविश्वास का प्रस्ताव—

साधारण रूप से मंत्रि-परिषद की पदावधि लोकसभा का नया चुनाव होने (पांच वर्ष) तक होती है। किन्तु लोक सभा द्वारा (१) मंत्रि-परिषद अथवा किसी एक मंत्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने से या (२) विधेयक उपस्थित होते समय किसी मंत्री के वेतन में कटौती का प्रस्ताव पास कर देने से, अथवा (३) मंत्रि-परिषद द्वारा उपस्थित किये गये किसी महत्वपूर्ण विधेयक के विरुद्ध मत देने से, या मंत्रि-परिषद द्वारा किसी गैर-सरकारी विधेयक का विरोध होने पर भी उसे स्वीकृत कर देना मंत्रि-परिषद के विरुद्ध लोकसभा का अविश्वास का प्रस्ताव समझा जायगा, जिसका परिणाम यह होगा कि मंत्रि-परिषद को तत्काल त्याग-पत्र देना पड़ेगा। किन्तु जब तक सदन के सत्तारूढ़ दल के कुछ सदस्य दल को छोड़कर विरोधियों के साथ नहीं बैठते और दल अल्पसंख्या में नहीं हो जाता तब तक ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की कोई सम्भावना नहीं होती।

व्यवस्थापिका—संसद्

संविधान के ७६ वें अनुच्छेद में लिखा है—

'संघ के लिये एक संसद् होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्य-परिषद् और लोक-सभा होंगे।"

ऊपरी सदन को राज्य-परिषद और निचले सदन को लोक-सभा कहते हैं। अन्तरिम काल में केवल एक ही सदन संसद का कार्य करता था। उसकी सदस्य संख्या ३२४ थी। संविधान के अनुसार राज्य-परिषद में अधिक से अधिक २५० और लोक-सभा में ५०० सदस्य हो सकते हैं। प्रस्तुत लोक-सभा में ४९८ सदस्य हैं। संसद के दोनों सदनों के प्रतिवर्ष कम से कम दो अधिवेशन होने आवश्यक हैं, तथा दोनों के बीच छ मास से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिये। ब्रिटिश संसद की बैठक के लिये प्रति वर्ष कम से कम एक बैठक का उपबन्ध है।*

कोई भी विधेयक तब तक विधि का रूप नहीं धारण कर सकता जब तक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत हो जाने के बाद उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर नहीं हो जाते। राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह संसद् द्वारा स्वीकृत हो जाने पर भी विधेयक को पुनर्विचार के लिये लौटा दे। वह दोनों सदनों में से जिसे चाहे विघटित करके नये चुनावों का आदेश दे सकता है। संसद के ऊपर राष्ट्रपति के इतने व्यापक अधिकार होने का स्वभावतः यह अर्थ लगाया जाता है कि उसकी शक्ति संसद से बड़ी है। बात वास्तव में ऐसी नहीं है। राष्ट्रपति द्वारा संशोधनों सहित किसी विधेयक को संसद के पास पुनः विचार करने के लिये भेजने पर संसद यदि दुबारा उन संशोधनों को स्वीकार न करे तो राष्ट्रपति को विधेयक पर हस्ताक्षर करना आवश्यक होता है। राष्ट्रपति द्वारा जारी किये गये किसी अध्यादेश पर संसद की स्वीकृति आवश्यक है। राज-कोष से राष्ट्रपति या उसके कर्मचारियों को तब तक वेतन नहीं मिल सकता जब तक संसद की स्वीकृति न प्राप्त हो जाय। इसलिये यह सहज ही कहा

---

* May: Parliamentary practice. Twelfth edition. P. 46

जा सकता है कि अधिकार रूपी खजाने की कुन्जी संसद के पास होती है। ब्रिटिश संसद के सम्बन्ध में तो यहां तक कहा गया है कि वह सब कुछ कर सकती है केवल स्त्री का पुरुष और पुरुष को स्त्री नहीं बना सकती।* यह लोकोक्ति चाहे हास्य जनक लगती हों, किन्तु यह सत्य है कि यह संसद के सर्वशक्तिमान होने की द्योतक है। १२२ वें अनुच्छेद के अनुसार न्यायालय को संसद की कार्यवाहियों की जांच करने का अधिकार नहीं है। जनता के हित के लिये वह प्रचलित कानून में जिस प्रकार का परिवर्तन चाहे कर सकती है अथवा नया कानून बना सकती है। सर्वोच्च सत्ता उसी में निहित है।†

प्रत्येक सत्र के आरंभ में राष्ट्रपति का भाषण होता है। संसद के किसी एक सदन को अथवा साथ समवेत दोनों सदनों को राष्ट्रपति सम्बोधित कर सकता है। उस दिन और कोई कार्यवाही सदन में नहीं होती। अगले दिन दोनों सदनों में पृथक-पृथक रूप से राष्ट्रपति के भाषण पर वाद-विवाद होता है। कभी कभी यह वाद-विवाद कई दिन तक चलता है। अन्त में राष्ट्रपति को धन्यवाद का प्रस्ताव स्वीकृत होकर आगे की कार्यवाही शुरू होती है। राष्ट्रपति के प्रस्ताव पर विश्वास का प्रस्ताव पास होने का यह अर्थ है कि संसद सरकार की नीति से सहमत है।

संसद के सदस्य के संबन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि वह सदन में जाकर अथवा उसके बाहर भी संसद के सदस्य के रूप में अपने निर्वाचन-क्षेत्र का ही प्रतिनिधि नहीं रह जाता है. बल्कि सारे देश का प्रतिनिधि हो जाता है, और देश की सामूहिक उन्नति में अन्य समासदों के साथ उसकी

---

*"Parliamant can do everything but make a woman a man and a man a woman."

—De Lolme.

† "That body is politically sovereign, or supreme in a State, whose will is ultimately obeyed by the citizens of that State."

—Prof. Dicy : Law of the Constitution.

संयुक्त जिम्मेदारी हो जाती है। वह जिम्मेदारी इतनी महत्वपूर्ण होती है कि कभी कभी उसे राष्ट्रीय हितों के लिये अपने क्षेत्र के हितों को बलिदान करना पड़ता है। यदि संसद् के सब सदस्य केवल अपने-अपने क्षेत्रों के प्रतिनिधि होने के नाते संसद् की कार्यवाहियों में भाग लेंगे तो लोकतन्त्रीय व्यवस्था चल न सकेगी। इसीलिये लास्की ने कहा था कि यह कहना गलत है कि संसद् वास्तविक रूप से जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है, क्योंकि जनता की भावनायें इतनी अस्त-व्यस्त और प्रायः परस्पर विरोधी होती हैं कि उनके आधार पर संसदीय व्यवस्था चल नहीं सकती।

सदस्यों का भत्ता—

संसद्-सदस्य को मासिक वेतन या भत्ते की व्यवस्था हमारे यहां संसद की स्थापना के समय से चालू है। ब्रिटेन में १३२३ से यह व्यवस्था लागू है। पहले-पहल जिस चुनाव-क्षेत्र से सदस्य चुनकर आता था उसी को अपने सदस्य का मासिक वेतन देना पड़ता था, किन्तु १८३० से राज्य कोष से उसका वेतन देने की व्यवस्था की गई।* भारतवर्ष में संविधान परिषद के सदस्यों को परिषदकी बैठक के दिनों में ४५ रुपये दैनिक भत्ता दिया जाता था। उसके पश्चात् संसद के सदस्यों को सदन की बैठक के दिनों ४० रुपया दैनिक भत्ता मिलने लगा, किन्तु संसद की संयुक्त समिति द्वारा, जिसकी स्थापना सदस्यों के वेतन का भुगतान अथवा दैनिक भत्ते के प्रश्न पर विचार करने के निमित्त हुई थी, की गई सिफारिश के अनुसार यह भत्ता ३५ रुपया दैनिक निश्चित किया गया।

सदस्यों के वेतन के भुगतान की वर्तमान पद्धति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। सम्प्रति सदस्यों को जो दैनिक भत्ता मिलता है उस पर भी कोई आयकर नहीं लगता। समिति ने यह भी सिफारिश की कि मोटर-भत्ते के रूप में सदस्यों को किया जाने वाला भुगतान उचित नहीं। उसने मकान भाड़े में कमी और निःशुल्क टेलीफोन का उपयोग भी अनुचित

* May: ibid, P, 22

ठहराया । समिति के साम्यवादी सदस्य श्री सुंदरैया और श्री ए० के० गोपालन ने उससे मतभेद प्रकट करते हुए अपनी यह सम्मति दी कि संसद के सदस्य को तीन सौ रुपये मासिक वेतन तथा दस रुपये दैनिक भत्ता मिलना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि यदि उनका सुझाव मान लिया जाता तो सरकार को प्रति वर्ष १० लाख ७ हजार रुपये की बचत होती ।

उत्तर प्रदेशीय विधान परिषद के ७२ वर्षीय सदस्य चौधरी तुलसी राय ने अपने मासिक वेतन में कटौती करके स्वेच्छा पूर्वक २०० रुपये के स्थान पर ७५ रुपया लेना स्वीकार किया । यह अन्य सभासदों के लिये भी अनुकरणीय है ।

अभी तक लोकसभा के सदस्यों को ही पार्लियामेंट का सदस्य कहा जाता था, किन्तु समिति की सिफारिश पर दोनों सदनों के सदस्यों को पार्लियामेंट का सदस्य (एम० पी०) कहा जाना स्वीकार किया गया ।

राज्य-परिषद्*

राज्य-परिषद विभिन्न 'राज्यों के सघ' का परिचायक है। इसमें २५० सदस्य होते हैं। राज्यों की जन सख्या के आधर पर इसमें प्रतिनिधित्व होता है। २३८ सदस्य अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा और १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होकर राज्य-परिषद में आते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव राज्यानुसार निम्न प्रकार से किया गया है :—

(क) उत्तर-प्रदेश—३१, मद्रासय२७, बिहार—२१, बम्बई—१९, पश्चिमी बंगाल—१५, मध्य-प्रदेश—१२, उड़ीसा—६, पूर्वी पंजाब—८ औरआसाम—६,

---

*संविधान के अधीन उचित समय में राज्य परिषद् की रचना करने के प्रयोजनार्थ, राष्ट्रपति—

(क) सिवाय जम्मू तथा काशमीर राज्य के संविधान के अधीन प्रथम प्रथम विरचित भाग क राज्यों तथा भाग ख राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के नाम धारा ६७ के अधीन अधिसूचित हो चुकने के बाद, भारत के गजट में एक अधिसूचन द्वारा, इस ऐक्ट के तथा उसके अधीन बनाये नियमों तथा आदेशों के उपबन्धों के अनुसरण में सदस्य निर्वाचित करने के लिये एक ऐसी तारीख से पहले जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा इस निमित्त नियत की जाये, तथा ऐसे अधिसूचन में उल्लिखित होगी, ऐसी हर एक सभा के निर्वाचित सदस्यों को आमन्त्रित करेगा; और

(ख) जनता का प्रतिनिधित्व ऐक्ट, १९५० (१९५० का ४३) के भाग ४ अ के अधीन प्रथम विरचित अनुसूचित भाग ग राज्यों के लिये निर्वाचक मण्डलों के सदस्यों के नाम धारा ६७ के अधीन अधिसूचित हो चुकने के बाद एक अन्य अधिसूचन द्वारा इस ऐक्ट के तथा उसके अधीन बनाये नियमों तथा आदेशों के उपबन्धों के अनुसरण में, एक सदस्यों को निर्वाचित करने के लिये ऐसी तारीख से पहले जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा इस निमित्त नियत की जाय, और ऐसे अधिसूचन में उल्लिखित होगी, प्रत्येक भाग ग राज्य या ऐसे सम्बंधित राज्यों के समूह के लिये निर्वाचक मण्डल के सदस्यों को आमन्त्रित करेगा। (लोक प्रतिनिधित्व कानून, नियम १२)

(ख) हैदराबाद–११, राजस्थान–६, ट्रावणकोर कोचीन–६, मैसूर—६, मध्य-भारत–६, जम्मूकाश्मीर–४ और पटियाला तथा पूर्वी पंजाब रियासती संघ–३; (ग) विंध्य प्रदेश—४, अजमेर और कुर्ग—१, भोपाल—१, बिलासपुर और हिमाचल प्रदेश—१, दिल्ली—१, कच्छ—१, मनीपुर-त्रिपुरा—१

(क) और (ख) राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव विधान सभाओं के द्वारा अनुपातिक-प्रतिनिधित्व पद्धति के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। (ग) राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव उन राज्यों में स्थापित निर्वाचक-मण्डलों या विधान सभाओं द्वारा होता है। उनमें निर्वाचक मण्डल के सदस्यों की संख्या निम्न प्रकार निश्चित की गई है :—

विंध्य प्रदेश—६०, हिमाचल प्रदेश ४२, अजमेर—३०, भोपाल—३०, कच्छ—३०, मनीपुर—३० और त्रिपुरा—३०। चूंकि मनीपुर और त्रिपुरा से मिलाकर केवल एक प्रतिनिधि राज्य-परिषद में जाता है इसलिये उन राज्यों के निर्वाचक मण्डल बारी-बारी से प्रतिनिधि का चुनाव करेंगे। इनमें से जिन राज्यों में (जैसे, हिमाचल-प्रदेश, विंध्य-प्रदेश, भोपाल और अजमेर) विधान सभायें स्थापित हो गई हैं उनमें निर्वाचक मण्डल समाप्त हो गये हैं।

अमेरिका में भी सिनेट के सदस्यों और दक्षिण अफ्रीका में ऊपरी सदन का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति से होता है।

राष्ट्रपति द्वारा राज्य-परिषद के मनोनीत सदस्यों के सम्बन्ध में लिखा है कि—

> **"राष्ट्रपति द्वारा नाम—निर्देशित किये जाने वाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें निम्न प्रकार के विषयों के बारे में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है, अर्थात्**
>
> साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक-सेवा।"*

ब्रिटेन, अमेरिका, अफ्रीका या अन्य देशों में ऊपरी सदन की सदस्यता के लिये योग्यता के जो नियम प्रचलित हैं उनसे भिन्न हमारे यहां राज्य-परिषद की सदस्यता के नियम हैं। उन देशों में अधिक सम्पत्ति वाला अथवा उच्च कुलीन व्यक्ति ही ऊपरी सदन का सदस्य हो सकता है, जब

---

*अनु० ८० (३)

कि भारतवर्ष में कोई भी नागरिक जिसकी अवस्था ३० वर्ष की है, तथा वह पागल, दिवालिया या सरकारी लाभ के पद पर नहीं है और संसद द्वारा निश्चत की गई शर्तों का पालन करता है राज्य-परिषद की सदस्यता के लिये उम्मेदवार हो सकता है। तत्सम्बन्धी कानून निम्नप्रकार है—

लोक प्रतिनिधित्व कानून, नियम ३

कोई व्यक्ति (जम्मू तथा कशमीर राज्य के सिवाय) किसी भी भाग (क) याभाग (ख) राज्य के प्रतिनिधि के रूप में जब तक कि वह उस राज्य में एक सांसद निर्वाचन क्षेत्र के लिये निर्वाचक नहीं हो, निर्वाचित होने योग्य नहीं होगा।

(२) एक व्यक्ति राज्य-परिषद् में अजमेर तथा कुर्ग के अथवा मनीपुर तथा त्रिपुरा के राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में जब तक कि वह उस राज्य में जिस में कि ऐसे प्रतिनिधि का निर्वाचन होने वाला हो, किस सांसद निर्वाचन क्षेत्र के लिये निर्वाचक न हो, निर्वाचित होने के लिये योग्य नहीं होगा।

(३) सिवाय जैसा कि उपधारा (२) में अन्यथा निवेशित किया गया है, कोई व्यक्ति राज्य परिषद् में किसी भाग ग राज्य या ऐसे राज्यों के समूह के प्रतिनिधि के रूप में जब तक कि वह उस राज्य में अथवा स्थिति अनुसार उस समूहगत किसी राज्य में किसी सांसद निर्वाचन क्षेत्र के लिये निर्वाचक न हो, निर्वाचित होने के लिये योग्य नहीं होगा।

राज्य-परिषद एक स्थायी संस्था है। दो वर्ष बाद उसके एक तिहाई सदस्य अपना स्थान रिक्त कर देंगे और उनके स्थान पर नये सदस्य आ जायेंगे। इस प्रकार प्रथम एक तिहाई सदस्यों को छोड़ कर बाकी सदस्यों की पदावधि क्रमशः चार और छ वर्ष होगी।

२६ नवम्बर १९५२ को संसद के ५० सदस्यों के सम्मुख चुनाव कमिश्नर श्री सुकुमार सेन ने पर्चियों (लाटरी) के द्वारा राज्य-परिषद के वर्तमान सदस्यों का कार्य-काल निश्चित किया। उसकी जो सूचना प्रकाशित हुई। के अनुसार श्री गोपाल स्वामी आयंगर का कार्य-काल १९५६ में और

कारखाना व पूर्तिमंत्री सरदार स्वर्णसिंह का कार्य-काल १९५८ में पूरा होगा। सर्व श्री सी. सी. विश्वास, लाल बहादुर शास्त्री और के. सी. रेड्डी १९५४ में अवकाश ग्रहण करेंगे। उपमंत्रियों में योजना मंत्री श्री पी० सुन्दरैया, भूपेश गुप्ता, प्रोफेसर एन० जी० रंगा और एच० डी० राजा का १९५४ में तथा सर्वश्री विकलकुमार घोष और पंडित एच० एन० कुंजरू १९५६ में अवकाश ग्रहण करेंगे तथा श्री सी. जी. के. रेड्डी और प्रिंसिपल देवी प्रसाद घोष १९५४ में।

जिन सदस्यों का कार्यकाल समाप्त हो जायगा वे चुनाव में फिर खड़े हो सकेंगे।

१९५४ में उत्तरप्रदेश के ये सदस्य अवकाश ग्रहण करेंगे—सर्वश्री अहमद सईद खां, अमरनाथ अग्रवाल, अमोलकचन्द, बी० बी० शर्मा, गोपीनाथ सिंह, लाल बहादुर शास्त्री, मौलाना मुहम्मद फारूकी, आचार्य नरेन्द्रदेव, आर० सी० गुप्ता, और श्री सुमत प्रसाद। १९५६ में उत्तरप्रदेश के ये सदस्य अवकाश ग्रहण करेंगे—श्रीमती चन्द्रवती लखनपाल, डाक्टर एच. एन. कुंजरू, सर्वश्री अख्तर हुसेन, एच. ओ. सक्सेना, जे. एस. बिष्ट, जसपतराय कपूर, बेगम एजाज रसूल, डाक्टर मुरारीलाल, श्रीमती सावित्री देवी निगम, श्री रामकृपाल सिंह और श्री रामप्रसाद टमटा।

१९५८ में उत्तर प्रदेश के इन सदस्यों का कार्यकाल समाप्त होगा—सर्वश्री ए. धरमदास, इन्द्र विद्यावाचस्पति, पी० अग्रवाल, बी. के. मुकर्जी, एन. एम. चौहान, श्यामधर मिश्र, तारकेश्वर पांडे ठाकुरदास, पण्डित श्यामसुन्दर नारायण तनखा और डाक्टर पी. श्रीवास्तव।

राज्य परिषद् के सदस्यों के कार्यकाल के सम्बन्ध में तीनों श्रेणियों की दलगत सूची जिसमें यह दिखाया गया है कि किस दल के कितने सदस्यों का कार्यकाल किस वर्ष पूरा होगा इस प्रकार है :—

दल	१९५४	१९५६	१९५८
कांग्रेस	४६	५२	४७
कम्युनिस्ट और साथीदल	६	४	६
अकाली	१	०	०
जनसंघ	०	०	१
मुस्लिम लीग	१	०	०
जनता	१	०	०

प्रजा समाजवादी	३	३	४	झारखण्ड	०	०	१
कृषक लोक	२	१	२	स्वतंत्र सदस्य	४	६	३
परिगणित जाति संघ	०	१	१	मनोनीत सदस्य	४	४	४
जनतंत्र परिषद	१	०	१		—	—	—
हिन्दू महासभा	०	०	१	योग	७५	७१	७१

चूंकि उपराष्ट्रपति राज्य-परिषद का पदेन सभापति होता है इसलिए राज्य-परिषद की बैठकों का सभापतित्व वही करता है। राज्य-परिषद के प्रति उसके वही अधिकार और कर्त्तव्य होते हैं जो लोकसभा के अध्यक्ष के होते हैं। सभापति की अनुपस्थिति में कार्य सम्पादित करने के लिये उपसभापति का चुनाव होता है। राज्य-परिषद के उप-सभापति के भी वही अधिकार होते हैं जो लोक-सभा के उपाध्यक्ष के होते हैं। राज्य-परिषद की २४ नवम्बर १९५२ की बैठक में डाक्टर सर्वपल्लि राधाकृष्ण के यूरोप भ्रमण के लिये चले जाने से सभापति की आसन उपसभापति श्रीकृष्णमूर्ति राव ने ग्रहण किया। उस दिन दो मन्त्रियों और चार सदस्यों ने राज्य-परिषद की सदस्यता की शपथ ग्रहण की। सभापति (उपराष्ट्रपति) को साधारण रूप से राज्य-परिषद की बैठक में मत-दान अधिकार नहीं होता। किसी विषय पर पक्ष और विपक्ष में बराबर मत होने की अवस्था में वह अपना निर्णायक मत दे सकता है। यदि किसी समय सभापति तथा उप-सभापति दोनों ही अनुपस्थित हैं तो राज्यपरिषद तात्कालिक कार्यवाही के लिये अपने में से एक व्यक्ति को कार्यवाहक सभा-पति चुन सकती है।

लोकसभा में सदन का नेता प्रधान-मंत्री होता है। किन्तु राज्य-परिषद में मंत्रिमण्डल का कोई भी सदस्य सदन का नेता चुना जा सकता है। यद्यपि प्रधान-मंत्री को राज्य परिषद भी सदन का नेता चुन सकती है, तथापि दोनों सदनों की एक ही दिन पृथक-पृथक कार्यवाही होने से उसे एक साथ दोनों जगह रहना संभव नहीं होता इस लिये इस परम्परा को गलत समझा जाता है। इस समय श्री गोपालस्वामी आयंगर, राज्य-परिषद में सदन के नेता हैं, और श्री सी. सी. विस्वास उप-नेता। नवम्बर १९५२ में श्री आयंगर के अस्वस्थ होने के कारण विश्वास ने उनका आसन ग्रहण किया।

ब्रिटेन की लार्ड सभा में पहले बैरन्स, लार्ड्स, बिशप्स, ऐबट्स, शायर के नाइट, पैरिश और चैरटरों के क्लर्जी और प्रतिनिधि, नगरों के प्रतिनिधि और बर्जेस क्लर्जी को बैठने का अधिकार प्राप्त था। १३३७ मे ड्यूक पद का निर्माण हुआ। यह पदवी बहुत कम दी जाती है और समस्त इंगलैण्ड में ३० से अधिक ड्यूक नहीं है। सभी लार्ड सभा के सदस्य नहीं होते, बल्कि निश्चित वर्ग के लोग ही हो सकते है। इंगलिश लार्डों को सभा में बैठने का अधिकार है, स्काटिश लार्ड अपने में से २६ प्रतिनिधि चुनकर भेजते है और आयरलैण्ड वाले २८। यह सभा घटती बढ़ती रहती है। इस समय इसकी सदस्य संख्या ७५० है। लार्ड बनाये जाने का कोई विशेष नियम नहीं है। राजा जिस व्यक्ति को जब चाहे तब और जितने समय के लिए चाहे लार्ड बना सकता है। स्त्रियों को इस पद सद से सम्मानित नहीं किया जाता। पहले लार्ड सभा को बहुत अधिकार प्राप्त थे, और लोक सभा को अत्यल्प। धीरे-धीरे उसमें कमी होने लगी। १८३२ के पूर्व दोनों में काफी मेल-जोल रहता था। किन्तु धीरे-धीरे लोकसभा के अधिकार बढ़ने लगे। १६८०, १८७१ तथा १८८० में लार्ड सभा ने तीन विधेयकों को अस्वीकार किया, किन्तु लोकसभा द्वारा उनके स्वीकृत हो जाने से वे कानून बन हो गये। इस प्रकार लार्ड सभा की शक्ति का निरन्तर ह्रास होता गया। लोक सभा ने १६११ के कानून के द्वारा लार्ड सभा के अधिकारों को नियंत्रित कर दिया। किन्तु जैसा कि हेराल्ड लास्की कहते हैं इस कानून के द्वारा लार्ड सभा के अधिकारों के नियंत्रित हो जाने पर भी उसका प्रभाव काफी है।*

---

* It is true that the Parliament Act has reduced the House of Lords to a difinitely subordinate position in the State. It can no longer touch finance; and on all other matters, so long as the Government of the day retains its majority, and with it, the will to go on with any legislation to which the Lords take objection, it can only attempt revision or delay. But this is in fact, a much greater power than appears on the surface for social reasons."

Laski, *Parliamentary Government in England* pp. 114–15.

प्रो० लास्की आगे लिखते हैं कि इसका कार्य परामर्श देना, प्रोत्साहित करना और सावधान करना होगा।†

जहां तक अमेरिकन सिनेट का प्रश्न है उसके निर्माण के सम्बन्ध में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। अमेरिकन संविधान के सत्रहवें संशोधन में (जो सन् १९१३ में किया गया था) लिखा है—"संयुक्त राज्य की सिनेट का निर्माण प्रत्येक राज्य के दो प्रतिनिधियों से होगा जो जनता द्वारा छः वर्ष के लिये चुने जायंगे। सिनेट के प्रत्येक सदस्य का एक मत होगा। प्रत्येक राज्य के मतदाताओं के लिये वही योग्यतायें आवश्यक होंगी जो उस राज्य के बहुसख्यक सदन के मतदाताओं के लिये आवश्यक हों।...सिनेट में किसी राज्य के प्रतिनिधित्व में स्थान रिक्त होने पर उस राज्य की कार्य-पालिका रिक्त स्थानों को भरने के लिये निर्वाचन के आलेख जारी करेगी। उस राज्य का विधान-मण्डल यदि चाहे तो कार्यपालिका को उस समय तक के लिये स्थानापन्न नियुक्तियों का अधिकार दे सकता है, जब तक विधान मडल के निर्देशानुसार जनता निर्वाचन द्वारा रिक्त स्थानों को न भरे।" सिनेटका कार्य-काल छः वर्षका होता है। प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर एक तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु संविधान में ऐसा कुछ नहीं है कि एक व्यक्ति कितनी बार सिनेट में चुना जाय। सिनेट का सदस्य होने के लिये तीस वर्ष का कोई भी व्यक्ति, जो ९ वर्ष से संयुक्त राज्य का नागरिक है तथा उस राज्य का भी, जिससे वह चुना जायगा, सिनेट का सदस्य बन सकता है। हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिवस के सदस्य की भांत सिनेट का सदस्य अपने कार्य काल में किसी सरकारी पद पर नहीं रह सकता। उन्हें १५ हजार डालर मासिक वेतन मिलता है। सिनेट राष्ट्रपति पर वह महाभियोग लगा सकती है।

† It would be able to adopt a classic formula, to advise and encourage and warn"

Laski, ibid, p. 124.

जिन देशों में दो सदनों की संवैधानिक व्यवस्था है इस बात पर काफी विवाद चल रहा है कि ऊपरी सदन रखा जाय अथवा नहीं। इसके समर्थकों का मुख्य रूप से यह तर्क है कि लोकसभा द्वारा जल्दबाजी में किये गये निर्णय पर रोक लगाने के लिए यह एक सुन्दर उपकरण है। किसी भी विधेयक, प्रस्ताव या अन्य महत्वपूर्ण विषय पर भावावेश में कोई निर्णय न हो इसके लिये उसे दूसरे सदन में भेजना अपेक्षित है। किन्तु इसके विपरीत यह भी कहा जाता है कि ऊपरी सदन तो रूढ़िवादी और अनुदार दल के समर्थकों की देन है और कथित भावावेश पर अंकुश लगाने का यह उनका एक बहाना मात्र है, तथा उनका वास्तविक उद्देश्य लोक सभा के प्रगतिशील कार्यों में रुकावट पैदा करना है। २१ जुलाई को मैसूर विधान परिषद में वहाँ के मुख्य मंत्री ने यह स्वीकार किया कि विधान परिषद का महत्व सलाह देने से अधिक कुछ नहीं है। निसन्देह आज के युग में अप्रजातंत्रीय संस्थाओं का अधिक समय तक अस्तित्व कायम नहीं रह सकता यदि वे लोकतंत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने को नहीं परिवर्तित कर लेते।* हमारे देश के वामपक्षीय विचारक भी राज्य-परिषद को अनावश्यक समझते हैं।

भारतीय संविधान में राज्य-परिषद को तो समाप्त नहीं किया जा सकता किन्तु अनुच्छेद १६६ के अनुसार राज्यों की विधान-परिषदों का विघटन किया जा सकता है। २७ नवम्बर १९५२ को पंजाब की विधान सभा के सम्मुख सरदार निधान सिंह ने इस आशय का एक असरकारी प्रस्ताव रखा कि पंजाब की विधान परिषद समाप्त कर दी जाय। प्रस्ताव का समर्थन करनेवालों ने यह तर्क उपस्थित किया कि राज्य-परिषद एक प्रकार का श्वेत हाथी है जिसका कार्य केवल विधान सभा के निश्चयों पर मुहर लगाना है। कांग्रेस दल के मुख्य सचेतक श्री प्रबोधचन्द्र ने इस पर वाद-विवाद न होने देने के लिए आपत्ति उठाई और कहा कि संविधान के अनुसार विधान परिषद के उत्सादन के लिए विधानसभा की समस्त संख्या के बहुमत और उपस्थित और मत-दान में भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या के दो-तिहाई

---

* Laski, ilid P. 136

से अधिक बहुमत से बहस हो सकती है, और चूंकि इस समय आधे सदस्य ही उपस्थित हैं, इसलिए यह प्रस्ताव अनियमित करार दिया जाय। श्री भीमसेन सच्चर, मुख्य मन्त्री, के जोर देनेपर प्रस्ताव रखा गया। काफी वाद-विवाद के पश्चात् मत-दान होने पर प्रस्ताव गिर गया। हो सकता है कि पूर्वी पंजाब की भांति अन्य राज्यों में भी इस आशय के प्रस्ताव रखे जायँ और इसी प्रकार उनमें भी बहुसंख्यक दल उसे अस्वीकृत कर दे। विधान परिषद या राज्य-परिषद के सम्बन्ध में यह कहना कि वह विधान-सभा अथवा लोकसभा द्वारा किये गये निर्णयों में संशोधन करती है सर्वथा काल्पनिक बात है। जब विधान सभाओं से चुन कर, अथवा राज्य पाल द्वारा नामजद सदस्य वहां जाते हैं (और विधान सभाओं में सर्वत्र कांग्रेस दल का ही स्पष्ट बहुमत है) उनका अनुपात वहां भी लगभग वही रहता है जो राज्यों में होता है तब अपने स्वल्प अधिकारों के होते हुए वे कोई संशोधन कैसे कर सकते हैं।

१२ मई १९५२ को मद्रास विधान सभा में भी इसी आशय का एक प्रस्ताव लाने की सूचना विरोधी दल के नेता श्री टी. विश्वनाथन ने दी थी किन्तु समयाभाव के कारण उस पर विचार न हो सका।

१९३५ के विधान में भी लिखा था कि उपरी सदन का निर्माण परीक्षा के लिये केवल दस वर्ष के लिये किया जाता है। स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुसार राज्य-परिषद का जो स्वरुप है वह अन्य देशों के ऊपरी सदन से भिन्न तो है,* और यह कहना भी अनुपयुक्त होगा कि स्थिर स्वार्थ वाले वर्ग को प्रतिनिधित्व देने के निमित्त अथवा किसी अप्रगतिशील नीति का प्रतिपादन करने के लिये ऊपरी सदन का निर्माण हुआ है; तथापि यह भी स्वीकार करना होगा कि लोकसभा के होते हुए राज्य परिषद का अस्तित्व 'अजा गलस्तनस्य'—अर्थात् बकरी के गले में लटकने वाले मांस—के समान बिल्कुल व्यर्थ है। राज्य-परिषद को लोक सभा की अपेक्षा

---

*"The House of Lords ts only a revising and delaying body and not very effective even for that purpose."

—Ramsay Muir.

अत्यल्प अधिकार प्राप्त हैं, यह बात हमारे संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। अगस्त १९५२ में राज्य-परिषद् की बैठक में इसका स्पष्टीकरण हुआ। ६ अगस्त १९५२ को राज्य-परिषद में जांच कमीशन बिल की इस आशय की धारा को लेकर कि यद्यपि सरकार खुद इच्छा होने पर कमीशन नियुक्त कर सकती है पर लोकसभा के कोई प्रस्ताव स्वीकृत कर मांग करने पर उसे ऐसा करना ही चाहिये, गरमागरम और जोरदार बहस हुई। परिषद के सभी पक्षों और दलों के सदस्यों ने उपर्युक्त धारा को गम्भीरता पूर्वक देखा और यह मांग की कि या तो संसद् की दोनों सभाओं में से किसी एक के प्रस्ताव स्वीकार करने पर सरकार के लिए कमीशन नियुक्त करना अनिवार्य हो जाय अथवा संसद् की दोनों सभाओं के प्रस्ताव स्वीकार करने पर सरकार ऐसा करने को मजबूर हो। यदि उसका कार्य प्रायः लोकसभा के कार्यों और निर्णयों पर मुहर लगाना मात्र है तब उस पर व्यय होने वाली शक्ति, समय और धनका उपयोग सार्थक नहीं प्रतीत होता। कानून मंत्री श्री चारुचन्द्र विश्वास ने कहा कि अब भी परिषद् इस प्रकार का प्रस्ताव पास कर सकती है। सरकार ऐसे किसी प्रस्ताव पर सावधानी के साथ विचार करने को मजबूर है प उक्त प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए वह मजबूर नहीं है। पर लोकसभा का ऐसा कोई कोई प्रस्ताव सरकार के लिए बाध्यकर हो जाता है।

श्री विश्वास ने आगे यह बात स्पष्ट की कि विधान की इस व्यवस्था को देखते हुए कि मंत्रिमंडल केवल लोकसभा के प्रति जिम्मेदार है, परिषद् को भी ये ही अधिकार नहीं दिये जा सकते। जहाँ तक लोक सभा द्वारा जल्दबाजी में कोई निर्णय करने का भय है वह निरर्थक प्रतीत होता है, और यदि वह सही भी है तो उसे दूर करने के उपाय हो सकते हैं।

हमारे यहां जिन राज्यों में केवल एक ही सदन है वहां इस प्रकार की कोई शिकायत अभी तक नहीं हुई। संविधान-निर्माताओं को इस पर विचार करना चाहिये।

लोकसभा

संसद का निचला सदन लोकसभा कहलाता है। इसकी सदस्य-संख्या राज्य-परिषद से दुगुनी होती है। प्रस्तुत लोकसभा में ४६८ सदस्य हैं जो समस्त भारत की जनता के प्रतिनिधि हैं। भारतीय लोकसभा का संगठन लगभग ब्रिटिश लोकसभा के अनुरूप किया गया है। देश को पांच लाख से साढ़े सात लाख तक जन-संख्या के बीच निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित करके एकल संक्रमणीय मत पद्धति के आधार पर * वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव किया जाता है। प्रत्येक भारतीय नागरिक को, जिसकी आयु कम से कम २१ वर्ष है, और जो पागल, दिवालिया या नैतिक अपराध में दण्ड पाने के कारण मतदान के अधिकारों से वंचित नहीं कर दिया गया है, सदस्यों के निर्वाचन में भाग ले सकता है। एक निर्वाचन-क्षेत्र का व्यक्ति दूसरे निर्वाचन क्षेत्र में मत-दान नहीं कर सकता। यदि वह दूसरे निर्वाचन-क्षेत्र में मत-दान करना चाहता है तो उसे वहां चुनाव के दिन से पूर्व कम-से-कम १८० दिन निवास करना आवश्यक है और तत्सम्बन्धी प्रमाण-पत्र उपस्थित करना आवश्यक है, जन-प्रतिनिधित्व विधि के अनुसार जन-संख्या के आधार पर लोकसभा के सदस्यों का राज्यानुसार निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया है:

राज्यों के नाम	सदस्य संख्या	राज्यों के नाम	सदस्य संख्या
आसाम	१२	हैदराबाद	२५
बिहार	५५	जम्मू-काश्मीर	६
बम्बई	४५	मध्य भारत	११

* इसे 'हेयर निर्वाचन पद्धति' भी कहते हैं क्योंकि सन् १८५८ में टामस हेयर नामक एक अंग्रेज विचारक ने [illegible] कराया था।

राज्यों के नाम	सदन संख्या	राज्यों के नाम	सदन संख्या
मध्यप्रदेश	२९	मैसूर	११
मद्रास	७५	पटियाला तथा पूर्वी पंजाब रियासती संघ	५
उड़ीसा	२०		
पंजाब	१८	राजस्थान	२०
उत्तर प्रदेश	८६	सौराष्ट्र	६
पश्चिमी बंगाल	३४	त्रावणकोर-कोचीन	१२
अजमेर	२	कच्छ	२
भोपाल	२	मनीपुर	२
विलासपुर	१	त्रिपुरा	२
कुर्ग	१	विंध्य प्रदेश	६
दिल्ली	४	अण्डमान तथा निकोबार	१
हिमाचल प्रदेश	३		

सर्वयोग—४९८ (अध्यक्ष को छोड़कर)

[illegible]

मनोनीत होते हैं।

संविधान में लोकसभा की रचना* के प्रसंग में यह बतलाया गया है

* अनु० ८१-८२

कि लोकसभा में अधिक से अधिक ५०० सदस्य होंगे। उनका चुनाव करने के लिये जो निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये हैं वे कम से कम पांच लाख और अधिक से अधिक साढ़े सात लाख जन-संख्या पर एक व्यक्ति चुनने की व्यवस्था की गई है। १५ दिसम्बर को अनुच्छेद के इस उपखंड में संशोधित कर दिया गया है।*

---

* नयी गणना के अनुपात से लोकसभा के सदस्यों की संख्या निश्चित करने के लिये भारत सरकार के कानून मंत्री श्री सी. सी. विश्वास ने ११ नवम्बर १९५२ को संविधान में संशोधन करने के लिये एक विधेयक रखा जिसे प्रवर समिति के सुपुर्द कर दिया गया। इस विधेयक के अनुसार संविधान के अनुच्छेद ८१ (क) (ख) में संशोधन करके लोकसभा का सदस्य चुनने के लिये साढ़े छ लाख से साढ़े आठ लाख तक की जन-संख्या के चुनाव-क्षेत्रों का निर्माण किया गया है। विधेयक को प्रस्तुत करने की आवश्यकता बतलाते हुए कहा गया है कि वर्तमान लोकसभा के सदस्यों की संख्या ५०० होने के कारण संविधान में और सदस्यों के बढ़ने की संभावना नहीं है। लोकसभा में जब इस पर वाद-विवाद हुआ तब कई सदस्यों ने यह सुझाव दिया कि प्रवर समिति से यह भी राय ली जाय कि क्या लोकसभा के सदस्यों की संख्या बढ़ाना इस समय उचित होगा। कानून मंत्री श्री विश्वास ने कहा कि लोकसभा के सदस्यों की संख्या में कोई परिवर्तन न होगा।

कई प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्री विश्वास ने बताया कि राज्यों के प्रतिनिधित्वों में अवश्य कुछ परिवर्तन होगा। जैसे (ग) राज्यों को उनकी धारासभायें न होने के कारण अधिक प्रतिनिधित्व दे दिया गया था, अब चूंकि उनके यहां स्वयं विधान सभायें निर्मित हो चुकी हैं, इसलिये उनको अधिक प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता नहीं है।

श्री एच० वी० पटास्कर (कांग्रेस) ने कहा कि लोकसभा में प्रतिनिधित्व राज्यों के आधार पर नहीं नागरिकों की संख्या के आधार पर दिया गया था। इसलिये जब तक कि जन-संख्या के आधार पर परिवर्तन की आवश्यकता ही महसूस न हो तब तक परिवर्तन न किया जाय।

श्री अरुणचन्द्र गुहा (कांग्रेस पश्चिमी बंगाल) ने कहा कि इन निर्वाचन क्षेत्रों की सीमा बढ़ाने में अधिक कठिनाई होगी और इससे गरीब और मध्यम वर्गी सदस्यों की कठिनाईयां और बढ़ जायंगी। इससे उन्होंने बिल का वरोध किया।

वयस्क मताधिकार*के आधार पर निर्वाचन की व्यवस्था करके संविधान-निर्माताओं ने भारत के राजनीतिक इतिहास में एक क्रान्तिकारी कार्य किया है। भारत का प्रत्येक वयस्क स्त्री और पुरुष बिना धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर राष्ट्रीय सरकार के निर्माण में अपना योग दे सकता है।

विधेयक पर काफी वाद विवाद हुआ, किन्तु जब वह अपनी सभी मंजिलों को को पार कर तीसरे वाचन के लिये मत-दान के लिये सदन में रखा गया तो भारी बहुमत (३५१ मत पक्ष में और ३३ विपक्ष में) से स्वीकृत हो गया।

* (१) सिवाय किसी भी ऐसे व्यक्ति के जो किसी निर्वाचन क्षेत्र की निर्वाचक नामावली में उस समय पर दर्ज नहीं है, जैसा कि इस ऐक्ट द्वारा स्पष्ट रूप में निवेशित्त है, ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो कि किसी निर्वाचन क्षेत्र की निर्वाचक नामावली में उस समय पर दर्ज है, उस निर्वाचन क्षेत्र में मत डालने के लिये हकदार होगा।

(२) ऐसा कोई भी व्यक्ति किसी निर्वाचन क्षेत्र में निर्वाचन पर मत नहीं देगा, यदि वह जनता का प्रतिनिधित्व ऐक्ट, १९५० (१९५० का ४३) की धारा १६ में निर्दिष्ट किसी भी अयोग्यता का विषय भूत बन गया होगा।

(३) कोई भी व्यक्ति सामान्य निर्वाचन पर समान वर्ग के एक निर्वाचन क्षेत्र से अधिकों में मत नहीं देगा, तथा यदि कोई व्यक्ति ऐसे निर्वाचत क्षेत्र में एक से अधिक में मत देता है, तब ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों में उस का मत रद्द हो जायगा।

(४) कोई व्यक्ति किसी निर्वाचन पर एक ही निर्वाचन क्षेत्र में एक से अधिक मत नहीं देगा, यद्यपि उसका नाम उस निर्वाचन क्षेत्र के लिये निर्वाचक नामावली में एक से अधिक वार दर्ज क्यों न हो चुका हो, और यदि वह यों मत देता है, तब उस निर्वाचन क्षेत्र में उस के सब मत रद्द हो जायेंगे।

(५) कोई भी व्यक्ति किसी निर्वाचन पर यदि वह जेल में बन्द हो, फिर चाहे वह जेल भोगने की सजा के अधीन या निर्वास की सजा के अधीन अथवा अन्यथा अधीन हो, अथवा वह पुलिस की वैध हिरासत के अधीन हो, मत नहीं देगा :

परन्तु बन्धान यह है कि इस उपधारा में ऐसी कोई चीज नहीं जो, उस समय पर प्रवृत्त किसी विधि के अधीन निवारक निरोध के विषय भूत हुए, किसी व्यक्ति पर लागू होगी।

लोक-प्रतिनिधित्व कानून—नियम ६२

केवल परिगणित और अनुसूचित जातियों के लिये दस वर्ष के लिये संरक्षित स्थानों का हमारे संविधान में उपबन्ध किया गया है। संविधान में दस वर्ष के लिये यह भी उपबन्ध है कि यदि आंग्ल-भारतीय जातिको लोकसभामें प्रतिनिधित्व न प्राप्त हो सके तो राष्ट्रपति कोउस जाति के दो प्रतिनिधि मनोनीत करने का अधिकार है। सम्पत्ति, पद या जाति के आधार पर प्रतिनिधित्व स्वीकार नहीं किया गया है।

लोक-सभा की अवधि, यदि उसे बीच में ही भंग न कर दिया जाय तो, पांच वर्ष की होती है। उसके बाद वह स्वतः भंग हो जाती है और नया चुनाव कर लिया जाता है। संकट काल की स्थिति होने पर राष्ट्रपति इस अवधि को और बढ़ा सकता है, किन्तु किसी भी अवस्था में यह कालावधि पुनः छः मास से अधिक नहीं बढ़ायी जा सकती।

अध्यक्ष*—

लोकसभा के अध्यक्ष को अंग्रेजी में 'स्पीकर' कहते हैं जिसका अर्थ 'वक्ता' होता है। मध्यकालीन ब्रिटेन में, जब कि लोकसभा एक शक्ति रहित और केवल वाद-विवाद करने वाली संस्था थी, उसके सभासद अपने एक प्रतिनिधि के द्वारा राजा तक अपनी आवाज पहुंचाया करते थे। वह प्रतिनिधि 'स्पीकर' कहलाता था। कालान्तर में लोकसभा और स्पीकर के समस्त अधिकार और कर्त्तव्य बदल गये। अठारहवीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध से उसने नया स्वरूप धारण किया। किन्तु रूढ़िवादी नाम का अभी तक प्रयोग होता है। ब्रिटिश सरकार ने जब भारत में संवैधानिक सुधार किये और व्यवस्थापिकाओं का निर्माण किया तो उसके अध्यक्ष को यहां भी 'स्पीकर' संज्ञा प्रदान की गई। वास्तव में उसका स्थान

*"His voice great, his carriage majestical, his nature haughty, and his purse plentiful."

–Mr. Speaker Yelverton: describing the qualities essential for a Speaker. 1597.

पहले न्यूनाधिक मात्रा में वही था जो मध्यकालीन ब्रिटेन की लोकसभा के 'स्पीकर' का था। स्वतन्त्र भारत के नये संविधान में स्पीकर शब्द के स्थान पर राष्ट्रभाषा हिन्दी के शब्द अध्यक्ष का प्रयोग होता है।

अध्यक्ष का चुनाव—लोकसभा की कार्यवाहियों में सभा का प्रतिनिधित्व करने तथा उस की अध्यक्षता करने के लिये उसके सदस्य अपने में से एक व्यक्ति को अध्यक्ष चुनते हैं*। संसद का कोई भी सदस्य अन्य सदस्यों में से एक को अध्यक्ष पद के लिये प्रस्तावित कर सकता है। दूसरा व्यक्ति उसका समर्थन करता है। ब्रिटेन की संसदीय परम्परा के अनुसार अध्यक्ष पद के लिये कोई मंत्री नाम नहीं प्रस्तुत कर सकता। भारतवर्ष में भी अपवाद-स्वरूप १६२५ में पंजाब प्रान्तीय धारासभा के अध्यक्ष के चुनाव में प्रस्तावक और समर्थक मंत्री थे। बाद में जब इस चुनाव के विरुद्ध आपत्ति की गयी कि यह संसदीय परम्परा के विपरीत है, तब तत्कालीन चुनाव अधिकारी ने उक्त तर्क को स्वीकार करते हुए भी उत्तर दिया कि चूंकि यह व्यवस्था पक्ष के नियमों और स्थायी आदेशों के विरुद्ध नहीं है, इसलिये चुनाव वैध है। † उस चुनाव के पश्चात् सरकारी पक्ष ने यह घोषित किया कि भविष्य में मंत्री अध्यक्ष-पद के लिये किसी व्यक्ति का नाम न प्रस्तावित करेंगे और न उसका समर्थन करेंगे।

चुनाव के पश्चात् अध्यक्ष अपना आसन ग्रहण करता है और सदन के नेता तथा विरोधी दल के नेता उसे बधाई देते हैं। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष काम करता है, और दोनों के अनुपस्थित होने पर अध्यक्ष द्वारा नामजद ६ व्यक्तियों की एक सभापति-श्रेणि होती है जिनमें एक-एक करके अध्यक्ष होते हैं। अध्यक्ष का कर्त्तव्य सदन में नियमों का पालन कराना है। मतदान के समय मत गिनना, विधेयक, प्रस्ताव आदि रखने की आज्ञा देना

* "The member of the House of Commons who is chosen by the House itself to act as its repesentative and to preside over its debates."
— The Oxford English Dictionary.

† Chamier : Parliamentary Procedure in India, p. 19.

सदन की कार्यवाहियों को प्रकाशित कराने की व्यवस्था करना और आवश्यकता पड़ने पर संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करना, ये लोक सभा के अध्यक्ष के कार्य हैं*। यह बतलाना भी आवश्यक है कि लोकसभा के अध्यक्ष को अपने विभाग पर जो अधिकार प्राप्त हैं राज्यों की विधान सभाओं के अध्यक्षों को अभी वह अधिकार प्राप्त न हो सका। वे लोकसभा के अध्यक्ष की भांति अपने विभाग के अधिकारियों की नियुक्ति और बर्खास्तगी नहीं कर सकते, न उन्हें उसके प्रहरी शाखा के परिचालन में स्वतत्रता है। संसद के अध्यक्ष की भांति वे एम्पायर संसदीय सभा के अध्यक्षों की सभा में शामिल नहीं हो सकते। साधारण रूप से अध्यक्ष मत-दान में भाग नहीं ले सकता। किन्तु जब पक्ष और विपक्ष दोनों ओर बराबर मत हों तब वह अपना निर्णायक मत दे सकता है। इसके अतिरिक्त जिस समय सदन में उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित होता है तब वह भी मत-दान में भाग ले सकता है; किन्तु ऐसा अवसर आने पर न तो वह सदन की अध्यक्षता करेगा, और न उसे निर्णायक मत देने का अधिकार होगा।

अध्यक्ष की अनुमति के बिना कोई सदस्य सदन में भाषण नहीं दे सकता। यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति भाषण देने के लिये एक साथ खड़े हों तो अध्यक्ष की जिस पर पहले दृष्टि पड़ेगी उसी को बोलने की आज्ञा मिलेगी। सदस्य एक दूसरे को सम्बोधित करके भाषण नहीं कर सकते, बल्कि सबको अध्यक्ष को सम्बोधित करके भाषण देना होता है।

अध्यक्ष की कार्य-कुशलता, निष्पक्षता और संयम की कसौटी सदन की बैठक होती है। सदस्यों के अधिकारों पर किसी प्रकार का प्रतिबंध न लगाते हुए अध्यक्ष को सदन में अनुशासन कायम रखना, सदस्यों को भाषण देते

---

* "The duties of the Speaker of the House of commons are as various as they are important. He presides over the deliberations of the house, and enforces the observance of all rules for preserving order in its proceedings ; he puts every question and declares the determination of the house."

T. Erskine May : Parliamentary Practice p. 177.

समय विषयान्तर होने से रोकना और कम से कम समय में सभा की कार्यवाही सम्पन्न करते हुए संसदीय पद्धति और सदन की प्रतिष्ठा को कायम रखना होता है। कभी-कभी उसे सदस्यके विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही करने को भी बाध्य होना पड़ता है। अध्यक्ष का निर्णय निर्विवाद होता है। उसके निर्णयसे असहमत होने पर सदस्य विरोध स्वरूप सदनसे उठकर बाहर जा सकता है। किन्तु किसी भी सदस्य को अध्यक्ष के निर्णय की सदन के अन्दर और बाहर आलोचना करने का अधिकार नहीं है। सन् १६११ में ब्रिटिश लोकसभा में अध्यक्ष के निर्णय से असन्तुष्ट होकर एक सदस्य ने उसे पत्र लिखा कि उसका कार्य सर्वथा पक्षपात रहित नहीं था। इस पत्र का समाचार समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् उक्त सदस्य को सदन की अगली बैठक में क्षमा याचना करने पर अध्यक्ष की आलोचना करने के अपराध से क्षमा कर दिया गया*। प्रक्रिया नियमावली और स्थायी आदेशों का अध्यक्ष जो भी भावार्थ लगाये उसका निर्णय सर्वमान्य और अन्तिम होता है।

जब सारा सदन एक समिति के रूप में बैठता है तब लोकसभा के अध्यक्ष को उसकी कार्यवाहियों में अध्यक्ष का आसन ग्रहण करने का उपबन्ध नहीं है।

अध्यक्ष-पद के लिये उम्मेदवार होने वाला व्यक्ति लोक सभा का चुनाव चाहे जिस दल की ओर से लड़े, किन्तु अध्यक्ष निर्वाचित होने पर उसे राजनीति से तटस्थ, एक निष्पक्ष व्यक्ति के रूप में आचरण करना होता है। ब्रिटेन में तो संसद का अध्यक्ष अपना पद संभालते ही अपने चुनाव क्षेत्र की (जिससे वह संसद में पहुंचा है) जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाता है।† उसे न केवल सदन में बल्कि सदन के बाहर भी अपने निष्पक्ष होने का प्रमाण देना होता है। अपवाद-स्वरूप श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन उत्तर प्रदेशीय विधान सभा के अध्यक्ष के रूप में निष्पक्षता से काम करते हुए भी

* P. M. Briers : The Speaker of the House of Commons (Papers on Parliament, pp. 18–19)

†Robert Luce : "The Legislative Procedure, p. 435.

सदन के बाहर सक्रिय राजनीति (राज्य कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष के रूप में) काम करते रहे हैं, और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का प्रधान चुने जाने पर जिस दिन उन्होंने अध्यक्ष-पद से त्याग-पत्र दिया विरोधी दल के लोगों ने भी सदन में उनकी निष्पक्षता की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की। लोक सभा के अध्यक्ष श्री जी. वी. मावलंकर ने एक स्थल पर लिखा है कि काफी निष्पक्ष और तटस्थ होते हुए भी भारतवर्ष में अध्यक्ष अभी तक इंगलैंड की लोकसभा के अध्यक्ष की भांति दलबन्दी से सर्वथा पृथक और पूर्ण निष्पक्ष नहीं समझे जा सकते।*

जब अध्यक्ष अपने पद से त्याग-पत्र देता है वह सदन के सम्मुख भाषण देकर त्याग-पत्र के कारणों पर प्रकाश डालता है। सदन का नेता, विरोधी दल का नेता तथा अन्य प्रमुख दलों के नेता उसकी योग्यता और निष्पक्षता-पूर्वक किये गये उसके कामों की उसकी सराहना करते हैं।

अध्यक्ष का स्थान रिक्त होनेपर पुनः उसी तरीके से नये अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है।

लोकसभा पर अंकुश—

भारतीय लोकसभा को इतने व्यापक अधिकार प्राप्त होने पर भी उसका वह स्थान नहीं है जो ब्रिटेन की संसदीय व्यवस्था में वहां की लोकसभा को प्राप्त है। जैसा पहले लिखा जा चुका है, ब्रिटेन की लोकसभा में प्रभुसत्ता निहित है। भारतीय लोकसभा पर न्यायपालिका का भी कुछ अंकुश होता है। उसके अनधिकृत कार्यों और अनियमित विधि को न्याय-पालिका अवैध घोषित कर सकती है।

---

*G. V. Mavalanker : Parliamentary Life in India Vol. I p. 1.

संसदीय प्रक्रिया में दलों का महत्व

लोकतंत्र में व्यवस्थापिका सभा का जो महत्व है वह मुख्य रूप से दलों के कारण है। दलों का अस्तित्व समाप्त कर दिया जाय तो लोकतंत्रीय व्यवस्था चल नहीं सकती। क्विंटिन हॉग ने ब्रिटिश संसद का उल्लेख करते हुए लिखा है कि बिना दलों के संसद केवल वाद विवाद करनेवाली संस्था मात्र रह जायगी जिसके ऊपर कोई भी जिम्मेदारी नहीं होती, अथवा जर्मनी के राइखस्टाग की भांति हो जायगी जिसका कार्य केवल तानाशाह अथवा नौकरशाही के निर्णय का समर्थन करना होगा।* डिसराइली ने भी यह कह कर कि बिना दल के संसदीय सरकार असंभव है, लोकतंत्रीय व्यवस्था पर अपनी अटूट श्रद्धा प्रकट की।† बेजहॉट ने कहा था कि दलीय सरकार प्रतिनिधि-सरकार का एक महत्वपूर्ण आदर्श है।

जब चुनाव होता है सब राजनीतिक दल अपनी नीति एक घोषणा-पत्र के द्वारा जनता के सम्मुख रखते हैं और उसके आधार पर मत प्राप्त करते हैं। चुनाव में जिस दल का बहुमत होता है उसकी सरकार बनती है। सदन में जब तक बहुसंख्यक सदस्यों का उस पर विश्वास होता है तब तक वह अपदस्थ नहीं की जा सकती। अन्य दल विरोधी दलों के रूप में काम करते हैं और आगामी निर्वाचन में अपनी शक्ति की परीक्षा करने के लिये शक्ति-संचय करते हैं। सदन में प्रत्येक सदस्य को अपने दल की नीति और कार्यक्रम के अनुसार चलना होता है। जैसा कि डिसराइली‡ और गिलबर्ट§ ने कहा

---

* "Without Party, parliament would wither and decline into a debtaing club without responsibility, or a Reichstag, whose business it would be to register approval of the decisions of a dictator or a bureaucracy." —Quintin Hogg. M. P.

† "I believe that without Party, Parliamentary Government is impossible . . . . I say you can have no parliamentary Government if you have no party government, and therefore, when gentlemen denounce party government, they strike at that scheme of Government which in my opinion, has made this country great, and which, I hope, will keep it great."— ‡ "Damn your principles, stick to your party."— Disraeli

§ "I always voted at my party's call.
And I never thought of thinking for myself at all." —Gilbert.

था दल के समस्त मनुष्य का अपना कोई सिद्धान्त या व्यक्तित्व नहीं रह जाता है और दल के अनुशासन में रहकर उसे उसकी आज्ञा का पालन करना होता है।

दलों की मान्यता—

दलोंकी सदस्य-संख्या और उनकी शक्तिके अनुसार व्यवस्थापिका में उन्हें मान्यता प्राप्त होती है। जिस क्रम से उन्हें मन्त्रि-मण्डल बनाने अथवा विरोधी दल के रूप में रहने की मान्यता प्राप्त होती है उसी क्रमसे उन्हें सदन में स्थान प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार लोकसभा में अध्यक्ष को तथा राज्य-परिषद में सभापति को होता है।

वह कुछ नियम निर्धारित करता है जिनके आधार पर दलों को मान्यता प्राप्त होती है। केन्द्र की भाँति राज्यों में भी सभा के अध्यक्ष अथवा परिषद के सभापति को तत्सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार होता है।

लोकसभा में दलों को मान्यता देने के सम्बन्ध में इस समय जो नियम चालू हैं उसके अनुसार—

(१) लोकसभा के जो सदस्य सदन में पृथक दल का निर्माण करना चाहते हैं उनकी पृथक नीति और कार्यक्रम होना आवश्यक है। जिस नीति और कार्यक्रम का वे सदन में प्रतिपादन करें उसी के आधार पर वे चुने गये हों।

(२) उस दल का संगठन सदन के भीतर और बाहर दोनों जगह होना चाहिये, ताकि वे देश की सभी प्रकार की महत्वपूर्ण समस्याओं से सम्पर्क रखें।

(३) सदन के कुल सदस्यों के कमसे कम दसवें भाग का समूह दल के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह संख्या सदन की बैठक के लिये निश्चित की गई गणपूर्ति के बराबर होती है।

किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि सदन के किसी भी दसवें भाग के समूह को दल के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में दल की मान्यता प्राप्त करने के लिये उक्त तीनों शर्तों का पालन आवश्यक है।

(४) यदि कोई समूह सदन का दसवां भाग होने की शर्त पूरी नहीं

करता किन्तु यदि उसकी कमसे कम संख्या ३० है और वह पहली दो शर्तों को स्वीकार करता है तो उसे एक विरोधी समूह के रूप में स्वीकार कर लिया जायगा।

(५) अन्य समूहों को, जिनकी सदन में संख्या ३० से कम है तथा उपरोक्त पहली दोनों शर्तों का पालन करते हैं, सदन में बैठने के लिये पृथक स्थान पा सकते हैं। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उन्हें अन्य समूहों की भांति दूसरी सुविधायें भी प्राप्त हो सकती हैं।

सरकारी सूचना के अनुसार लोकसभा में इस समय दलों की स्थिति निम्न प्रकार है—

	नाम	सदस्यसंख्या	दलके नेताका नाम
दल—१	कांग्रेस दल	३६४	श्री जवाहरलाल नेहरू
समूह—२	साम्यवादी तथा अन्य	३५	श्री ए० के० गोपालन
,, —३	राष्ट्रीय लोकतंत्रवादी	३१	डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी
,, —४	स्वतंत्र	२६	श्री तुलसीदास कालीचन्द
,, —५	समाजवादी-प्रजादल	२२	श्रीमती सुचेता कृपालानी
,, —६	ऐसे सदस्यजिनकाकिसी दल से सम्बन्ध नहीं	१७	
,, —७	रिक्त स्थान	३	
	योग	४९८ (अध्यक्ष को छोड़कर)	

अध्यक्ष श्री जी० वी० मावलंकर कांग्रेस टिकट पर चुने गये थे। किन्तु अध्यक्ष हो जाने के बाद वे किसी भी दल के व्यक्ति नहीं समझे जाते।

प्रमुख दलों को संसद भवन में एक-एक कमरा दे दिया गया है।

उपरोक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि सत्तारूढ़ कांग्रेस दल के पश्चात् दूसरा सबसे बड़ा समूह साम्यवादियों (तथा उनके समर्थकों) का है जिसमें २७ नियमित तथा ८ स्वतंत्र समर्थक सम्मिलित हैं। चूंकि यह संख्या कुल सदस्य-संख्या का दसवां हिस्सा नहीं है इसलिये इसे दल के रूप में

मान्यता न मिल सकी। ४९८ सदस्यों के सदन में ५० सदस्यों को मिलाकर आधिकारिक विरोधी दल बन सकता है। काम रोको प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये भी ५० सदस्यों के हस्ताक्षर आवश्यक हैं।

सत्तारूढ़ दल—

दलीय सरकार का उल्लेख करते समय हमारे सामने इस समय एक महत्वपूर्ण विषय, जिस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किये जाने की आवश्यकता है, यह है कि सत्तारूढ़ राजनीतिक दल और शासन के उच्चाधिकार प्राप्त सरकारी अधिकारियों (मंत्रि-परिषद) में क्या और कैसा सम्बन्ध हो। भारत में गणतंत्र की सफलता के लिये इसका अभी निर्णय हो जाना आवश्यक है क्योंकि जो परम्परा इस समय स्थापित हो जायगी भविष्य में अन्य राजनीतिक दल भी उसी का आचरण करेंगे। कांग्रेस के नेताओं के समक्ष यह प्रश्न काफी अर्से से विचारणीय है कि क्या प्रधान मंत्री को, जिसके हाथ में शासन की बागडोर होती है दल का अध्यक्ष भी बना दिया जाय? इस स्थिति के पैदा होने का कारण स्पष्ट है। यह सर्वविदित है कि आचार्य कृपलानी और टण्डनजी को अध्यक्ष-पद का त्याग क्यों करना पड़ा। जिन राज्यों में मंत्रि-मण्डल का नेता ऊंचे व्यक्तित्व का पुरुष (जैसे उत्तर प्रदेश में पन्त जी तथा मद्रास में राजगोपालाचारी हैं) होता है वहां दल के अध्यक्ष और मंत्रिमंडल के बीच कोई संघर्ष नहीं हो पाता, किन्तु उसके हटते ही वास्तविक कठिनाई पुनः सामने आ जाती है। बम्बई, जहां मोरारजी देसाई और एस० के० पाटिल बराबर की टक्कर के नेता हैं, इस रस्साकशी का एक उदाहरण है।

वस्तुतः मूलभूत समस्या का इससे स्थायी रूप से समाधान नहीं हो सकता। जहां तक कांग्रेस का प्रश्न है जब तक यह नहीं निश्चित किया जाता कि यह संस्था एक जन-संगठन के रूप में काम करे अथवा एक संसदीय दल मात्र रहे तब तक शासन के साथ उसकी ठीक पटरी नहीं बैठ सकती। स्वराज्य प्राप्त करने के लिये कांग्रेस ने जो बलिदान किये तथा चुनावों में उसे जो सफलता मिली उसके आधार पर यह सहज ही कहा जा सकता है

कि अब तक उसका स्वरूप एक जन-संघटन का रहा है। किन्तु एक जन-संघटन के रूप में उसका अस्तित्व तभी कायम रह सकता है जब वह सच्चे अर्थों में जनता की महत्त्वाकांक्षाओं की प्रतीक हो तथा जनता को जिस सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति की आवश्यकता है उसका नेतृत्व करे। उसे एक ओर जहां जन-सम्पर्क बनाये रखना नितान्त आवश्यक है वहां साथ-साथ प्रशासन में सहयोग देना और अपनी संसदीय जिम्मेदारियों को निभाना भी अपेक्षित है। इस समय उसका जो दो प्रकार का संगठन है उससे यह स्पष्ट-सा हो गया है कि अधिकांश कांग्रेस-जन तो सरकारी यंत्र के पुर्जे बन गये हैं और बचे-खुचे मुट्ठी भर लोग रचनात्मक कार्यों में व्यस्त है। दोनों एक दूसरे से सर्वथा पृथक और भिन्न दिशाओं में काम करते हुए पाय जाते हैं। इस दोष को दूर करने के लिये ही कांग्रेस के विधान में परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव की गई जिसके द्वारा संसद तथा राज्य विधान-मंडल के सदस्यों को पदेन कांग्रेस कमेटियों का सदस्य स्वीकार किया गया, केवल मत-दान का उन्हें अधिकार नहीं दिया जायगा। संसद तथा राज्य विधान-मडलों के सदस्य को सम्बोधित करते हुए प्रधान मंत्री जवाहरलाल जी नेहरू ने १२ सितम्बर १६५२ को इन्दौर में भाषण देते हुए कहा था कि—

"कुछ लोगों का कहना है कि कांग्रेस के दो दल हैं—एक प्रशासकीय कार्यों में लगे कांग्रेसियों का दल तथा दूसरा रचनात्मक तथा संघटनात्मक कार्य करनेवाले कांग्रेसियों का दल। मेरे विचार से तो यह गलत बात है।

"कांग्रेस जैसी संस्थाके सम्बन्धमें उपर्युक्त व्याख्या उन दिनों कुछ ठीक भी थी जब 'स्वराज्य पार्टी के नामसे कार्य होता था। उस समय कांग्रेस असेम्बलियोंमें विरोधी दलके रूपमें कुछ कार्य किया करती थी। उस समय कांग्रेसजन असेम्बलियों में स्वतंत्रताकी लड़ाई लड़नेकी चेष्टा करते थे जब कि मुख्य लड़ाई असेम्बलियोंके बाहर लड़ी जाती थी। पर आज तो सारी स्थिति ही बदल गयी है। आज तो कांग्रेस को सरकार चलाना है। वह परीक्षा की घड़ियों से गुजर रही है।

आज हमें भारतकी प्रगतिका हर कदम तेज करना है। हमारे पास साधन अल्प हैं और हमें तेजी से बढ़नेवाली दुनियां के साथ चलना है, पीछे नहीं जाना है। कांग्रेसने केवल सत्ता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे चुनाव नहीं लड़ा है वरन् जनतासे किये वायदोंको पूरा करनेके उद्देश्यसे ही हम चुनाव के मैदानमें उतरे थे।"

उसी दिन विभिन्न विधान-मण्डलों के कांग्रेसदल के मन्त्रियों की एक बैठक हुई जिसमें यह निर्णय किया गया कि सभी राज्यों के कांग्रेसी दलोंके लिये एक-सा नियम बनना चाहिए। साथ ही विधान मण्डल, कांग्रेस दल और संसदीय कांग्रेस दल में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करनेका निर्णय किया गया। सम्मेलन में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामन्त्री श्री हरिकृष्ण मेहताब ने दलके कार्यों की चर्चा करते हुए इस बातपर विशेष जोर दिया कि सचेतक और दल के मंत्री में पूर्ण सहयोग रहना चाहिए। भारतवर्ष की संसदीय प्रणाली में संसद् तथा विधान सभा के सदस्यों और मन्त्रियों का इस प्रकार का सम्पर्क-सम्मेलन तथा सचेतक-सम्मेलन जैसी चीजें एक नयी दिशा की सूचक हैं।

सत्तारूढ़ दल के संसदीय पक्ष के सम्बन्ध में थोड़ा सा कह देना आवश्यक है। संसद् की प्रक्रिया के अनुसार इस दल की (तथा संसद् में अन्य दलों की भी) प्रक्रिया तथा काम काज चलाने के पृथक नियम होते हैं। संसद् भवन में उसका एक कमरेमें कार्यालय होता है। एक अवधि के लिए उसके पदाधिकारियों और कार्यकारिणी का निर्वाचन होता है। इस समय कांग्रेस दल के नेता श्री जवाहरलाल नेहरू तथा उनकी बनायी हुई कार्यकारिणी है। २३ मई १९५२ को उसका पिछला चुनाव हुआ था जिसमें नेहरूजी प्रधान और श्री हरिकृष्ण मेहताब मंत्री चुने गये थे।

विरोधी दल*—

लोकतंत्र की स्थापना और उसकी सफलता के लिये राजनीतिक दलों का होना आवश्यक है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एकाधिक दलों का होना आवश्यक है। दो या दो से अधिक दल जब होंगे तब स्वभावतः

एक दल को छोड़कर बाकी विरोधी दल होंगे*। यदि विरोधी दल सबल न हुआ तो सरकारी दल निष्क्रिय और भ्रष्ट हो जायगा। स्वस्थ विरोध परोक्ष रूप से सरकारके लिये सहायक होता है†। फ्रैंसेस वाटसन के शब्दों में

"सरकार की आलोचना करने का अधिकार मानवमात्र की एक वाञ्छनीय आवश्यकता है, और साथ ही साथ शासन को अच्छा बनाने के लिये भी यह अधिकार आवश्यक है। किसी सामाजिक संगठन को ऐसे अधिकारों से वंचित करने का अर्थ राजनीतिक विचारधारा के प्राचीन, असभ्य अध्याय को फिर से खोलना है।"

विरोधी पक्ष की आलोचना और अपनी बदनामी के भय से सरकार सदा सतर्कता से काम करती है। और लोकप्रिय मंत्री सदा इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनकी सरकार की अधिक आलोचना होने से आगामी निर्वाचन में पराजित हो जाने से वे पुनः सत्ता पर प्रतिष्ठित न हो सकेंगे। एटली के कथनानुसार विरोधी दल और सरकार के अधिकार और कर्त्तव्यों के पारस्परिक संघर्ष की भित्ति पर ही ब्रिटिश संसदीय प्रणाली आधारित है। ब्रिटिश लोकसभा में प्रधान मंत्री की हैसियत से दिये गये अपने पहले भाषण में उन्होंने (१६ अगस्त १९४५) कहा था कि सरकार की आलोचना करना और उसके प्रस्तावित कानूनों का विरोध करके उनमें संशोधन करवाने का विरोधी दल का अधिकार तथा कर्त्तव्य है। किन्तु उसी प्रकार सरकार का भी शासन

*"विरोधी दल" या "प्रतिपक्ष" शब्दों पर राज्यपरिषद् में ६ अगस्त १९५२ को काफी जोरदार बहस हुई। प्रश्न यह था कि विरोधी पक्ष को किस नाम से सम्बोधित किया जाय। श्रीमती शारदा भार्गव एवं अन्य हिंदी भाषी सदस्यों ने कहा कि विरोधी पक्ष ही उपयुक्त शब्द है। श्री सुन्दरैया आदि ने बताया कि 'विरोधी' का अर्थ शत्रु होता है। और सुझाव रखा कि 'प्रतिपक्ष' कहना उचित होगा। कारण, इसमें शत्रुता का भाव निहित नहीं है। हिन्दीवालों ने बताया कि विरोध-पक्ष 'विरोधी' से न बनकर विरोध से बना है। विरोध का अर्थ शत्रु नहीं होता।

†"No Government can be long secure wtthout a formidable opposition."

— Disraeli.

करने का तथा जिस घोषणा-पत्र के आधार पर वह शासनारूढ़ हुई है उसे कानूनी रूप देने का अधिकार और कर्त्तव्य है* । मध्ययुग में विरोध केवल विरोध करने की भावना से होता था। विरोधी पक्ष का कार्य सरकार की रचनात्मक आलोचना न होकर केवल उसकी भर्त्सना करना होता था † । इसीलिये यह एक कहावत भी हो गई थी कि विरोधी का काम केवल विरोध करना है।

आज भी व्यवस्थापिकाओं में कुछ स्वतंत्र सदस्य होते हैं, जो किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं रखते, न उनकी कोई राजनीतिक विचारधारा होती है। स्वतंत्र सदस्यों और अत्यल्प-संख्यक दल की सत्ता कुछ न होते हुए भी एक दृष्टि से सत्ताधारियों से अधिक होती है। उस समय इनका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है जब शासनारूढ दल और विपक्षी दल के बीच ये सन्तुलन रखते हैं। दोनों पक्षों में से कोई भी इन मुट्ठी भर सदस्यों को अप्रसन्न करने का साहस नहीं कर सकता क्योंकि मंत्रिमण्डल को भी इन्हीं के भरोसे पदारूढ़ रहना होता है और विरोधी पक्ष भी इन्हीं की सहायता से अविश्वास का प्रस्ताव पास करा सकता है। राजस्थान और त्रावणकोट-कोचीन में हम देख चुके हैं कि कांग्रेस और उसके विरोधियों की शक्ति एक दूसरे के साथ संतुलित होकर कट गई और अविश्वास का प्रस्ताव पास करना न करना स्वतंत्र सदस्यों के हाथ की बात रह गई। दोनों ही स्थानों पर उन्होंने अन्तिम समय में विरोधियों का साथ छोड़ दिया जिनके भरोसे विरोधी दल ने अविश्वास का

---

*"It is the right and duty of the opposision to criticise the administration and to oppose and to seek to amend the legislation of the Government, but it is none the less the right and duty of the Government to govern and to pass into the programme which it has been elected to carry out. The successful working of our Parliamentary institutions depends on harmonising these conflicting rights and duties."

Clement Atlee

†"The duty of an opposition was presumably to oppose everything and propose nothing."

प्रस्ताव रखने की ठानी थी। संतुलन करने वाले दल अथवा स्वतंत्र सदस्य स्वस्थ लोकतंत्र के विकास में रुकावट डालने वाले होते हैं; इसलिये संसदीय व्यवथा में उनकी अपेक्षा ठोस और व्यापक संगठन वाले दलों को महत्व दिया जाता है।

स्वतंत्र सदस्य भी अन्ततो गत्वा 'स्वतंत्र दल' या 'निर्दल दल' अथवा इसी प्रकार का कोई और नाम रखकर संसद में एक दल खड़ा करके यथासम्भव मान्यता प्राप्त कराने का प्रयत्न करते हैं। यदि हम यह बात स्वीकार कर लें कि दलीय सरकार प्रतिनिधि सरकार का एक महत्वपूर्ण आदर्श है तो यह भी मानना पड़ेगा कि विरोधी दलका निर्माण उस दलीय सरकार का एक महत्वपूर्ण आदर्श है* । इंगलैंड जैसे देश में विरोधी दल अपनी जिम्मेदारियों को जानता है और राष्ट्रीय हितों के लिये वह अपना कर्तव्य पूरा करने में उसी प्रकार तत्पर रहता है जिस प्रकार राजनिष्ठ दल। विरोधी दल को न केवल सरकारी मान्यता प्रदान की जाती है वरन् सरकार उसे जनतंत्र का प्रहरी समझ कर उसे उचित महत्व देती है। जिस प्रकार सरकार के लिये 'सम्राट् की सरकार' कहा जाता है उसी प्रकार विरोधी दल के लिये भी सम्मान-सूचक शब्दों में 'सम्राट् का विरोधी' कह कर सम्बोधित किया जाता है। ब्रिटेन में विरोधी दल का महत्व और उसका मूल्यांकन इसी बात से किया जा सकता है कि लोकसभा में विरोधी दल के नेता को राज-कोष से दो हजार पौंड वार्षिक वेतन मिलता है†। भारत

*"It was the first Government which made a criticism of administration as much a part of the polity as administration itself. This critical opposition is the consequence of Cabinet Government."

†"His constitutional position is recognised by the Speaker, who gives him priority in calling upon members of the House from the opposition side. He is paid a salary of Pound 2,000 a year in order that he may adequately discharge his duties, so you will see that the Leader of the Opposition has a position which is publicly recognised and gives him official status as such in the House of Commons."

—Herbert Morrison.

वर्ष में लोकतंत्र अभी अपनी शैशवावस्था में है। यह अनुमान किया जाता है कि आगामी निर्वाचन तक, जब विभिन्न दल अपना निश्चित स्वरूप धारण कर लेंगे और न केवल यही कि स्वतंत्र सदस्यों का अस्तित्व मिट जायगा, बल्कि छोटे-मोटे दल समाप्त होकर आधी दर्जन अखिल भारतीय राजनीतिक संस्थायें मैदान में रह जायंगी, तब संसदीय पद्धति का विकास और परिष्कार होगा। अस्वस्थ विरोध और विध्वंसात्मक आलोचना की अब कोई प्रतिष्ठा नहीं रही।

दलीय निष्ठा बनाम देश-भक्ति—

राजनीतिक क्षेत्र में काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने दल को मजबूत बनाने और उसके द्वारा राजसत्ता पर अधिकार करने के लिये सतत प्रयत्न करता रहता है। इसलिये वह अपने दल को सर्वोपरि स्थान देता है। किन्तु उसे यह भी देखना चाहिये कि दल को सर्वोपरि स्थान देना और प्रत्येक कार्य के करने में दल के स्वार्थों को प्राथमिकता देने से कहीं वह राष्ट्रीय हितों को तो खतरे में नहीं डाल रहा है? दल के प्रत्येक सदस्य से अपेक्षित है कि वह जो कुछ भी कार्य करे राष्ट्रीय हितों को सामने रखकर करे, और यदि सार्वजनिक हित के लिये दल को भंग करना आवश्यक हो तो निसंकोच ऐसा करने को तत्पर रहे*। जन-साधारण को जब यह पता चल जाता है कि अमुक दल राष्ट्रीय हितों से अधिक अपने स्वार्थों को महत्व देता है और सदा सत्ता हथियाने के लिये तत्पर रहता है, उस दल की साख जाती रहती है और कुछ पाने के विपरीत वह अपनी लोकप्रियता खो बैठता है। हमारे देश में ऐसे दल विद्यमान हैं जो काफी परिश्रम करने पर भी लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सके क्योंकि जनता की सेवा के नाम पर वे सदा स्वार्थ साधन में तत्पर रहते हैं।

* "Party must exist, it must be maintained as an essential condition of good government; but it must be subordinate to the public interests, and in the public interest it must be in many cases suspended"

राजसत्ता हथियाने के लिये दलों में व्याप्त प्रतिस्पर्धा जब अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है तब प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होने लगती है। लोकतंत्र में प्रतिशोध को आदर नहीं मिलता। उत्तर प्रदेश की एक घटना इस प्रतिशोध का ज्वलंत उदाहरण है। उत्तर प्रदेशीय सरकार ने कांग्रेस विद्रोही श्री त्रिलोकी सिंह पर एक अभियोग लगाकर अदालत में मुकदमा चलाया, जिसमें कहा गया कि उस सहकारी संघ ने, जिसमें श्री त्रिलोकी सिंह अध्यक्ष थे, नियंत्रण कानून का भंग किया है। श्री त्रिलोकी सिंह ने जाब्ता फौजदारी कानून की धारा ५६१ (क) के अन्तर्गत उच्च न्यायालय में प्रार्थना-पत्र दिया कि नीचे के न्यायालय का निर्णय अमान्य घोषित किया जाय, क्योंकि मुझपर राजनीतिक उद्देश्य से अभियोग लगाया गया है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ शाखा ने उनके प्रार्थना-पत्र को स्वीकार किया और मामला रद्द कर दिया। न्यायाधीश किदवई ने कहा कि जब सारा सहकारी संघ इसके लिये जिम्मेदार था तब अकेले श्री त्रिलोकी सिंह पर मुकदमा चलाना यह प्रमाणित करता है कि उनके राजनीतिक विरोधियों ने उन्हें परेशान करने के लिये यह मामला खड़ा किया। प्रतिशोध की भावना से किये गये ऐसे कार्य भारतीय परम्परा और लोकतंत्रीय व्यवस्था दोनों के विपरीत हैं।

संकट काल की स्थिति होने पर विरोधी दलों को सरकार के साथ पूर्ण सहयोग करना चाहिये। आवश्यक होने पर प्रशासनकी जिम्मेदारियों को भी स्वीकार कर लेना चाहिये। इंगलैण्ड में ऐसी स्थिति पैदा होने पर सरकार को हमेशा सब दलों का सक्रिय समर्थन और सहयोग प्राप्त होता है। द्वितीय महासमर के समय (१९४०) चर्चिल का मंत्रिमण्डल इसका एक उदाहरण है। उससे पूर्व ऐस्क्विथ (१९१५), लायड जॉर्ज (१९१६), और रैमजे मैकडानल्ड (१९३१) के संयुक्त मंत्रिमंडल इसी शताब्दि के उदाहरण हैं। संकट काल की स्थिति में संयुक्त मंत्रिमंडल का विशेष महत्व होता है। युद्ध-काल की स्थिति में तो न केवल राष्ट्र की समूची शक्तियों को लड़ाई जीतने के लिये मिलकर जूझने की प्रेरणा मिलती है बल्कि राजनीतिक

दलों के पारस्परिक वैमनस्य भी कुछ समय के लिये मिट जाते हैं जिसका मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिकों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। किन्तु यह तो युद्ध-काल की बात है। साधारण स्थिति में प्रायः संयुक्त मंत्रि-मंण्डल वाञ्छनीय नहीं समझा जाता, न वह स्थायी होता है।

इस समय भारतवर्ष में लगभग १४ अखिल भारतीय राजनीतिक दल हैं। उनकी नीति और कार्यक्रम का लेखा-जोखा करने से यह पता चलता है कि उनमें से अधिकांश लगभग सभी बातों में एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। पिछले चुनावों में कांग्रेस को कमजोर समझकर बहुत से नये-नये दल केवल कांग्रेस का विरोध करने के लिये चुनाव के मैदान में आये। उनके आपसी संघर्ष का फल यह हुआ कि कांग्रेस को आशा से अधिक सफलता मिली और बहुत से दल चुनाव समाप्त होने के बाद ही लड़खड़ाने लगे। हाल ही में (२५ अगस्त १६५२ को) समाजवादी दल और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के एक होकर समाजवादी प्रजापार्टी बन जाने से और उनके साथ कुछ अन्य दलों (जैसे अग्रगामी दल) के मिल जाने और साम्यवादी दल मे वामपक्षीय मोर्चा तथा क्रांतिकारी समाजवादी दल आदि वामपक्षीय दलों के विलीन हो जाने से आशा बढ़ चली है कि अगले चुनावों तक तीन या चार दलों से अधिक मैदान में न रह पायेंगे। कांग्रेस के वर्तमान स्वरुप को देखते हुए यह सभावना बनी हुई है कि हिन्दू महासभा और जनसंघ आदि दल उस पर आधिपत्य कर लेंगे, उसे राजाओ और जामीदारों का (जिनके इस समय लोकसभा में ४ और विधान सभाओं में २० सदस्य हैं) भी समर्थन प्राप्त होगा। प्रजा समाजवादी दल के साथ कई छोटे-मोटे दलों का एकीकरण हो जायगा, और क्रान्तिकारी समाजवादी दल, क्रान्तिकारी साम्यवादी दल, वोल्शेविक दल आदि साम्यवादी दल में विलीन हो जायंगे। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार ब्रिटेन में अनुदार दल, मजदूर दल और उदार दल वहां के प्रमुख राजनीतिक दल हैं उसी प्रकार भारतीय राजनीति के ंग मञ्च पर कांग्रेस, प्रजा समाजवादी दल और साम्यवादी दल ही मुख्य रूप से रह जायगें। ब्रिटेन में साम्यवादी दल नगण्य है, किन्तु हमारे यहां

साम्यवादी कार्यकर्ताओं के श्रमशील होने और देश की अधिक शोचनीय स्थिति के कारण उसकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति जनता को अधिकाधिक प्रभावित कर रही है, जो किसी के मत से कटु और किसी के मत से मधुर सत्य है।

गुटबंदी—

संसदीय दलों का विश्लेषण करते समय उनके अनुशासन पर भी लिखना आवश्यक है। ऐसे अवसर पर जब किसी राजनीतिक दल का कोई सदस्य अथवा दल का एक पक्ष, किन्हीं कारणों से दल से पृथक हो जाता है तो पृथक होने वाले व्यवस्थापिका के सदस्य तत्काल सदन की सदस्यता से भी त्याग-पत्र दे देते हैं और पुनः चुनाव लड़ते हैं। यद्यपि संवैधानिक रूप से उन्हें त्याग-पत्र देना आवश्यक नहीं होता, तथापि यह अपेक्षा की जाती है, और नैतिकता का तकाजा भी है, कि दल से पृथक होने वाले व्यक्ति उससे प्राप्त लाभके समस्त पदों, जैसे व्यवस्थापिका सभा और समितियां आदि, से पृथक हो जायं। सदन की सदस्यतासे त्याग-पत्र देते समय उस पक्ष का नेता अध्यक्ष की आज्ञा से त्याग-पत्र के कारणों पर प्रकाश डाल सकता है। समाजवादी दल के नेता, कांग्रेस से पृथक होने के बाद व्यवस्थापिका सभाओं से भी, जिसका चुनाव पहले उन्होंने कांग्रेस टिकट पर लड़ा था, त्याग-पत्र देकर चुनाव लड़े थे। किन्तु इसके विपरीत उत्तर-प्रदेश में कांग्रेस से पृथक होकर जिन लोगों ने जन-कांग्रेस स्थापित की वे धारा-सभाओं में अपने स्थानों पर पूर्ववत् बने रहे। इस पर काफी अर्से तक आलोचना, प्रत्यालोचना और टीका-टिप्पणी होती रही। किसी दल के सदस्य यदि सदन में दूसरे दल वालों के साथ बैठने लगें अथवा मतदान में अपने दल के विरुद्ध मत दें, या अन्य किसी प्रकार से दल की नीति, परम्परा और कार्यक्रम के विरुद्ध आचरण करने लगें तो उनके विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही की जाती है।

संसद में सब प्रमुख दलों की अपने सदस्यों के लिये प्रक्रिया-नियमावली होती है जिसके द्वारा दल का विधान, कार्यक्रम और सदस्यों पर अनुशासन

कायम रखा जाता है। दल के भीतर दल या गुट का अस्तित्व, जिसका पृथक कार्यक्रम या नीति हो, कभी उचित नहीं समझा जाता और दल की ओर से उनके विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही की जाती है। कांग्रेस के भीतर कई बार इस प्रकार की दरार पैदा हो चुकी है। पिछले दिनों इंगलैण्ड के मजदूर दल की कार्य समिति ने वेवन गुट को तत्काल भंग कर देने की चेतावनी देकर दल को कमजोर होने से बचाया। इस सबन्ध में यह बतलाना आवश्यक है कि वेवन गुट काफी समय से मजदूर दल के भीतर अल्प-मत में एक पक्ष की भांति काम कर रहा था। सन् १९५० में, जब ब्रिटेन में मजदूर दल की सरकार थी, वेवन तथा उनके दो साथियों ने मंत्रि-मडल से मतभेद होने के कारण अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया था। उस समय बीस सदस्य उनके समर्थक थे जो बाद में बढ़कर ५० तक पहुंच गये थे। ब्रिटेन के मजदूर दल में दलबन्दी की जो स्थिति है वह स्थिति न्यूनाधिक मात्रा में उन सब देशों में विद्यमान है जहां विचार-स्वातन्त्र्य के लिये काफी गुंजाइश होती है। ऐसे सभी देशों में लगभग प्रत्येक दल के अन्दर एक वामपक्षीय मोर्चा होता है जो प्रायः सभी मौलिक बातों में दल की नीति और कार्य-क्रम से मतभेद रखता है। हमारे देश में भी कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य प्रगतिशील एवं वामपक्षीय दलों में एकाधिक गुट काम कर रहे हैं। लोकतंत्र के लिये ये गुट एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बनते जा रहे हैं।

जब दलों के अन्दर दलबन्दियां पैदा हो जाती हैं उनमें कोई स्थायित्व नहीं रह जाता है और निरन्तर उनकी शक्ति का ह्रास होता रहता है। इस अन्तर्विरोध का अन्ततः यह परिणाम होता है कि किसी भी दल को सदन में स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पाता। तब मन्त्रिमंडल निर्माण के लिये 'कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा' वाली कहावत चरितार्थ होती है और अन्य दलों या स्वतंत्र सदस्यों के साथ सौदा होता है। बहुत से स्वार्थी और पद-लोलुप व्यक्तियों को मंत्रिमंडल में शामिल करके कुछ समय तक छकड़े को चलाने का प्रयत्न किया जाता है।

हमारे देश में केन्द्र तो सौभाग्यवश अभी सशक्त है, किन्तु कुछ राज्यों में निकृष्ट श्रेणि की दलबन्दी के कारण ऐसी अवांछनीय परम्परा स्थापित हो चली है कि उससे न केवल उन राज्यों की राजनीतिक स्थिति डामाडोल है वरन् संघ पर भी उसका कुप्रभाव पड़ने की सभावना है। पूर्वी पंजाब तथा पटियाला रियासती संघ, त्रावणकोर-कोचीन और मद्रास की दशा किसी से छिपी नहीं है। वैसे राजस्थान, हैदराबाद, पूर्वी बंगाल भी इस बीमारी से कम ग्रस्त नहीं है। पंजाब तो अविभाजित भारत (२५ वर्ष पूर्व से) से दलबन्दी का क्रीड़ास्थल रहा है। विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान अधिकृत पंजाब में तो गवर्नरी शासन स्थापित हुआ ही, पूर्वी पंजाब में भी सन् १९४८—४९ में तीन बार मंत्रिमंडल बदले। अब भी वहां ऊंट किस करवट बैठता है, यह देखने की चीज है। इसमें सन्देह नहीं कि जब तक पुरानी बुराइयां और बुराइयों के बीज का समूलोन्मूलन नहीं किया जाता, एक व्यक्ति को कुर्सी से हटाने और दूसरे को उस पर प्रतिष्ठापित करने से संसदीय पद्धति को बिगड़ने से नहीं रोका जा सकता। आम चुनावों के पश्चात् पटियाला सघ के कांग्रेस मंत्रिमंडल का जिस नाटकीय ढंग से पतन हुआ और संयुक्त मोर्चे का नया मंत्रिमंडल बनने में जो कई बातें रहस्य बनकर सामने आयीं वे लोकतंत्र के उपहास की द्योतक हैं। संकीर्ण स्वार्थ-संघर्ष के दो उदाहरण मद्रास और त्रावणकोर-कोचीन में हमें मिले, जहां परस्पर विरोधी विचार धारा के लोगों ने अस्थायी समझौता करके केवल अपने दल को थोड़े समय के लिये शासन-सूत्र हाथ में लेने की नीयत से लोकतत्र पर कुठाराघात किया। क्या वे नहीं जानते थे कि उनमें कभी स्थायी मैत्री नहीं हो सकती ? किन्तु यह कहावत सही है कि 'स्वार्थ व्यक्ति को अंधा बना देता है'। मैं यह अन्यत्र लिख चुका हूँ कि दल के स्वार्थ में कभी-कभी आदमी राष्ट्र-विरोधी कार्य भी कर बैठता है। इसलिये केन्द्र से जहां यह अपेक्षा की जाती है कि वह राज्यों के अधिकारों में हस्तक्षेप न करे, वहां उसे यह भी देखना चाहिये कि राज्य उस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करके राष्ट्र को ही खतरे में न डाल दें।

दलबन्दी के दलदल में फंसे नेताओं की महान् भूलों का परिणाम सदा

जनता को भुगतना पड़ता है। देश के व्यापक हितों को ध्यान में रखकर उन्हें आपसी भेद-भाव भुलाकर लोक हित के कार्यों में लगा रहना चाहिये। जन-साधारण के लिये तो वही दल अच्छा है जो उसके हितों के लिये कार्य करे; उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं कि कौन-सी संस्था का कौन-सा वर्ग सत्ता पर प्रतिष्ठापित होता है। कवि अकबर के शब्दों में उसके लिये तो:

हकीम और वैद एक-सों हैं, अगर तशखीस अच्छी हो।
हमें सेहत से मतलब है, बनफ्सा हो या तुलसी हो॥

सचेतक

संसदीय प्रक्रिया में दलों का जो महत्व है वही महत्त्व सचेतक का होता है। सचेतक किसे कहते हैं ? सदन में उसका क्या स्थान होता है ?—आदि प्रश्न पूछे जा सकते हैं। संक्षेप में सचेतक के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि सत्तारूढ़ दल का वह व्यक्ति जो सदन को बनाये रखने व चलते रखने के लिये तथा अधिवेशन के समय कार्यक्रम की सूची बनाने और प्रधान मंत्री के प्रतिनिधि के रूप में संसदीय कार्यक्रम को सचालित करने में अधिकृत रूप से कार्य करता है, सचेतक कहलाता है*। ब्रिटिश मजदूर दल के मुख्य सचेतक विलियम विटले के शब्दों में "मुख्य सचेतक लोकसभा में सरकार का प्रबंध संचालक है तथा प्रधान मंत्री के प्रतिनिधि स्वरूप उसका यह कर्त्तव्य है कि वह सरकार के संसदीय कार्यक्रम को लोकसभा के द्वारा सफलतापूर्वक पारित करा दे।"†

*सदस्यों के नाम दल के कार्यालय से आगामी सप्ताह के कार्यक्रम की जो सूचना दी जाती है उसे भी सचेतक कहते हैं। सचेतक न पहुंचने का यह अभिप्राय समझा जाता है कि वह दल से पृथक कर दिया गया है।

—Edward Porritt : The Unreformed House of Commons Vol. 1, p. 509

†"Chief Whip is the Government's Managing Director in the House of Commons., he is the Prime Minister's agent for seeing that Government legislative programme is put through the Commons."

—William Whiteley.

भारत के संसदीय मंत्री व सरकारी मुख्य सचेतक श्री सत्यनारायण सिन्हा सचेतक की महत्ता और उसके कार्यों का विश्लेषण करते हुए कहते हैं :—

"सचेतकों का कार्य कठिन तथा अप्रिय है। प्रजातंत्रात्मक प्रणाली को सुचारू रूप से सभा-भवन में चलाने में सचेतक धुरि के रूप होते हैं। कोई भी विधान-सभा दल-सचेतकों की पर्याप्त संख्या बिना अपना कार्य उचित तथा योग्यतापूर्वक नहीं चला सकती। ब्रिटेन में जहां कि संसदीय प्रणाली प्रायः पूर्ण रूप से विकसित है वहां सचेतक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। सत्तारूढ़ दल का मुख्य सचेतक राज्य मन्त्री होता है। वह वित्तीय सभा सचिव कहलाता है। उसके सहायक जिनकी संख्या १०–११ होती है, उपमुख्य सचेतक तथा लार्ड कमिश्नर्स अथवा जूनियर मिनिस्टर्स कहलाते हैं। मुख्य सचेतक का कर्तव्य जैसा कि बहुधा कहा गया है, सदन को बनाये रखना व चलते रखना है। सदन की बैठक के समय प्रत्येक सप्ताह के कार्यक्रम की सूची मुख्य सचेतक को बनानी होती है। दल के सदस्य उसके आदेशों को मानते हैं और जब मत-विभाजन का समय आता है तब वे उसके आदेशानुसार मत-दान करते हैं। कार्यक्रम में उन विधेयकों की चर्चा होती है जो सदन में विचारणीय होते हैं और सदस्यों के लिए भी सूचना होती है कि कब उनकी उपस्थिति परम वांछनीय है। सदस्यों को उपस्थिति का संकेत एक, दो अथवा तीन रेखाओं के आदेश-पत्र से ज्ञात होता है। जिस आदेश-पत्र की पंक्ति के नीचे तीन रेखाएँ होती हैं उसका यह अभिप्राय है कि दल का प्रत्येक सदस्य सभा भवन में अवश्य उपस्थित रहे। दल का कोई भी सदस्य मुख्य सचेतक की पूर्व आज्ञा के बिना सदन से अनुपस्थित नहीं हो सकता। मुख्य सचेतक का यह भी कर्तव्य है कि वह पिछली बेंचों पर बैठने वाले दल के सदस्यों से संपर्क रखे और दलों के नेताओं को अपनी विचारधारा से परिचित रखे। दल के प्रतिभाशाली सदस्यों की नामावली समय समय पर मुख्य सचेतक प्रधान-मंत्री को देता रहे कि वह उन प्रतिभाशाली सदस्यों को जिम्मेदारी के पदपर नियुक्त करे। सभा-भवनकी प्रत्येक गतिविधि की चर्चा प्रधान मंत्री से करता रहे तथा भवन की विचारधाराओं से परिचित कराता रहे। सरकार मुख्य सचेतक के लिए प्रधान मंत्री के निवास स्थान के पास ही निवास-स्थान का प्रबन्ध

करती है। उसे प्रतिदिन प्रातःकाल प्रधान मंत्री से भेंट कर विधान-सभा सम्बन्धी विषयों पर विचार-विनिमय करना होता है।

मंत्रि-परिषद की विधान सम्बन्धी उपसमिति की बैठकें विधान सभा के कार्यक्रम को निश्चित करने के लिये समय समय पर होती हैं। मुख्य सचेतक के सुझाव महत्व-क्रम के सम्बन्ध में स्वीकृत किये जाते हैं।

अनुशासन सम्बन्धी विषयों में कार्रवाई करने तथा ऐसे सदस्यों के सम्बन्ध में जिन्होंने किसी सचेतक का उलंघन किया हो उपयुक्त अनुशासन कार्रवाई करने के लिये प्रधानमंत्री को सलाह देने की जिम्मेदारी भी मुख्य सचेतक की होती है।

जिस प्रकार सचेतक अपने मुख्य सचेतक की आँखें और कान होते हैं उसी प्रकार स्वयं मुख्य सचेतक प्रधान मन्त्री की भुजा, आँख तथा कान का काम करता है।

मुख्य सचेतक अपने सहायकों से सप्ताह में कई बार विधान सम्बन्धी विषयों पर विस्तारपूर्वक विचार विनिमय करता है और सचेतक अपने दल तथा दूसरे दलों के सदस्यों की विचारधाराओं से मुख्य सचेतक को सूचित करते रहते हैं।

केन्द्र में हमारा काम प्रायः उपयोगी रहा और हम लोगों ने विधान सम्बन्धी परिपाटियों का निर्माण भी किया है। कांग्रेस ससदीय दल के मुख्य सचेतक अब संसदीय मंत्री (मिनिस्टर आफ पार्लियामेण्टरी अफेयर्स) हैं। संसद् में दो तथा राज्य-परिषद् में एक सहायक मुख्य उपसचेतक हैं। उनके अतिरिक्त संसद में विभिन्न प्रदेशों से ६ सचेतक निर्वाचित किये गये हैं, इसी प्रकार राज्य-परिषद में भी उपमुख्य सचेतक के सहायतार्थ चार निर्वाचित सचेतक हैं। मुख्य सचेतक को संसदीय मंत्री के अतिरिक्त सरकारी-मुख्य-सचेतक भी कहते हैं। उप-मुख्य-सचेतकों में से एक संसद में तथा एक राज्य-परिषद में सरकारी-उपमुख्य-सचेतक कहलाते हैं।

मंत्रिमन्डल की महत्वक्रम-निर्णायक-समिति के सदस्यों में मुख्य-सचेतक भी एक सदस्य हैं और वे मत्रिमंडल की ससदीय तथा विधि सम्बन्धी विषयों

की उप-समितियों के भी सदस्य हैं। यह समिति विभिन्न वैधानिक विषयों को सरकार द्वारा संसद में विचारार्थ प्रस्तुत करने का क्रम बनाती है। इसके अतिरिक्त सदन-कार्यक्रम, और परामर्शदात्री—दोनों भवनों की दो समितियां हैं जो समय समय पर अध्यक्ष तथा सभापति महोदय को कार्यक्रम के सम्बन्ध में परामर्श देती हैं। मुख्य तथा उपमुख्य सचेतक इन समितियों के प्रभावशाली सदस्य होते हैं।

भवन के अध्यक्ष को सदन में सदस्यों की निर्दिष्ट संख्या की ओर ध्यान रखना होता है। मुख्य सचेतक को भी सदा प्रयत्नशील रहना पड़ता है कि उसके दल के सभी सदस्य व मंत्रीगण उपस्थित रहें। यदि किसी महत्वपूर्ण प्रस्ताव या विधेयक को पारित करने के लिए विधानानुसार उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई मतों की आवश्यकता है तो यह मेरा कर्तव्य होता है कि मैं तीन रेखाओं के द्वारा दल के सदस्यों का ध्यान उपस्थिति के लिए आकृष्ट करूं। सदन में मत विभाजन के समय मैं और मेरे सहायक अन्य दलों के सदस्यों में घूमकर सरकार की ओर मत प्रदान कराने का प्रयत्न करते हैं और बहुधा हम लोग सफल होते हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर दल की समितियों के निर्णय की सूचना साधाररण आदेश-पत्र द्वारा सदस्यों को दी जाती हैं और आशा की जाती है कि दल का प्रत्येक सदस्य उस आदेशानुसार संसद् व राज्य-परिषद् में मत-दान करे।

संसद् के दोनों सदनों में विभिन्न विषयों पर वक्ताओं की सूची तैयार करना मेरा विशेष कार्य है। मैं सदस्यों को सूचित करता हूँ कि वे जिस किसी विषय अथवा महत्वपूर्ण विधेयक पर बोलना चाहते हों, मेरे सहायकों में से किसी को भी सूचित कर दें। हमारे यहां सचेतक प्रदेशों के आधार पर चुने गये हैं, अतः उन्हें अपने प्रदेश के प्रत्येक सदस्य को भलीभांति जानने का अवसर मिलता है और वे उनसे परामर्श कर अपने वक्ताओं की सूची तैयार करते हैं। इन सूचियों पर मेरे उपमुख्य सचेतक विचार करते हैं और मेरे सम्मुख सूची प्रस्तुत करते हैं। मैं दल की स्थाई समितियों के संयोजकों से भी परामर्श करता हूँ। अन्त में निम्नलिखित आधार

पर अपना निर्णय देता हूँ। पहले मैं उन व्यक्तियों को रखता हूँ जो मेरे विचार में दल तथा सरकार के पक्ष को भली प्रकार प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं। दूसरी बात मैं यह ध्यान में रखता हूँ कि विभिन्न प्रदेशों के दृष्टिकोण भी सदन में आ जायें। इन दोनों बातों का ध्यान रखते हुए मैं सदा यह प्रयत्न करता हूँ कि सदन में वाद-विवाद का स्तर उँचा बना रहे।

इन सूचियों के तैयार होने पर मेरे उपमुख्य सचेतक जहां तक सम्भव होता है उन सदस्यों को पहले से सूचित कर देते हैं जिन्हें सदन में बोलना है, जिससे उन्हें उस विषय का अध्ययन करने के लिये पर्याप्त समय मिले। वक्ताओं की यह सूची मेरे उप-मुख्य सचेतक द्वारा अध्यक्ष अथवा सभापति के सामने प्रस्तुत की जाती है। उनके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे वक्ताओं को सूची में दिये गये नाम तथा क्रम के अनुसार वक्ताओं को अवसर दें। परन्तु साधारणतयः वे दल के वक्ताओं को बोलने के लिये बुलाते समय इन सूचियों का ध्यान रखते हैं, और इस प्रकार से वक्ताओं के चुनने और सदन में वाद-विवाद को सयमित रखने में हमारे सचेतकों का काफी प्रभाव रहता है। अनुभव से मेरे सचेतकों को इसकी अच्छी जानकारी होगई है कि किस विशेष विषय पर किस दल के कौन सदस्य काफी प्रभावशाली वक्ता हो सकते हैं? इस प्रकार सचेतक जानते हैं कि किस विषय पर कौन अच्छा वक्ता होगा। हमारे सचेतकों का एक काम यह भी है कि वे सरकारी विधेयकों को बिना किसी अनुचित बाधा के उचित समय में पारित करा दें। मुख्य सचेतक को सदन की कार्रवाई पर सावधानी से दृष्टि रखनी पड़ती है और किसी समय कोई आकस्मिक आवश्यकता पड़ने पर तत्काल ही उसका उपाय ढूँढना पड़ता है। सदन से अनुपस्थित रहना उनके लिये प्रायः असम्भव है। बैठक के समय उन्हें सदा ही सदन के समीप रहना पड़ता है।

मुख्य सचेतक को, जब भवन में वाद-विवाद काफी हो चुका होता है तब अधिक वाद-विवाद को रोकने के लिये तथा अध्यक्ष से प्रश्न पर विचार

करने के लिये प्रार्थना करनी होती है जिसको विवादान्त कहते हैं। इस प्रश्न को उठाने का अधिकार केवल सचेतक को ही है। गैर सरकारी विधेयक अथवा गैर-कांग्रेसा सदस्यों द्वारा रखे जाने वाले प्रस्तावों के विषय में भी हमारे सचेतकों का एक विशेष कर्तव्य होता है। यदि सरकारी दल किसी प्रस्ताव को असफल बनाना चाहता है तो न केवल उसके सम्बन्ध में आदेश-पत्र ही प्रस्तुत किये जाते हैं, अपितु हमारे सचेतक यह भी प्रयत्न करते हैं कि विरोधी दल के सदस्यों के पास जाकर अथवा प्रस्ताव रखने वाले सदस्य से प्रस्ताव को वापस लेने के लिये बात करें। यदि गैर-सरकारी सदस्य इस पर न मानें तो यह प्रयत्न किया जाता है कि अपने दल की ओर से ऐसे वक्ताओं की सूची दी जाय कि प्रस्ताव या विधेयक के पास होने के लिये समय ही न मिल सके।

हमारे सचेतक दल के सभी सदस्यों से घनिष्ट सम्पर्क बनाये रखते हैं। सचेतक न केवल दल के संचालन में समता उत्पन्न करने का ही काम करते हैं अपितु दल के प्रवाहसूत्रकों का भी काम करते हैं। वे न केवल दल के सदस्यों के परामर्शदाता हैं अपितु दल में संगठन की कड़ी भी हैं। वे केवल अपने प्रदेशों की विचारधारा के मापदण्ड ही नहीं, अपितु सदस्यों के दिग्दर्शक भी हैं।

संसद् की विभिन्न समितियों के लिये प्राक्कलन समिति, प्रवर समिति आदि—सदस्यों के नामों के चयन में मेरा निर्णय सर्वोपरि होता है। मैं अपने उपमुख्य सचेतकों की सहायता से न केवल अपने ही दल, अपितु अन्य दलों के सदस्यों में से भी नाम निश्चित करता हूँ। अन्य दलों के नेताओं से मैं परामर्श अवश्य करता हूँ, किन्तु अन्तिम फैसला मैं स्वयं ही करता हूँ। इन नामावलियों को मैं अध्यक्ष अथवा सभापति को दे देता हूँ। साधारणतयः मेरी नामावली सदन द्वारा स्वीकृति की जाती है।

यदि किसी दल की ओर से यह नामावली स्वीकृत नहीं हो तो मुझे सचेतक द्वारा अपने दल के सदस्यों को इस नामावाली का समर्थन करने के लिए आदेश-पत्र चलित करना पड़ता है। उपमुख्य सचेतक सरकारी प्रस्ताव

के लिए समर्थन प्राप्त करने के लिए गैर–सरकारी सदस्यों से भी सम्पर्क रखते हैं और इसमें उन्हें काफी सफलता मिलती है। मुझे सन्तोष है कि संसद् व राज्य परिषद के पिछले अधिवेशन में हमारी सारी नामावली संसद् व राज्य परिषद में एक मत से स्वीकृत हुई। इसके लिये मैं संसद व राज्य-परिषद के उप–मुख्य सचेतकों तथा अन्य सचेतकों को बधाई देना आवश्यक समझता हूँ।

संसदीय समितियों के कार्य में सहयोग प्राप्त करने के लिये तथा गैर सरकारी सदस्यों को सरकारी दृष्टिकोण के अधिक निकट लाने के लिये सरकारी सचतकों को सर्वदा उनमें स्थान दिया जाता है। जब कभी कोई मन्त्री किसी सरकारी अथवा विभागीय समिति में संसद् के सदस्यों को रखना चाहता है तो उसे मुख्य सचेतक से परामर्श करना होता है और उस समिति में जो भी संसद-सदस्य होते हैं वे मुख्य सचेतक द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। सदन द्वारा नियुक्त की हुई सभी समितियों में मुख्य सचेतक पदेन सदस्य होता है।

संसद् तथा राज्य-परिषद के उपमुख्य सचेतक क्रमशः अध्यक्ष तथा सभापति द्वारा नियुक्त सदन-समितियों के सभापति होते हैं। सदन समिति के सभापति का कतव्य प्रायः कष्टसाध्य होता है। यह सन्तोष की बात है कि हमारे उपमुख्य सचेतक जो अपने दल तथा दूसरे दलों के सदस्यों को भली प्रकार जानते हैं, वे इस भार का वहन करने के लिये सभापति नियुक्त किये गये हैं। ये हैं वे कुछ परिपाटियाँ जिनका निर्माण अब तक केन्द्र में किया गया है*।'

१२ सितम्बर १९५२ को इन्दौर में केन्द्र तथा राज्यों के कांग्रेस विधानमंडल-दलों के सचेतक सम्मेलन में एक प्रस्ताव द्वारा यह कहा गया कि मुख्य सचेतक को 'सरकारी हैसियत' प्राप्त होनी चाहिये

*१३ सितम्बर १९५२ को सचेतक सम्मेलन इन्दौर में श्री सत्यनारायण सिन्हा, संसदीय मंत्री व सरकारी मुख्य सचेतक द्वारा दिये गये सभापति-भाषण से उद्धृत।

ताकि लोकतंत्रीय शासन-व्यवस्था सुचारु रूप से परिचालित की जा सके। इस सम्बन्ध में यह मालूम हुआ है कि संसदीय मंत्री व मुख्य सचेतक श्री सत्यनारायण सिंह इस पर विभिन्न राज्यों के कांग्रेस दल के नेताओं से पत्र-व्यवहार कर रहे हैं, और निकट भविष्य में होने वाले दूसरे सचेतक सम्मेलन तक इस पर कुछ निर्णय भी हो जायगा। इस समय पश्चिमी बंगाल के मुख्य सचेतक मुख्य सभा-सचिव हैं तथा उत्तरप्रदेश में एक उप-मंत्री मुख्य सचेतक हैं।

मत-दान—क्यों, कैसे और किस लिये

लोकप्रिय सरकार की स्थापना लोक-मत द्वारा होती है, और लोक-मत मत-दान द्वारा जाना जाता है। मत-दान नागरिक का लोकतांत्रिक अधिकार और सामाजिक कर्तव्य है। इस संबन्ध में एक बार एक निबन्ध में लिखा था—मत-दान एक वन के समान होता है जिसमें अनेक दल और व्यक्ति नये-नये नारों, वायदों और आश्वासनों का सब्जबाग लेकर जनता के सामने आते हैं और अपने लिये मत मांगते हैं। इस मत-दान के वन में से सच्चे, चरित्रवान, ईमानदार, कर्मठ, निःस्पृह और सेवा वृत्ति के व्यक्तियों का चुनाव करना जन-साधारण के लिये बड़ी जटिल समस्या है।

दल और स्वतंत्र उम्मीदवार—

चुनाव के संबन्ध में संविधान में लिखा है कि "संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचन के हेतु प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिये एक साधारण निर्वाचक नामावली होगी तथा केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर कोई व्यक्ति ऐसी किसी नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा, अथवा, ऐसे किसी निर्वाचन क्षेत्र के लिये किसी विशेष निर्वाचक-नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा*।"

चुनाव में दो प्रकार के उम्मीदवार होते हैं। एक किसी दल की ओर से उम्मीदवार होते हैं और दूसरे स्वतंत्र रूप से। दल अपना चुनाव घोषणा-पत्र निकालते हैं, जिनमें वह अपने सिद्धान्त और कार्यप्रणाली बताकर जनता को वचन देते हैं कि उनकी सरकार बन जाने पर वे देश और जनहित में किस प्रकार कार्य करेंगे और उन्हीं के आधार पर वे जनता से मत मांगते हैं। ये दल चुनाव में अपने उम्मीदवार खड़े करते हैं। चुनाव के समय कुछ दल आपस में मेल करके एक दूसरे का विरोध न कर संयुक्त रूप से चुनाव लड़ते है। जिनके सिद्धान्तों में मौलिक मतभेद होता है वे एक दूसरे का

*अनु० ३२५ (क)

कड़ा विरोध करते हैं। जिस दल का बहुमत होता है उसके हाथ में शासन-सूत्र आ जाता है और वही दल सरकार की नीति निर्धारित करता है तथा उसके सब सदस्य सरकार की नीति और कार्य का समर्थन करते हैं।

यदि कोई सदस्य दल की किसी नीति या कार्य से असहमत हो तो उसके सामने केवल दो ही विकल्प होते हैं। या तो वह अपनी आत्मा का हनन कर दल की नीति और कार्य का समर्थन करे अथवा दल का त्याग कर दे। उस अवस्था में नैतिकता और सिद्धान्त की दृष्टि से उसे संसद और विधान सभा की सदस्यता से भी त्याग-पत्र दे देना चाहिये। किन्तु संवैधानिक दृष्टि से संसद और विधान सभा का त्याग करना उसके लिये आवश्यक नहीं है, और जब तक वह स्वयं त्याग-पत्र न दे वह संसद या विधान सभा का सदस्य बना रहता है। इसलिये जहां दलों का प्रश्न होता है वहां व्यक्तियों का महत्व नगण्य होकर दलों के वायदे ही मत का आधार माने जाते हैं।

दलों के लिये जहां व्यक्ति की महत्ता और योग्यता नगण्य होती है वहां जनता के लिये उम्मेदवार के चरित्र, योग्यता, ईमानदारी और कर्त्तव्य-परायणता की जांच करना परम आवश्यक है। यदि व्यक्ति में उपरोक्त योग्यता न हुई---फिर वह चाहे किसी दल का उम्मीदवार हो अथवा स्वतंत्र—तो वह शासन में न जनता की बात को रख सकेगा और न जनता का प्रतिनिधित्व करेगा, वरन् केवल स्वहित-साधन में लगा रह कर नाना प्रकार के अनाचारों और अनीतियों को अपनायेगा जिसका घातक प्रभाव देश और जनता पर पड़ता है। यह प्रभाव कितना भयानक और अनर्थकारी होता है उसे देश की जनता आज भी भुगत रही है। देश में आज भी जो नाना प्रकार के अनाचार, अत्याचार और अनैतिकतायें व्याप्त हैं वे केवल शासन में गलत और स्वार्थी व्यक्तियों के घुस जाने के कारण हैं, और यदि जनता ने इस कसौटी पर उम्मीदवार को न परखा तो आगामी निर्वाचन तक उसे मुसीबत का सामना करना पड़ता है।

दलों में दलबन्दी और उनके निकम्मेपन का मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ। राजनीतिक दलबन्दी का छोटे-छोटे दलों में सीमित होना अशक्त मंत्रि-मंडल के लिये जिम्मेदार होता है। फ्रांस का उदाहरण हमारे सम्मुख है

जहां दर्जनों दल लोकसभा में चुन लिये जाते हैं और किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत नहीं हो पाता है। परिणाम यह होता है कि सरकार सदा खिचड़ी होती है, और वह भी बिना पकी—हर महीने बनती है और बिगड़ती रहती है। भारत के कुछ राज्यों की राजनीति इसी प्रकार के गलत मार्ग पर अग्रसर हो रही है। यदि समय रहते सतर्क न रहा गया तो भय है कि कहीं यहां भी दूसरों की रोटी-रोजी का प्रश्न हल करना तो दूर रहा लोग अपनी ही उदर-पूर्ति में रत हो जायँगे। आये दिन केन्द्र और राज्यों के झगड़े रहा करेंगे, और हो सकता है केन्द्र के राज्यों के अधिकार हड़पने पड़ें जिसका परिणाम अन्ततोगत्वा राज्यों द्वारा विद्रोह हो सकता है। इससे केन्द्र स्वभावतः कमजोर हो जायगा, और जिस प्रकार कमजोर शरीर व्याधियों का घर हो जाता है उसी प्रकार कमजोर राष्ट्र शोषक-शक्तियों के हाथ की कठपुतली बन जाता है। यहां पर यह सब केवल इस प्रसंग से लिखा गया है कि मत-दाता को अपनी शक्ति कम नहीं आंकना चाहिये और इसलिये गैर जिम्मेदारी के साथ मत-दान नहीं करना चाहिये।

चुनाव विधि—

गत आम चुनावों से पूर्व चुनाव-आयोग द्वारा प्रसारित निबन्ध "मत-दाता क्या-क्या 'करें' और क्या-क्या 'न करें'" में इस पर प्रकाश डालते हुए कहा गया था कि प्रत्येक मतदाता अपना प्रतिनिधि चुनने में स्वतंत्र है। मतदान के अधिकार का अवश्य ही उपयोग करने के लिये किसी मतदाता को वाध्य नहीं किया जा सकता, किन्तु जन-हित की दृष्टि से प्रत्येक मतदाता का कह कर्तव्य है कि वह अपने इस अधिकार का पूरा उपयोग करे, क्योंकि मतदान द्वारा ही अपने देश की शासन सम्बन्धी नीति और पद्धति का समर्थन या विरोध किया जा सकता है।

मतदान की रीति निम्नप्रकार से बतलायी गई है—

> "चुनाव के दिन सभी जगह छुट्टी रहेगी। मतदाता को चाहिये कि वह उस दिन यथासंभव पहले ही अपनी सवारी से या पैदल, चुनाव केन्द्र पहुँच जाय। वहां उसे एक अभिन्नता परची मिलेगी जिसमें उसके मत का नम्बर तथा मतदाता सूची के उस पृष्ठ की संख्या लिखी रहेगी जिसमें उसका नाम

होगा। इस परची को लेकर अन्य मतदाताओं की भांति, उसे अपनी बारी पर मतदान के कमरे में जाने को मिलेगा। अन्दर चुनाव अधिकारी उसकी जांच करेगा। मत-पत्र डालने से पूर्व उसके बायें हाथ की तर्जनी (अंगूठे के बाद वाली उंगली) पर न छूटने वाली स्याही लगा दी जायगी। फिर इस अभिन्नता परची के बदले मत-पत्र मिलेगा। एक कमरे में सब उम्मीदवारों के बक्स रखे होंगे और प्रत्येक पर उम्मीदवार का चिन्ह भी चिपका रहेगा। अब मतदाता को इनमें से, अपने उम्मीदवार के बक्से में, मत-पत्र बिना मोड़े डाल देना होगा।"

"विधान सभा के चुनाव के कमरे से निकलने के बाद, मतदाता को संसद के चुनाव का मत-पत्र दिया जायगा। यहां पर भी उसे अपने उम्मेदवार के बक्स में मत-पत्र डालना होगा। मत-दाता का कार्य यहां समाप्त हो जाता है।"

उसी सूचना में आगे यह भी बतलाया गया कि जिस चुनाव-क्षेत्र से वधान सभा या संसद के लिये एक से अधिक उम्मेदवार चुने जायंगे वहां के लिये एक विशिष्ट पद्धति है।

कुछ चुनाव क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित हैं। इन चुनाव क्षेत्रों में मतदाताको एक के बजाय दो मत-पत्र मिलेंगे, जो अलग-अलग बक्स में डाले जायंगे। यदि गलती से ये दोनों मतपत्र एक ही बक्स-में पड़ गये तो इनमें से एक रद हो जायगा।

भारत में दो ऐसे चुनाव क्षेत्र हैं जहाँ मतदाता को तीन सदस्य चुनने हैं। इनमें एक तो उत्तरी बंगाल में संसद-चुनाव-क्षेत्र है और दूसरा बम्बई में विधान सभा चुनाव-क्षेत्र है। इन चुनाव-क्षेत्रों में प्रत्येक मत-दाताको अपने तीन मतपत्र अलग-अलग बक्स में डालने होगें।

मतदाता को अपना नाम एक स्थानसे अधिक स्थानों में नहीं लिखवाना चाहिये। उम्मेदवारों के समर्थन में आयोजित सभाओं में मतदाता को किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं करनी चाहिये। राजनीतिक सभाओंमें गड़-बड़ करनेवाले व्यक्तियों पर मुकदमा चलाने के अधिकार पुलिस को दिये गये हैं।

उम्मेदवार की लिखित स्वीकृति के बिना मतदाताको अपने उम्मेदवार के लिए कोई खर्च नहीं करना चाहिये।

मत बेचना न केवल अनाचार है, बल्कि कानून की दृष्टि से अपराध भी है। इसी प्रकार मतदाता पर अनावश्यक जोर डालकर जसे सामाजिक बहिष्कार या दैवी प्रकोप की धमकी देकर किसी उम्मेदवार के पक्ष में मत डलवाना भी अपराध है।

चुनाव के दिन सार्वजनिक सभा करने या प्रचार करने की मनाही है। चुनाव केन्द्र के पास चुनाव के सम्बन्धमें किसी प्रकार का चिन्ह या इश्तहार प्रदर्शित करनेवाले को बिना वारण्ट गिरफ्तार कर लिया जायगा और उस पर दो सौ पचास रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है।

उम्मेदवार, उसकी पार्टी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रबन्धित तांगा, मोटर आदि सवारी में बैठकर, यदि कोई मतदाता चुनाव केन्द्र में जायगा तो इसे अपराध माना जायगा। यहां तक कि दो परिवारों को भी किसी एक मोटर आदि में एक साथ बैठकर नहीं जाना चाहिये, जब कि वे संयुक्त रूप से उसका किराया भाड़ा न चुकायें।

किसी भी प्रकार से जाली वोट नहीं डालना चाहिये। जाली नाम धारण करना एक गम्भीर अपराध है और इसके लिए कानून में बहुत कड़ी सजा की व्यवस्था है।

मत पत्र की गोपनीयता की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। मतदाता को चाहिये, वह अपने निकट सम्बन्धी और मित्र को भी यह न बताये कि उसने अपना मत किसको दिया है। मतपत्र की गोपनीयता नष्ट करने के अपराध में जुर्माने के साथ तीन महीने की कैद की सजा दी जा सकती है।

मतदान के कमरे में, मतदाता को अधिक समय नहीं लगाना चाहिये। किसी बात का सन्देह होने पर चुनाव अफसर इस कमरे में झांककर देख सकेगा। मतदान के बक्स के साथ किसी प्रकार की छेड़-छाड़ न की जाय। चुनाव के कमरे से मतपत्र हटाना या इसमें कुछ गड़बड़ी करनेके अपराध की सजा १ वर्ष की कैद है। मत पत्र हटाने में सहायता देना भी इतना ही बड़ा अपराध है।

उपर्युक्त अपराधों के लिए सम्बद्ध व्यक्ति को न केवल सजा ही दी

जायगी बल्कि भावी चुनावों में मतदान का अधिकार भी उससे छीन लिया जायगा, क्योंकि मतदाता सूची से उसका नाम काट दिया जायगा।

मतदान संबंधी कानून इस प्रकार हैं—

यदि इस कानून के अधीन उचित रूप से मनोनीत किये जा चुके किसी उम्मीदवार के नामीकरणों की छान बीन के लिये नियत तारीख के के पश्चात् मृत्यु हो जाती है, और उसकी मृत्यु की रिपोर्ट रिटर्निंग अफसर द्वारा मतदान के कार्य आरम्भ से पहले प्राप्त की गई हो, तब चुनाव अधिकारी उक्त उम्मीदवार की मृत्यु के तथ्य की तसल्ली कर चुकने पर मतदान के खण्डन की आज्ञा देगा, तथा इस तथ्य की निर्वाचन कमीशन को तथा समुचित प्राधिकारी को भी सूचना देगा, तथा उक्त निर्वाचन सम्बन्धी सब कार्यवाहियां सब विषयों में नये रूप में प्रारम्भ होगी, मानों कि यह एक नये निर्वाचन के लिये है।

परन्तु बन्धान यह है कि उस उम्मीदवार के विषय में जिसका नामीकरण उक्त मतदान के खण्डन की आज्ञा के समय पर वैध था, पुनः नामीकरण आवश्यक नहीं होगा।

परन्तु अधिक बन्धान यह है, कि ऐसा व्यक्ति जो कि नियम ३७ की उपनियम (१) के अधीन उक्त मतदान के खण्डन की आज्ञा से पहले अपनी उम्मीदवारी की वापसी की सूचना दे चुका है ऐसे खण्डन की आज्ञा के पश्चात् उक्त निर्वाचन के लिये एक उम्मीदवार के रूप में मनोनीत होने के लिये अयोग्य या अनधिकृत होगा। (नियम ५२)

यदि उन उम्मीदवारों की जो कि उचित रूप में मनोनीत हुए थे, तथा जो नियम ३७ की उपनियम (१) में अथवा स्थिति अनुसार उस उपनियम में जो कि ३६ की उपनियम ४ के साथ पढ़ी जानेवाली है, उल्लिखित रीति तथा समय के भीतर अपनी उम्मीदवारियों को वापस नहीं ले चुके हों, संख्या भरे जाने वाले स्थानों की संख्या से बढ़ जाती है, तो चुनाव अधिकारी तत्काल उम्मीदवारी के वर्णमाला के क्रम से नाम तथा पते जैसा कि वह

नामीकरण पत्रों में दिये गये हों, ऐसे अन्य विवरणों के साथ जैसा कि वह निर्धारित हों, रखने वाली एक सूची को ऐसे रूप तथा रीति में जैसा कि वह निर्धारित हो, प्रकाशित करेगा तथा मतदान लिया जायगा।

यदि उम्मीदवारों की संख्या भरे जाने वाले स्थानों की संख्या के बराबर हो, तो चुनाव अधिकारी तत्काल ऐसे सब उम्मीदवारों को उन स्थानों की पूर्त्ति के लिये उचित रूप में निर्वाचित हुआ घोषित करेगा।

यदि ऐसे उम्मीदवारों की संख्या भरे जाने वाले स्थानों की संख्या से कम हो, तब चुनाव अधिकारी तत्काल ऐसे उम्मीदवारों को निर्वाचित हुआ घोषित करेगा और समुचित प्राधिकारी शासकीय गजट में अधिसूचन द्वारा उक्त निर्वाचन क्षेत्र, अथवा उस राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों अथवा सदस्यों या सम्बन्धित निर्वाचक मण्डल के सदस्यों अथवा स्थिति अनुसार करग विधान परिषद् के निर्वाचित सदस्यों के शेष बचे स्थान या स्थानों को ऐसी तारीख से जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा इस निमित्त नियत की जाय और अधिसूचन में उल्लिखित होगी, पहले भरने के लिए एक व्यक्ति या व्यक्तियों को निर्वाचित करने के लिए आमन्त्रित करेगा।

परन्तु बन्धान यह है कि, जहां उक्त निर्वाचन क्षेत्र या राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्य अथवा सदस्यों अथवा निर्वाचक मण्डल के सदस्यों या कुरग विधान परिषद के निर्वाचित सदस्य इस उपधारा के अधीन पहले ही आमन्त्रित हो चुकने पर उक्त रिक्त स्थान या स्थानों को भरने के लिए एक व्यक्ति या व्यक्तियों की आवश्यक संख्या को निर्वाचित करने में विफल रह चुका या रह चुके हैं, तब सम्बन्धित प्राधिकारी ऐसे एक व्यक्ति या व्यक्तियों को निर्वाचित करने के लिए, उस तारीख तक जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा इस निमित उल्लिखित की जाय, ऐसे निर्वाचन क्षेत्र या ऐसे सदस्यों को पुन: आमन्त्रित करने के लिये बाध्य नहीं होता। (नियम ५३)

इस धारा के उपबन्ध किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में किसी ऐसे निर्वाचन के बारे में लागू होंगे, जहां यों भरे जाने वाले स्थानों में अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिये एक या अधिक रक्षित स्थान पूर्ति होने के लिये (जो कि निम्न में "रक्षित स्थानों" के नाम से निर्दिष्ट हैं) समाविष्ट हैं।

यदि रक्षित स्थानों को भरने के लिये निर्वाचित होने योग्य उम्मीदवारों की संख्या ऐसे स्थानों की संख्या के बराबर है, तब तत्काल वह सब उम्मीदवार रक्षित स्थानों को भरने के लिये निर्वाचित हुए घोषित होंगे, तथा शेष स्थान या स्थानों के भरने के लिये नियम ५३ में नियत की प्रक्रिया का अनुकरण किया जायगा।

यदि रक्षित स्थानों को भरने के लिये निर्वाचित होने योग्य उम्मीदवारों की संख्या ऐसे स्थानों की संख्या से अधिक है, परन्तु उम्मीदवारों की कुल योग संख्या ऐसे स्थानों की संख्या से अधिक है, परन्तु उम्मीदवारों की कुल योग संख्या भरे जाने वाले स्थानों की कुल योग संख्या के बराबर है, तब रिटानग अफसर भाग्यपत्रक (lot) द्वारा जो कि उस द्वारा ऐसी रीति में निकाला जायगा जैसा कि निश्चित हो, पहले रक्षित स्थानों को भरने के लिये निर्वाचित होने योग्य उम्मीदवारों में से उन स्थानों पर निर्वाचित हुये घोषित होने वाले उम्मीदवारों का चुनाव करेगा, तथा तब यों चुनाव किये उम्मीदवारों को उक्त रक्षित स्थान भरने के लिये उचितरूप में निर्वाचित हो चुके घोषित करेगा, और तत्पश्चात् शेष उम्मीदवारों को शेष बचे स्थानों को भरने के लिये उचितरूप में निर्वाचित हो चुके घोषित करेगा।

यदि रक्षित स्थानों को भरने के लिये निर्वाचित होने योग्य उम्मीदवारों की संख्या ऐसे स्थानों की संख्या से अधिक हो जाती है, तथा उम्मीदवारों की संख्या का कुल जोड़ भी भरे जाने वाले स्थानों की संख्या के कुल योग से अधिक हो जाता है, तब नियम ५३ की उपनियम (१) में नियत की प्रक्रिया का अनुकरण किया जायगा, और मत दान लिये जा चुकने के पश्चात् रिटर्निंग अफसर सब से पहले उनको जो कि रक्षित स्थानों को भरने के लिये निर्वाचित होने के लिये योग्य होने पर अधिकतम मतसंख्या प्राप्त कर चुका है, रक्षित स्थानों को भरने के लिये उचित रूप में निर्वाचित हो चुके घोषित करेगा, और तब शेष बचे उम्मीदवारों में उनको जो कि अधिकतम मत संख्या प्राप्त कर चुके हों, शेष रहे स्थानों को भरने के लिये उचित रूप में निर्वाचित हो चुके घोषित करेगा।

यदि रक्षित स्थानों को भरने के लिये निर्वाचित होने योग्य उम्मीदवारों की संख्या ऐसे स्थानों की सख्या की अपेक्षा कम है, तब,—

(क) वह सब उम्मीदवार तत्काल रक्षित स्थानों को भरने के लिए निर्वाचित हो चुके घोषित होंगे ;

(ख) सम्बन्धित समुचित प्राधिकारी शासकीय गजट में अधिसूचन द्वारा शेष रहे रक्षित स्थान या स्थानों को उस तारीख से पहले जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा नियत की जाय तथा उक्त अधिसूचन में उल्लिखित होगी भरने के लिए एक व्यक्ति या व्यक्तियों को निर्वाचित करने के लिए उक्त निर्वाचन क्षेत्र को आमान्त्रत करेगा,

परन्तु बन्धान यह है, कि जहां ऐसी निर्वाचन क्षेत्र पहले ही यो आमन्त्रित हो चुकने पर उक्तरक्षित स्थान या स्थानों को भरने के लिए एक व्यक्ति या व्यक्तियों की आवश्यक सख्या को निर्वाचित करने में विफल रह चुका है, तब प्राधिकारी ऐसे एक व्यक्ति या व्यक्तियों को निर्वाचित करने के लिए उस तारीख तक जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा इस निमित्त लल्लिखित की जाय, ऐसे निर्वाचन क्षेत्र को पुनः आमन्त्रित करने के लिए बाध्य यहीं होगा।

इस धारा में उम्मीदवारों सम्बन्धी निर्देशों की व्याख्या होगी, उन उम्मीदवारों सम्बन्धी निर्देश जो कि उचित रूप में मनोनीत किये थे, तथा जो धारा ३७ की उपधारा (१) में उल्लिखित रीति तथा समय के भीतर अपनी उम्मीदवारियां वापस नहीं ले चुके हों। (नियम ५४)

संदेहों के निराकरणार्थ अब से घोषित किया जाता है, कि अनुसूचित जन जातियों का कोई सदस्य किसी ऐसे स्थान को जो कि उन जातियों या जनजातियों के सदस्यों के लिये रक्षित नहीं, यदि वह संविधान तथा इस ऐक्ट के अधीन ऐसे स्थान को ग्रहण करने के लिये अन्यथा योग्य हो, तो उसे ग्रहण करने के लिये अयोग्य नहीं होगा। (नियम ५५—)

उम्मीदवार—

स्वतत्र भारत के प्रथम निर्वाचन में संसद व राज्य विधान सभाओं के लिये १४ अखिल भारतीय राजनीतिक दलों के चार हजार उम्मीदवार

खड़े हुये। चुनाव में भाग लेने वाले सभी प्रमुख दलों ने अपने-अपने चुनाव घोषणा-पत्र निकाले और चुनाव आयोग द्वारा निश्चित किये गये चुनाव-चिन्ह चुने। उदाहरण के लिये कांग्रेस ने दो बैलों की जोड़ी कंधे पर जुआ रखे हुए, सामाजवादी दल ने वरगद का पेड़, साम्यवादी दल ने हंसिया और गेहूँ की बाल, किसान मजदूर प्रजा पार्टी ने झोपड़ी, हिन्दू महासभा ने घुड़सवार, जन संघ ने दीपक, अग्रगामी (मार्क्सवादी) दल ने शेर, अग्रगामी दल (सुभाषवादी) ने मनुष्य का हाथ और रामराज्य-परिषद ने उगता हुआ सूर्य चुने। विभिन्न दलों और उम्मेदवारों ने अपने घोषणा-पत्र तथा चुनाव-चिन्ह का भांति-भांति से प्रचार किया और मतदाता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया। इसी प्रसंग में उन्हें मतदाताको यह भी शिक्षण देना पड़ा कि वे मतदान किस प्रकार करें। मत-दाता को तो प्रत्येक दल के उम्मीदवार और उसके समर्थकों ने एकाधिक वार ठोक-पीटकर समझा दिया कि मत-दान किस प्रकार होता है, तथा मत-दाता को क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। फिर भी मत-दाताओंने सभी मतदान केन्द्रों में अपनी अज्ञानता का परिचय दिया है। बहुत सी स्त्रियों ने या तो अपने मत-दान के अधिकार का उपयोग ही नहीं किया, या किया तो गलत। चुनाव आयोग कार्यालय से प्राप्त सूचना से पता चलता है कि तीस लाख महिलाओं ने मत-दाता सूची तैयार होते समय अपना नाम नहीं बतलाया जिस कारण उन्हें इस बहुमूल्य अधिकार से वंचित होना पड़ा। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य भारत, राजस्थान और विन्ध्य प्रदेश में दस प्रतिशत महिला मत-दात्रियों ने जान-बूझ कर मत-दान नहीं किया।

जहां तक उम्मीदवारों का प्रश्न है उनमें से भी बहुतों को चुनाव के नियमों का ठीक-ठीक पता न था। निर्वाचन से पूर्व अक्टूबर १९५१ में चुनाव आयोग द्वारा "उम्मीदवार क्या क्या करें और क्या-क्या न करें शीर्षक एक और निबंध प्रसारित किया गया जिसमें लिखा था कि "मत-दाता, उम्मीदवार और उम्मीदवार के समर्थकों सभी के लिये यह हितकर

होगा कि निर्वाचन संबन्धी नियमों को खूब समझ कर उनका हृदय से पालन किया जाय। संविधान और संसद से पारित निर्वाचन सबन्धी विधियों द्वारा इस विषय में कर्तव्याकर्तव्य की स्थिति विस्तार सहित स्पष्ट की गई है।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मत-दान के द्वारा नागरिकों की सामूहिक अग्नि परीक्षा होती है। उसे यह कृत्य सम्पादित करने से पूर्व भली-भांति जान लेना चाहिए कि मत का क्या महत्व है, उस मत पर कितनी बातें निर्भर करती है, मत का दुरुपयोग होने से कितनी महान् क्षति हो सकती है। जब तक राजनीतिक कर्त्तव्य का समुचित ज्ञान नहीं होता केवल राजनीतिक चेतना से ही समस्या हल नहीं हो जाती। चुनाव के समय जाल-साजी, रिश्वतखोरी* और साम्प्रदायिक प्रचार अक्षम्य अपराध होते हैं। एक शताब्दि पूर्व तो मतदान में रिश्वतखोरी इतनी अधिक होती थी कि बतलाते हैं १८३० में लीवरपूल के चुनाव में १५ पौंड से १०० पौंड तक प्रति मत की कीमत हो गई थी। किन्तु जब से ब्रिटिश लोकसभा ने भ्रष्टाचार विरोधी कानून बनाया तब से इस अपराध में कमी हुई। इगलैंड का पिछली शताब्द का इतिहास इस प्रकार की दिलचस्प कहानियों से भरा पड़ा है कि किस प्रकार पूरे चुनाव-क्षेत्रों का ठेका हो जाता था और मत प्राप्त करने के लिये क्या-क्या हथकण्डे प्रयोग में लाये जाते थे। अभी भी अपवादस्वरूप कहीं-कहीं अनुचित रूप से मत प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। भारत में चुनाव के नियम इतने कड़े हैं कि छोटा सा अपराध भी पकड़ा जा सकता है। इसलिये लोक-प्रतिनिधित्व कानून में निर्वाचन-व्यय का सही ब्योरा प्रस्तुत करने की व्यवस्था है।†

* May: Parliamentary Practice, P. 42

†(१) प्रत्येक निर्वाचन के पश्चात् निर्धारित समय के भीतर ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के बारे में जो कि एक उम्मीदवार के रूप में मनोनीत हो चुका है, उस द्वारा तथा उसके निर्वाचन एजन्ट द्वारा हस्ताक्षरित उस व्यक्ति के निर्वाचन व्ययों का एक ब्योरा चुनाव अधिकारी को प्रस्तुत किया जायगा।

स्वतंत्र भारत में इतने विशाल क्षेत्र में आम चुनावों की सफलता विश्व के इतिहास में एक बेमिसाल चीज है। साढ़े सत्रह करोड़ वयस्क मत-दाताओं के लिये उन्नीस लाख मत-दान बक्स, दो लाख मत-दान केन्द्र और बावन करोड़ मत-दान पत्रों की व्यवस्था करना एक असाधारण बात थी। मत-दान की गोपनीयता इन चुनावों की एक विशेषता रही है।* यथा-संभव यह प्रयत्न किया गया कि चुनावों में किसी प्रकार भ्रष्टाचार और अवैध आचरण तथा निर्वाचन सम्बन्धी अपराध न हों। जालसाजी न होने देने के लिये

(२) ऐसा प्रत्येक ब्योरा ऐसे रूप में होगा, तथा उन विवरणों को रखेगा जैसा कि वह निर्धारित हों, तथा उक्त उम्मीदवार और उसके निर्वाच एजन्ट द्वारा निर्धारित रूप में मैजिस्ट्रेट के सामने शपथ या विधिपूर्ण प्रतिज्ञान पर की घोषणाओं के साथ नत्थी होगा।

(३) इस धारा में किसी चाज़ के पाय जाने पर भी जहां कि भारत से अनुपस्थित होने के कारण कोई उम्मीदवार निर्वाचन व्ययों के ब्योरा पर हस्ताक्षर करने के लिये तथा उक्त घोषणायें करने के लिये असमर्थ है, वहां उक्त ब्योरा केवल निर्वाचन एजन्ट द्वारा हस्ताक्षरित तथा प्रस्तुत किया जायगा, और घोषणा केवल उक्त निर्वाचन एजन्ट द्वारा नत्थी की जायगी, और उक्त उम्मीदवार अपने भारत लौटने के पश्चात् चौदह दिनों के भीतर ऐसे रूप में जैसा कि निर्धारित हो; मैजिस्ट्रेट के सामने शपथ या विधिपूर्वक प्रतिज्ञान पर की घोषणा को उक्त चुनाव अधिकारी को प्रस्तुत करायगा। (लोक प्रतिनिधित्व कानून, नियम ७६)

निर्वाचनों पर निर्वाचन व्ययों का अधिक से अधिक परिमाण तथा निर्वाचनों के सम्बन्ध में भुगतान के लिये भरती किये व्यक्तियों की संख्या तथा उसका प्रकार ऐसा होगा, जैसा कि निर्धारित हो। (नियम ७७)

सिवाय जहाँ तक कि निर्धारित हो, यह अध्याय राज्य-परिषद् में एक या अधिक स्थान (सिवाय एक प्राथमिक निर्वाचन के) भरने के लिये अथवा किसी राज्य के विधान मण्डल में उक्त राज्य की विधान सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचन पर स्थान या स्थानों को भरने के लिये किसी निर्वाचन पर लागू नहीं होगा।

---

* देखिए परिशिष्ट 'ग'

भी पृथक उपबन्ध है*। निर्वाचनों के संचालन के लिये नामीकरण इत्यादि की तिथियां निश्चित करना, निर्वाचन की सार्वजनिक सूचना देना, उम्मीदवारों का नामीकरण, नामीकरण-पत्र की प्रस्तुति तथा एक वैध नामीकरण के लिये अपेक्षण या मांगें, † धननिक्षेप, नामीकरणों की सूचना तथा उनकी छानबीन करने के लिये समय तथा स्थान, नामीकरणों की छानबीन, उम्मीदवारी की वापसी, नामीकरण का प्रकाशन, अन्य निर्वाचनों पर उम्मीदवारों का नामीकरण, इन विषयों का विवेचन लोक प्रतिनिधित्व कानून में सविस्तार दिया गया है।

गत चुनाव की अन्य विशेषतायें :

(क) गत आम चुनावों का सिंहावलोकन करके देखा गया है कि जिन २६ देशी नरेशों ने चुनाव लड़ा (२२ विधान सभाओं के लिये और ७ संसद के लिये) उनमें से २४ (२० विधान सभाओं तथा ४ संसद के लिये) सफल हुए। सफल देशी नरेशों में १३ स्वतंत्र उम्मीदवार थे, ७ कांग्रेस टिकट पर २ गणतंत्र-परिषद और २ राम-राज्य परिषद के टिकटों पर सफल हुए।

देशी नरेशों के सम्बन्ध में लोक-प्रतिनिधित्व कानून में विशेष उपबन्ध किया गया है जिसमें कहा गया है—

(१) यदि किसी भूतपूर्व भारतीय रियासत का राजा इस कानून के अधीन किसी निर्वाचन के लिये बतौर एक उम्मीदवार के नामीकृत किया जाय, तो जाप्ता

* निर्वाचकों की धोखादेही रोकने के लिये विशेष प्रकिया :—ऐसे प्रत्येक निर्वाचक के जो कि एक मतदान-स्थल पर मतदान करने के प्रयोजनार्थ एक मतपरचा या परचों के लिये प्रार्थना करता है, उसे ऐसा परचा या परचे सुपुर्द करने से पहले तथा किसी पोलिंग स्टेशन पर मतदान करने के लिपे किसी व्यक्ति सम्बन्धी किसी मत-परचा की सुपुर्दगी का निषेध करने के लिये यदि उस समय पर ऐसा व्यक्ति ऐसे परचे के लिये प्रार्थना करता है, जब कि वह अपने अंगूठे या किसी अन्य ऊंगली पर पहले से ही ऐसा निशान या चिन्ह रखता हो, जैसा कि निर्वाचकों की धोखादेही रोकने के लिये ही, पक्की स्याही से अंगूठे या किसी अन्य ऊंगली को चिन्ह या निशान लगाने के लिए इस कानून के अधीन बनाये नियमों द्वारा उपबन्ध बनाया जाय। —लाकप्रतिनिधित्व कानून नियम ६१

† देखिये परिशिष्ठ 'ख'

दीवानी, ८१०८ (१९०८ के ऐक्ट ५) की धारा ८७ ख० की उपधारा (१) तथा दण्ड विधि संहिता (जाप्ता फौजदारी) १८९८ (१८९८ के ऐक्ट ५) की धारा १०७ क की उपधारायें (२) और (३) के उपबन्ध, ऐसे राजा के विषय में, उसका बतौर ऐसे उम्मीदवार के नामीकृत होने के दिनांक से शुरू होकर धारा ६७ के अधीन उक्त निर्वाचन का परिणाम जिस दिनांक पर प्रकाशित हो उस दिनांक पर समाप्त होनेवाली अवधि के दौरान में लागू नहीं होंगे, तथा तत्पश्चात् भी इस ऐक्ट के भाग ६ के अधीन ऐसे निर्वाचन की वैधानिकता या विनियमितता पर आपत्ति उठाने के लिये की जानेवाली किन्हीं भी कार्यवाहियों के सम्बन्ध में भी लागू नहीं होंगे, या न ही वे उक्त राजा के विरुद्ध किन्हीं फौजदारी कार्यवाहियों के सम्बन्ध में भी लागू होंगे, जो कि भारतीय दण्ड विधान संहिता (ताजिरात हिन्द) १८६० (१८६० के ऐक्ट ४५) के अध्याय ९ क के अधीन, या इस ऐक्ट के भाग ७ के अध्याय ६ के अधीन दण्डनीय एक ऐसे अपराध के लिये दायरे की जाती हों, जिसके कि बारे में उस राजा पर ऐसा आरोप लगाया गया हो कि उस ने उक्त अपराध ऐसे निर्वाचन पर या उसके सम्बन्ध में किया। (नियम १६८)

(ख) २१६ महिलाओं ने विधान सभाओं का और ६६ ने ससद का चुनाव लड़ा जिनमें से क्रमशः ८२ और १९ सफल हुईं। १४ महिलायें राज्य-परिषद में चुनी गईं।

विधान सभाओं के चुनाव में १२ सदस्य बहुत थोड़े (१ मत से लेकर १९ मत के अनन्तर तक) बहुमत से विजयी हुए। बीकापुर (उत्तर प्रदेश) के चुनाव क्षेत्र से तो एक स्वतंत्र उम्मीदवार दूसरे स्वतंत्र उम्मीदवार से एक मत और कांग्रेस उम्मीदवार से चार मत अधिक पाकर निर्वाचित हुआ। आसाम, बिहार बम्बई, पश्चिमी बंगाल, मध्यभारत, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश में अत्यल्प बहुमत से जीतने वाले सफल उम्मीदवारों के और भी उदाहरण हैं जिनमें से किसी एक के विरुद्ध भी चुनाव अपील नहीं हुई। लोकसभा के चुनाव में थाना (बम्बई) चुनाव क्षेत्र से जी० डी० वरटक (कांग्रेस) डा० चोइथराम गिडवानी के विरुद्ध केवल ९ मतों से सफल हुए, किन्तु डा० गिडवानी द्वारा चुनाव अपील होने से श्री वरटक के स्थान पर डा० गिडवानी को निर्वाचित घोषित किया गया।

लोकसभा के ४९८ स्थानों में से ७२ स्थान परिगणित जातियों और

२६ अनुसूचित क्षेत्रों के लिये सुरक्षित थे तथा राज्य विधान सभाओं के लिये ३,२८३ स्थानों में से क्रमशः ४७७ और १६२ स्थान (जिनमें आसाम के अनुसूचित प्रदेशों के स्वशासित जिलों के १७ सदस्य भी सम्मिलित हैं) सुरक्षित थे, आम चुनाव क्षेत्रों से केवल एक परिगणित जाति का सदस्य लोक सभा के लिए और तीन विभिन्न विधान सभाओं के लिये निर्वाचित हुए। लोक सभा विषयक सामान्य निर्वाचनों के परिणामों का प्रकाशन होता है।

संसद्-सदस्य

हेनरी आठवें के समय संसद्-सदस्य (Member of Parliament) से अभिप्राय संसद् के दोनों सदनों के सदस्य से होता था, किन्तु तत्पश्चात् इस शब्द का प्रयोग केवल लोकसभा के सदस्यों के लिए किया गया*। उसी परम्परा के अनुसार भारतवर्ष में भी संसद का मतलब दोनों सदने समझी जाती हैं, किन्तु संसद सदस्य से केवल लोकसभा के सदस्यों का बोध होता है।

निर्वाचन के पश्चात् सदन में जो कार्यवाही होती है वह मैं प्रक्रिया वाले प्रकरण में आगे दे रहा हूँ। संसद् के सदस्य का अपने दल के प्रति, सदन के प्रति तथा राष्ट्र के प्रति क्या कर्त्तव्य होते हैं इस पर भी मैं पहले के पृष्ठों में लिख चुका हूँ। यहां यह बतलाना आवश्यक है कि संसद का सदस्य होने के नाते उसे अपना दायित्व किस प्रकार निभाना होता है। चुनाव के पश्चात् संसद् का सदस्य अपने चुनाव क्षेत्र का ही प्रतिनिधि

* T. Erskine May : Parliamentary Practice, twelfth edition.

नहीं रह जाता वरन् सारे देश का प्रतिनिधि समझा जाता है* । जैसा कि एडमंड बर्क ने ३ नवम्बर सन् १७७४ को अपने निर्वाचन क्षेत्र ब्रिस्टल में एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए कहा था कि—

"संसद् भिन्न-भिन्न तथा परस्पर विरोधी स्वार्थों के प्रतिनिधियों की महासभा नहीं है······आपको निःसंदेह एक सदस्य चुनना है। किन्तु जब आपने उसे चुन लिया तब वह अकेला ब्रिस्टल का सदस्य नहीं रह गया वरन् संसद् का सदस्य बन गया ।"†

और उससे तीस वर्ष पूर्व विलियम यग ने तो इससे भी अधिक स्पष्ट भाषा में इसकी व्याख्या की थी। "‡

* संसद् के सदस्य द्वारा ली जानेवाली शपथ या प्रतिज्ञान का प्रपत्र :—

"मैं,···अमुक,···जो राज्य-परिषद् अथवा (अथवा लोकसभा) का सदस्य निर्वाचित या (नाम-निर्देशित हुआ हूँ ईश्वर की शपथ लेता हूँ / सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा, तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूँ उसके कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वाहन करूँगा।"

† Sir Herbert Williams : The member of Parliament and his Constituency.' (Parliamentary Government in England, p. 56)

‡ "After a gentleman is chosen, he is the representative, or, if you please, the attorney of the people of England, and as such is at full freedom to act as he thinks best for the people of England in general. He may receive, he may ask, he may even follow the advice of his particular constituents, but he is not obliged, nor ought he, to follow their advice, if he thinks it inconsistent with the general interest of his country." (ibid)

ब्रिटिश लोकसभा के सदस्य के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त कराने के लिये मैं श्री डब्ल्यू० एफ० डीड्स (एम० पी०) के एक लेख का कुछ अंश नीचे उद्धरित करता हूँ। लेख बहुत दिल्चस्प है, इसकी रोशनी में हम ब्रिटिश संसदीय पद्धति को देखकर भारतीय संसद का कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। डीड्स लिखते हैं कि :—

"प्रत्येक अंग्रेज अपने संसद-सदस्यों को कुछ अंश तक मूर्ख समझता है। आप चौंकिये नहीं : यह अंग्रेजी चरित्र की विशेषता है, यह मानों एक परम्परागत प्रथा है। न इसे अवांछनीय कहा जा सकता है। यह प्रथा किसी को भी अत्यधिक महत्वपूर्ण और तानाशाही बनने से रोकती है यह सार्वजनिक जीवन के दिखावट का दुर्गुण दूर रखता है, पर कुछ भी हो, संसद् लोकतंत्रीय जीवन का प्रतिनिधि होता है। अतएव चाहे उसका कभी'कभी उपहास किया जा सकता है, पर संसद-सदस्यता की संस्था को भला बदनाम कैसे होने दिया जा सकता है ? प्रत्येक मानवीय संस्था में, चाहे कितनी गहरी और आदरणीय उसकी प्रथा क्यों न हो, मानवीय तत्व ही मुख्य महत्व रखता है। जब यह समकालिक, मानवीय तत्व अपने उच्च स्तर से गिरता है तब वह संस्था भी नष्ट हो सकती है।

"प्रथम महायुद्ध तक संसद के सदस्य के लिये पैसेवाला होना यदि आवश्यक नहीं तो उसके लिये सहायक अवश्य था। मेरे विचार से अब यह सब दलों के विषय में कहा जा सकता है कि सदस्य चुनने में पैसे का प्रश्न नहीं उठता। संसद के किसी सदस्य के पास आय का अपना साधन हो सकता है। और किसी संसद्-सदस्य के पास अपनी वृत्ति अथवा अपने कारबार होने के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। इस प्रकार वह एक पेशेवर राजनीतिज्ञ बनने से बचता है और अपने संसदीय जीवन में अपने विशेष ज्ञान का पुट दे सकता है।

"यों आप कह सकते हैं कि प्रवेश का द्वार अधिक विस्तृत हो गया है, पर प्रवेश के पीछे का मार्ग अधिक कठिन बन गया है। लगभग ५० वर्ष पूर्व संसद का एक सदस्य शायद आठ हजार व्यक्तियों का प्रतिनिधि होता था। लोकसभा के कार्यों की अवधि छोटी हुआ करती थी। विशेष अवसरों के अतिरिक्त उपस्थिति अनिवार्य नहीं थी। संसद के ऐसे व्यक्तिगत सदस्य जो प्रशासकीय पदों के आकांक्षी नहीं थे अपनी संसद की सदस्यता सरलता से निभा सकते थे, और संसद की सदस्यता के लिए वे वेतन इत्यादि नहीं पाते थे।

"प्रथम युद्ध के पश्चात् ४०० पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता था जो बढ़कर १६३७ में ६०० पौंड हुआ और १६४६ में एक हजार पौंड तक पहुँचा। सुनने में तो यह बहुत पर्याप्त लगता है पर बहुत काम और व्यय भी इसके साथ-साथ होता है। वयस्क मताधिकार के कारण संसद का सदस्य आज शायद चालीस से लेकर साठहजार व्यक्तियों का प्रतिनिधि होता है। आजकल व्हाइटहाल में सार्वजनिक कार्य एक बड़ी मात्रा में केन्द्रित होता है और वहां से मंत्रियों के द्वारा लोकसभा तक आता है।"

आधुनिक जन-कल्याण-राज्य में संसद का सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्र का कल्याण-अधिकारी बनता जा रहा है। उसके पास प्रति दिन डाक का एक बड़ा थैला आता है। इसमें कभी-कभी तो ५० पत्र तक होते हैं जिनमें से शायद एक दर्जन व्यक्तिगत समस्याओं से सम्बन्धित होने के कारण मंत्रियों तक ले जाये जाते हैं (संसद के सदस्य मंत्रियों तक सीधे पहुंच सकते हैं) लोकसभा के अधिवेशन वर्ष में ३५ सप्ताह होते हैं। यद्यपि अधिकारिक रूप से लोक सभा की बैठक की अवधि ढाई बजे दोपहर से दस बजे रात्रि तक होती है, पर कभी कभी बैठक सारी रात चलती रहती है।

संसद के सदस्यों को प्रातः कालीन समितियों में उपस्थित होना पड़ता है और अन्य कई छोटे-मोटे कर्तव्य उनपर होते हैं। कभी-कभी वे अपने निर्वाचन क्षेत्र के लोगों को वेस्टमिनिस्टर भवन दिखाने ले जाते हैं, ग्रीष्म ऋतु में संसद के सदस्य को सप्ताह में दो बार लगभग दो घंटे प्रातःकाल इस कार्य में लग सकते हैं। मैं तो स्कूल के बच्चों के दल से बहुत घबराता हूँ। मैं उन्हें अत्यधिक चतुर पाता हूँ। घटनाओं इत्यादि की तिथियां मैं भूल जाया करता हूँ। उधर बच्चे स्कूल द्वारा आयोजित इस सैर से पूर्व आवश्यक बातें और तिथियां रटे हुए होते हैं। संसद के सदस्य की भूलचूक को ठीक करने में वे संकोच नहीं करते।

कार्य के आधिक्य की दृष्टि से सप्ताहांत का दिन सबसे अधिक कठिन हो सकता है, यद्यपि सप्ताहांत के दिन अंग्रेजों की वैयक्तिक सम्पत्ति समझे जाते हैं पर संसद के सदस्यों पर यह बात लागू नहीं। शुक्रवार को लोक सभा की बैठक शीघ्र समाप्त हो जाती है और अधिकांश सदस्य अपने-अपने निर्वाचन

क्षेत्रों में चले जाते हैं, शायद उसी रात्रि को एक दो सभाओं में उपस्थित होने के लिये।

शनिवार को सदस्य को स्थानीय सार्वजनिक कार्यों में उपस्थित रहना पड़ता है। उसे स्थानीय समस्याओं की छानबीन करनी होती है। और निर्वाचन क्षेत्र के लोगों से भेंट भी आवश्यक होती है। निर्वाचन क्षेत्र के लोग अपने प्रतिनिधि की प्रतीक्षा करते हैं और उससे भेंट की इच्छा रखते हैं। संसदीय सदस्य के स्थानीय संघटन की बीस (ग्रामीण क्षेत्रों में तो शायद पचास) तक शाखायें हो सकती हैं और सदस्य को इनके समस्त सामाजिक आयोजनों पर दृष्टि रखनी होती है। इसके अतिरिक्त वर्ष में कम से कम एक बार उनसे बोलने की आवश्यकता भी होती है।

स्मरण रखना आवश्यक है कि संसद का सदस्य प्रत्येक का प्रतिनिधि होता है, केवल अपने दल का नहीं। अतएव उसे दल संबन्धी कार्यों को करने के अतिरिक्त उन कई स्थानीय संघटनों और स्वैच्छिक निकायों के लिये प्राप्य होना चाहिये जो अंग्रेजी जीवन के अंग हैं। मैंने संसद के सदस्य के कर्त्तव्यों के उस अंग पर प्रकाश डाला है जिसका सम्बन्ध उसके निर्वाचन क्षेत्र से है। कारण, पिछले कुछ वर्षों के बड़े परिवर्तन इसी दिशा में देखे गये हैं। एक समय था, (मैं कोई बहुत पुरानी बात भी नहीं कह रहा हूँ) जब सदस्य अपने निर्वाचन-क्षेत्र के संघटनों को एक हजार पौंड वार्षिक देकर वर्ष भर में वहां का दो या चार चक्कर लगा सकता था। और अब? अब निर्वाचन क्षेत्र वाले उसे एक हजार पौंड वार्षिक की आय का साधन देते हैं और यह देखना चाहते हैं कि काम किस प्रकार चल रहा है।

सार्वजनिक जीवन में प्रवेश पर कोई विवश तो किया जाता नहीं। और सार्वजनिक जीवन के इच्छुक नवयुवक को यह प्रारंभ से जानना चाहिये कि वह जीवन कैसा है जिसे वह अपनाना चाहता है। इन सबके विषय में अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की बातें कही जा सकती हैं। संसद का सदस्य जो कुछ है उनमें से उसका एक रूप राष्ट्र के विधान-निर्माता का है। अपने कार्य को समुचित रूप से करने के लिये उसे लिखने-पढ़ने; अध्ययन और सामयिक घटनाओं से परिचय रखने के लिये पर्याप्त समय मिलना चाहिये। इसका

अर्थ क्या है ? इसका अर्थ आप शायद यह समझें कि संसद के सदस्य को जर्मनी अथवा मार्शल सहायता, फारस अथवा एशिया इत्यादि के विषय में सब कुछ जानना चाहिये। वास्तव में बात यहीं तक सीमित नहीं है—आज इसका अर्थ निर्वाचन क्षेत्र के दैनिक जीवन से परिचित होना भी है।

यह निर्विवाद है कि आजकल मन्त्रिगण अत्यधिक कार्यव्यस्त होते हैं। उनका ध्यान बटाने वाली चीजें बहुत हो गई हैं—क्या विविध सार्वजनिक कार्य, क्या दल सम्बन्धी कार्य और क्या सभा सम्मेलन इत्यादि। उन अनेक समस्याओं के प्रति जो इस उद्वेलित संसार में राजनीतिज्ञों का सामना करती हैं संतुलित दृष्टिकोण रखने के लिए मस्तिष्क की आवश्यकता है। किन्तु इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये मन्त्रियों की सामर्थ्य के प्रति हमारे मन में प्रायः सन्देह उठता है। अपेक्षाकृत कुछ कम मात्रा में संसद के सदस्य भी अत्यधिक शीघ्रता से अत्यधिक कार्य करने की वैसी ही इच्छा से ग्रस्त हैं।

जनतंत्र एक कठिन परीक्षक है। जनता का मनोविनोद और उसके कल्याण का चिन्तक, विधि का ज्ञाता और विधान का निर्माता, मित्र और सखा—ये सारे गुण जनतंत्र के प्रतिनिधियों के लिये आवश्यक हैं। एक समय था जब निर्वाचन अभियान के पश्चात् (दूसरे अभिमान तक के लिये) राजनीतिक सक्रियता बहुत कम हो जाया करती थी। पर अब यह सब बदल गया है। अब दो अभियानों के मध्य बहुत कम विश्राम मिलता है। हमें इन प्रवृत्तियों पर सावधान दृष्टि रखनी चाहिये। अत्यधिक कार्यव्यस्त और थका राजनीतिज्ञ अपना महत्त्व बहुत कुछ खो बैठता है। वस्तुतः वह प्रायः एक आपत्ति बन जाता है। हमारे जीवन का प्रवाह बहुत शीघ्रता से चल रहा है। अच्छा हो यदि स्वयं विधान-निर्मातागण इस प्रवाह को कम कर एक उदाहरण दें।"

डीड्स के लेख का उपरोक्त उद्धरण कुछ लम्बा है। तथापि उसने ब्रिटिश संसद के सदस्य और उसकी समस्याओं का सक्षेप में जो उल्लेख किया है वह यत्किंचत परिमाण में भारत की संसदीय समस्याओं का द्योतक है क्योंकि ब्रिटिश संसदीय पद्धति की रोशनी में हम भारतीय पद्धति के भावी विकास की कल्पना करते हैं।

सचिवालय

संविधान के अनुच्छेद ९८ में संसद के सचिवालय का उपबन्ध, है जिसके अनुसार दोनों सदनों के पृथक-पृथक अथवा संयुक्त संसदीय सचिव तथा अन्य अधिकारी होते हैं। सचिवालय मुख्य रूप से दो विभागों में विभक्त होता है, एक विभाग कार्यपालिका से सम्बन्ध रखता है और दूसरा संसदीय प्रक्रिया से। कार्यपालिका से सम्बन्ध रखने वाला विभाग एक ओर सरकार के प्रशासकीय कार्यों का संचालन करता है, दूसरी ओर सदन में प्रस्तुत किये जाने वाले वार्षिक वित्त विवरण, अनुदान, सरकारी विधेयक, तथा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर की सामग्री तैयार करता हैं।

लोकसभा के संसदीय कार्यों को सम्पादित करने वाले विभाग को संसदीय सचिवालय स्वीकार किया जाय या नहीं, इस पर काफी विवाद चल रहा है। २५ नवम्बर १९५२ को राज्य-परिषद में संसदीय सविचालय नाम पर भी आपत्ति उठाई गयी और फिर वाद-विवाद हुआ। मद्रास के श्री एच० डी० राजा ने कहा कि लोकसभा के सचिवालय को संसदीय सचिवालय कहना राज्य-परिषद के अधिकारों, उसके सम्मान और विशेषाधिकारों पर हस्तक्षेप करना है।उपाध्यक्ष श्री एच० वाई० कृष्णमूर्ति राव ने बताया कि इस मामले को लोकसभा के अध्यक्ष के सामने पेश किया जा चुका है और आशा है कि परस्पर विचार विनिमय करके समझौता हो जायगा।

प्रश्नोत्तर के तुरन्त बाद श्री राजा ने कहा कि भवन के सामने संसदीय सूचना कार्यालय लिखा हुआ है, वास्तव में वह लोकसभा का सूचना कार्यालय है। संसद में लोकसभा और राज्य-परिषद दो सदन हैं इसलिए उस सदन के कागजातों में 'भारतीय लोकसभा' लिखा होना चाहिये, अन्यथा यह हमारे अधिकारों पर हस्तक्षेप करना है। उपाध्यक्ष श्री रावने कहा कि मामला लोकसभा के अध्यक्ष के सामने पेश हो चुका है इसलिए सदस्य को अधिकारों पर किसी प्रकार के हस्तक्षेप की चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

जिस वर्ग के हाथ में प्रशासकीय यन्त्र होता है उसे 'नौकरशाही' शब्द से सम्बोधित किया जाता है, जो आदर सूचक शब्द नहीं है।

अंग्रेजी में इसे 'ब्यूरोक्रेसी' कहते हैं। इंगलैण्ड में प्रशासनाधिकारियों का लगभग अस्सी वर्ष पूर्व वर्गीकरण हो चुका था, जब सन् १८७० में तत्कालीन प्रधान मंत्री ग्लैड्सटन ने प्रशासकीय योग्यता का एक माप-दण्ड तैयार किया और उसके आधार पर प्रशासनाधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था स्वीकार की। भारतवर्ष में सन् १६१६ से पूर्व सचिवालय की स्थापना का प्रश्न ही पैदा नहीं होता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में जब कुशासन और उसके फलस्वरूप भ्रष्टाचार काफी बढ़ने लगा, तब उसे रोकने के लिये सर्वप्रथम १७६३ में लॉर्ड कार्नवालिस ने कम्पनी की नौकरी के लिये योग्यता का एक मापदण्ड बनाया। उसके पश्चात् समय-समय पर कई बार प्रशासकीय सुधार हुए। किन्तु उस समय इंगलैण्ड की भांति भारतवर्ष में भी प्रशासन संबन्धी सुधार और अधिकारियों के पदों का वर्गीकरण करने की आवश्यकता नहीं अनुभव की गई।

सन् १९१९ में कर्मचारियों की दो प्रकार की सेवाओं—अखिल भारतीय तथा प्रान्तीय—के लिये दो वर्गों में विभक्त करके विभिन्न विभागों के कर्मचारियों का प्रकार वर्गीकरण किया गया, जैसे भारतीय सीविल सर्विस, भारतीय पुलिस सर्विस, भारतीय मेडिकल सर्विस और तदनुसार प्रान्तीय सीविल, प्रान्तीय पुलिस सर्विस इत्यादि। कर्मचारियों का वेतन, भत्ता, वार्षिक वेतन-वृद्धि, सेवाओं का कार्य-काल तथा पेन्शन आदि निश्चित किये गये और उनके आचरण सम्बन्धी नियम बनाये गये। आरम्भ में अखिल भारतीय सेवाओं के लिये भारतवासियों को कोई स्थान नहीं मिलता था। कांग्रेस तथा भारत के शिक्षित वर्ग का प्रारम्भिक आन्दोलन अखिल भारतीय नौकरियों में प्रवेश के लिये भारतवासियों को अधिकाधिक अवसर दिलाने के लिये थे। धीरे-धीरे सारे नौकरशाही वर्ग का भारतीयकरण कर दिया गया†। आज यह वर्ग इतनी उन्नति कर चुका है कि इसे अन्य देशों के योग्य अधिकारियों के समकक्ष रखा जा सकता है।

यह कहना अनुचित नहीं कि संसद पर मंत्रिमंडल का प्रभाव होता है,

---

† 1935 Act (Sec. 305)

तथा प्रशासन की समस्त शक्ति सचिवालय के उच्चाधिकारियों के हाथ में होती है। उच्च शिक्षा प्राप्त इन कर्मचारियों को प्रशासन का कई वर्ष पुराना अनुभव होता है। कहां पर कब क्या करना चाहिये इसका उन्हें पूरा ज्ञान होता है इसलिए मंत्रियों को, जिनमें अधिकांश को न तो प्रशासन का ही कोई अनुभव होता है और न वे अपने आधीन विभागों की ही कोई जानकारी रखते हैं, * सदा अपने आधीन सचिवों का कृपाभिलाषी होना पड़ता है। सचिवों की भी कई श्रेणियां होती हैं। एक व्यक्ति सारे सचिवालय का मुख्य सचिव होता है जिसका कार्य, अन्य कार्यों के अतिरिक्त, सामान्य प्रशासन देखना है। सचिवालय में मन्त्रिमंडल के समान ही, और जहां मन्त्रिमंडल कमजोर होते हैं वहां सर्वाधिक प्रतिष्ठा मुख्य सचिव को प्राप्त होती है। फिर विभागीय सचिव, सहायक सचिव, उप-सचिव इत्यादि होते हैं। सभासचिव का पद इनसे भिन्न है, ससद के सदस्यों में से उप-मंत्री और सामान्य सदस्यों के बीच यह एक ऐसा पद है जिसके द्वारा उसे मंत्रिमण्डल के कार्यों का अनुभव होता है और भविष्य में उप-मंत्री बनने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। इसलिये वह सचिव से पृथक, कार्यपालिका की श्रेणि में आ जाता है। मन्त्रिमण्डल की नीति सदा सचिवों की सम्मति से निर्धारित होती है। मंत्री जब अपनी नीति के सम्बन्ध में सचिव को एक योजना प्रस्तुत करने का आदेश देता है सचिव का कर्त्तव्य है कि वह मंत्री को स्पष्ट सम्मति दे कि अमुक नीति का अमुक परिणाम होगा, तथा अमुक नीति कहां तक व्यवहारिक हो सकती है, कहां तक नहीं।

किन्तु मंत्रिमण्डल केवल सचिव की सम्मति पर ही काम करे तो न उसकी अपनी कोई नीति रह जायगी, न कार्यक्रम। तब न दलों का अस्तित्व ही रह सकेगा और न जन-तंत्र ही कायम रहेगा। मंत्रिमण्डल को अपने दल की

---

* "The British War office has been headed at times by a philosopher or a journalist, the admiralty by a merchant or a barrister, and the Board of Trade by a university professor."

—Munro.

नीति और चुनाव के समय जनता के समक्ष प्रसारित किये गये घोषणा-पत्र के अनुसार कार्य करना होता है। सत्तारूढ़ दल की नीति भूतपूर्व मंत्रिमण्डल की नीति से सर्वथा भिन्न हो सकती है—और प्रायः ऐसा होता ही है—तब नया मंत्रिमण्डल भी अपनी योजनाओं की सफलता के लिये सचिवालय के कर्मचारियों से हार्दिक सहयोग की भावना से आदेश पालन किये जाने की अपेक्षा करता है। सचिव तथा अधीनस्थ अन्य समस्त कर्मचारी नये मंत्रिमण्डल की नीति और कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये भी भूतपूर्व मंत्रिमण्डल के कार्यकाल के समान सचेष्ट रहते हैं और उसके प्रति भी अपनी निष्ठा उसी प्रकार व्यक्त करते हैं जिस प्रकार अपने पहले महाप्रभुओं के प्रति करते थे। भारतवर्ष में उन निष्ठावान अधिकारियों ने उदाहरण प्रस्तुत किया है जो ब्रिटिश शासन-काल में विदेशी सत्ता के सच्चे स्वामिभक्त नौकर होने के नाते राजाज्ञा का पालन करने के लिये राष्ट्रविरोधी कार्यों को करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते थे, किन्तु स्वतंत्रता मिल जाने के बाद वही कर्मचारी राष्ट्रीय सरकार के विश्वासपात्र अधिकारी सिद्ध हुए हैं।

सचिवालय के कर्मचारियों का ही नहीं बल्कि समस्त प्रशासनाधिकारियों का एक ऐसा वर्ग है जो उच्च शिक्षा प्राप्त करके सरकारी नौकरी करने में ही अपना गौरव समझता है। एक सफल राजकर्मचारी बनना उनके जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। नौकरशाही* के इस वर्ग का रहन-सहन, शिक्षा, आचार-विचार सब कुछ जन-साधारण से भिन्न होता है, इसलिये वे जनता की वास्तविक समस्याओं को नहीं जान सकते। प्रशासकीय योग्यता के साथ-साथ राज्याधिकारियों में जनता की आवश्यकताओं और भावनाओं के समझने की इच्छा होना भी अपेक्षित है।

अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि संसदीय विभाग का कार्य सम्पादित करने के लिये अधिकारियों के लिये केवल प्रशासन का अनुभव ही पर्याप्त

---

* ९ जुलाई १९५२ को मैसूर विधान सभा में राजस्व-मंत्री श्री मनडप्पा ने कहा कि राज्य का प्रशासकीय यंत्र सुचारु रूप से चल रहा है और अधिकारियों ने अपने को वर्तमान आवश्यकता के अनुकूल बना लिया है। इसलिये उन्हें नौकरशाही के नाम से सम्बोधित करना उचित नहीं।

नहीं है. उन्हें संसदीय कार्यों की विशेष योग्यता भी होनी चाहिये। इंगलैण्ड जैसे देश में इस विषय के विशेषज्ञ ही संसदीय विभाग में नियुक्त किये जाते हैं। वहां का संसद्-सचिव तो इतना अनुभवी होता है कि प्रायः उसीकी सम्मति से समस्त संसदीय कार्य सम्पन्न होते हैं। ब्रिटिश लोकसभा के क्लर्क (वहां संसद्-सचिव को 'क्लर्क' कहा जाता है) टी० असकाइन को संसदीय विषयों में रुचि रखनेवाला कौन व्यक्ति नहीं जानता। उसकी लिखी पुस्तक 'पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस' का संसदीय क्षेत्रों में धर्मग्रन्थ के समान आदर होता है। बहुत से लोग तो कौमुदी के सूत्रों की भांति उसके कुछ भागों को रट लेते हैं। संसद सचिव इतना अनुभवी और योग्य होता है कि उसके संकेत पर अध्यक्ष तथा उसका कार्यलय संचालित होता है। हाल ही में लोक सभा के अध्यक्ष श्री मावलंकर ने ब्रिटेन, कनाडा, अमेरिका आदि देशों का भ्रमण करके वहां की संसदीय प्रक्रिया का अध्ययन किया। उन देशों में उन्हें जो अनुभव हुआ भारत लौटने पर उसका यहां आकर मावलंकर जी ने उल्लेख किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि लोकतंत्र और संसदीय कार्यों की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि संसदीय विभाग सर्वथा स्वतंत्र हो जिसमें योग्य, ईमानदार और संसदीय विषयों की विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्तियों हों।

सचिवालय का उल्लेख करते समय सरकार की फीताशाही, को जिसे 'लालफीता' के नाम से कुख्याति प्राप्त हो चुकी है, नहीं भुलाया जा सकता। बहुत से काम जिन्हें तत्काल करना आवश्यक होता है, और जो आसानी से किये भी जा सकते हैं लालफीते की फाइलों में महीनों और वर्षों दबे रहते हैं। २६ नवम्बर १९५२ को लोकसभा में प्रश्नोत्तर के समय यह बतलाया गया कि सन् १९४३ में तार विभाग के एक डिवीजनल इंजीनियर के विरुद्ध गंभीर आरोप लगाये गये थे जिनका अभी तक कोई निर्णय नहीं हो पाया है और इस बीच उक्त कर्मचारी डाइरेक्टर भी बना दिया गया है। आरोपों की जांच में नौ वर्ष लग गये और अभी भी कोई परिणाम नहीं निकला, इस पर सरकारी वक्तव्य जो भी हो,

यह निर्विवाद है कि सरकारी यंत्र की खराबी के कारण ही यह बिलम्ब हुआ। फीताशाही का एक दूसरा नमूना उत्तर-प्रदेश का है। २३ जुलाई, १९५२ को विधानसभा में सरकार की ओर से यह बतलाया गया कि रामपुर जिला औषधालय सलाहकार समिति उससे डेढ़ वर्ष पूर्व (अर्थात् जनवरी १९५१) में बना दी गई थी, किन्तु उसके सदस्यों को २३ जुलाई १९५२ तक यह सूचना भी न दी गई कि वे सदस्य बना दिये गये। इसलिये इस बीच समिति की कोई बैठक होने का प्रश्न ही कैसे उठ सकता था? इस प्रकार के उदाहरण प्रायः सभी राज्यों और सभी जिलों के लगभग सभी विभागों से मिल सकते है।

विभागों के इतना अधिक बढ़ा दिये जाने से प्रशासन में और भी अधिक उलझनें आ गईं, और ज्यों-ज्यों जनता की मांगें बढ़ती गईं द्रौपदी की चीर की तरह लाल फीता भी बढ़ता गया। जैसा कि श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कहा है, "आजका प्रशासन ऐसा तूल हो गया है कि जहां एक आदमी की जरूरत है वहां तीन आदमी काम करते हैं और इन तीनों के बारह सहायक हैं। यदि इनमें से केवल एक को वेतन देना होता तो सरकार अच्छा वेतन दे देती, किन्तु चूंकि सभी को देना पड़ता है, इसलिए पर्याप्त नहीं दिया जा सकता जिससे सभी को कष्ट होता है। सरकारी प्रशासन की समस्या संभाल से बाहर हो गई है और मैं इस बात के लिये परेशान हूँ कि इसे किस प्रकार सरल बनाया जाय।"

वस्तुतः यह समस्या मद्रास के मुख्य मंत्री के लिये ही नहीं वरन् केन्द्रीय सरकार और समस्त राज्यों के प्रशासन के लिये एक बड़े संकट की है। गत वर्ष (२० अप्रैल १९५१) बिहार सरकार ने इसकी जांच-पड़ताल के लिये अर्थ मंत्री डाक्टर अनुग्रह नारायण सिंह की अध्यक्षता, में ६ व्यक्तियों की एक सीमिति बनाई थी। समिति की ३६ बैठके हुईं और उसने विभिन्न सरकारी कार्यालयों की जांच करके तथा कुछ सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के बयान लेकर लगभग ८७ फुलस्केय पृष्ठों की रिपोर्ट जून १९५२ में प्रस्तुत की। इसमें सन्देह नहीं उसकी जांच काफी विस्तृत थी। समिति ने जो रिपोर्ट दी उसमें प्रशासकीय पुनर्सङ्गठन के सिलसिले में बतलाया गया कि

विभिन्न विभागों को कार्य के आधार पर न बांटकर क्षेत्रीय एवं जन-संख्या के आधार पर बंटा जाना चाहिये। समिति ने अर्थ-नियन्त्रण को कड़ा करने, सभी अवस्थाओं में पैसे के मामले में मुस्तैदी से जांच करने और कोष का गबन एवं दुरुपयोग करने वालों को कठोर दण्ड देने की भी सिफारिश की। व्यय के बढ़ने के कारणों में समिति ने विभागों का अधिक केन्द्रीय-करण, एक ही काम के लिये अधिक कर्मचारियों की नियुक्ति और उसके लिये कई विभाग खोलना आदि कारण बतलाये।

सिन्हा जांच समिति की रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि मंत्रियों को स्वयं अपने खर्च से गाड़ी खरीदनी चाहिये। इसके लिये सरकार उन्हें कुछ कर्ज दे सकती हैं। मुफ्त कार के बदले में सरकार मंत्रियों को दो सौ पचास रुपये मासिक सवारी व्यय की मद में भत्ता दे सकती है। इसके अतिरिक्त मंत्रियों को मुफ्त मकान देना बन्द कर देना चाहिये। पूरक अनुदान प्रस्तुत करने की प्रथा की आलोचना करते हुए समिति ने कहा है कि इसे विशेष अवस्थाओं में ही प्रस्तुत किया जाना चाहिये। किन्तु यहां इसको प्रति वर्ष प्रस्तुत करने की प्रथा चल पड़ी है। इसका कारण यह है कि यहां का अनुदान मौलिक रूप से तैयार नहीं किया जाता बल्कि उसे एक संग्रह का रूप दे दिया जाता है।

सिन्हा जांच समिति की देखा-देखी केन्द्रीय प्राक्कलन समिति ने भी सचिवालय के पुनर्सङ्गठन की सिफारिश की थी। सात-सूत्री सिफारिश में समितिने आर्थिक स्थिति सुधारने और कर्मचारियों की योग्यता के मापदण्ड पर पुनर्विचार करने के लिये विशेष जोर दिया। जुलाई १९५२ में प्राक्कलन समिति की सिफारिशों की घोषणा के पश्चात् नवम्बर १९५२ में पुनः मंत्रालयों के व्यय की मदों में कमी करने की सिफारिश की गई। मालूम हुआ है कि खाद्य, कृषि और श्रम मंत्रालयों के व्यय में कमी करने की ओर कदम भी उठाया जा रहा है। किन्तु इससे भी तब तक आशातीत लाभ नहीं हो सकता जब तक सर्वाङ्गीय जांच-पड़ताल करके कोई व्यापक योजना केन्द्र और राज्यों के लिये समान रूप से कार्यान्वित नहीं की जाती।

न्यायपालिका

मौर्य साम्राज्य की न्याय व्यवस्था का विवेचन करते हुए श्री वाजपेयी लिखते हैं कि उसमें न्याय विभाग छ श्रेणियां में विभक्त था। ग्राम पंचायत ग्राम के विवादों पर विचार करती थीं जिनमें गोप वा ग्रामाधिकारी न्यायाधीश का आसन ग्रहण करता था। ग्राम पंचायत चोर वा जार को गांव से बहिष्कृत कर देती थी। प्रत्येक नगर वा संग्रहण में न्यायालय होते थे, जिन में आस-पास के दस गांवों के विवादों का विचार होता था। इन्हें परगना अदालत कह सकते हैं। फिर ऊपर ४०० गांव वाले नगरों वा द्रोणामुखों के न्यायालय थे, तहसील वा सब-डिविजन की अदालत कहे जा सकते हैं। इनके ऊपर स्थानीय वा जिले का न्यायालय था। स्थानीय न्यायालय के ऊपर साम्राज्य के दो प्रदेशोंके मध्य भाग के न्यायालय तथा इनके ऊपर पाटलिपुत्र के न्यायालय थे और सबसे ऊपर सम्राट् का न्यायालय था जिसमें न्यायकर्ताओं के साथ बैठकर सम्राट् व्यवहार पर विचार करता था।*

स्वतंत्र न्यायपालिका लोकतंत्र की सच्ची कसौटी होती है। ब्राइस के शब्दों में

"किसी सरकार की उत्तमता का सर्वोत्कृष्ट चिन्ह उत्तम न्याय-विभाग होता है, क्योंकि जन-साधारण को यह विश्वास होना आवश्यक है कि नागरिक की सुरक्षा के लिए शीघ्र तथा उचित न्याय की व्यवस्था है।"

भारतीय न्यायपालिका को 'संविधान का संरक्षक' कहा गया है। न्याया-पालिका संविधान की व्याख्या करती है। संघ सरकार और राज्य सरकार में अथवा राज्य सरकारों का आपस में झगड़ा या संवैधानिक मतभेद पैदा हो जाय तो न्यायपालिका उसका निर्णय करती है।

* हिन्दू राज्य शास्त्र, पृष्ठ २३१–२३२

संविधान के १२४ वें अनुच्छेद के अनुसार भारतका एक उच्चतम् न्यायलय है जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य सात न्यायधीश होते हैं। न्यायाधीशों की पदावधि उनकी पैंसठ वर्ष की आयु तक होती है। भारत का कोई भी नागरिक जो किसी उच्च न्यायालय में कम से कम पांच वर्ष तक न्यायधीश के पद पर काम कर चुका हो, या किसी उच्चन्यासालय में कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो, या राष्ट्रपति की राय में वह पारंगत अधिवक्ता रह चुका हो, उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है। उसे अपदस्त करने के लिए संसद के दोनों सदनों द्वारा राष्ट्रपति के पास उसके विरुद्ध समावेदन प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है।

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को पांच हजार रुपये तथा अन्य न्यायाधीशों को चार हजार रुपये मासिक वेतन के रुप में प्राप्त होते हैं। अपनी पदावधि समाप्त कर लेने के पश्चात् उन्हें किसी न्यायालय में वकालत करने की अनुमति नहीं होती।

उच्चतम न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय होता है, इस लिए उसके निर्णय और आदेश देश के समस्त न्यायालयों को मान्य होते हैं। विशेष अवस्थाओं में उच्चतम न्यायालय को दीवानी, फौजदारी तथा संवैधानिक तीनों प्रकार के मामलों में अपील सुनने का अधिकार होता है। अनुच्छेद १३७ और १३८ के अनुसार उच्चतम न्यायालय को व्यापक पुनर्विलोकन क्षेत्राधिकार प्राप्त है। सार्वजनिक महत्व की विधि पर राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय से परामर्श करता है।

संसद द्वारा बनाई गई विधि के अनुसार, जिस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हो गई हो, उच्चतम न्यायालय, न्यायालय की व्यवस्था और प्रक्रिया सम्बन्धी नियम बना सकता है।

तुलनात्मक दृष्टि से भारत की न्यायपालिका को अन्य देशों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र और व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। इंगलैण्ड में न्यायालय को संसद द्वारा बनाई गई विधिको अवैध घोषित करने का अधिकार नहीं है। न फ्रान्स में ही, जहां यद्यपि लिखित संविधान है, उच्चतम न्यायालय को संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि पर पुनर्विचार करने का अधिकार है। अमेरिका

में भी यद्यपि संविधान द्वारा न्यायपालिका को ऐसा कोई अधिकार नहीं दिया गया है, तथापि अपनी स्वाभाविक प्रक्रिया के द्वारा और संविधान का लिखित एवं संघात्मक स्वरूप होने के कारण संघ न्यायालय को स्वतः यह अधिकार प्राप्त हुआ है कि अमेरिकन कांग्रेस (संसद) अथवा राज्य-व्यवस्थापिकाओं के द्वारा बनाई गई विधि को यदि वह संविधान के विपरीत पावे तो अवैध घोषित करे। भारत और अमेरिका के उच्चतम न्यायालयों के गठन और कार्य में काफी समानता होते हुए भी यह अन्तर है कि अमेरिका का संघ न्यायालय केवल संवैधानिक विषयों में अपना निर्णय देता है, अन्य विषयों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता, जब कि भारत का उच्चतम न्यायालय अपीलों की सुनवाई के लिए सर्वोच्च न्यायालय है।

यहां पर प्रसंगवश यह भी बतलाना आवश्यक है कि भारतकी न्याय-पालिका ब्रिटिश शासन काल से ही सच्चे न्याय के लिए काफी विख्यात रही है। १९१९ के कानून में तो न्यायालयों को व्यवस्थापिकाओं के ऊपर भी कुछ अधिकार था, और आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने उसका प्रयोग भी किया,* किन्तु १९३५ के कानून की धारा ४१ और ८७ के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया कि न्यायालयों को व्यवस्थापिकाओं के कार्यों में हस्तक्षेप करने का अधिकार न होगा। नये सविधान के अनुसार न्यायालयों को संसद की कार्यवाहियों की जांच करने का अधिकार नहीं है†।

उच्चतम न्यायालय के आधान राज्यों में उच्च न्यायालय होते हैं जो राज्य के लिये सर्वश्रेष्ठ न्यायालय होते है। उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीश होते हैं। कोई भी भारतीय नागरिक जो भारत के राज्य क्षेत्र में कम से कम दस वर्ष तक किसी न्यायाधीश के पद पर रहा है या उच्च न्यायालय में दस वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है। उसकी

---

* (1924), 51 cal, 874 An injunction was desired to Prevent tho submission of a supplementary demand for ministerial salaries.

† अनु० १२२

नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश और राज्यपाल की सम्मति से होती है। मुख्य न्यायाधीश को तथा अन्य न्यायाधीशों को ३५०० रु० मासिक वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्हें विधि द्वारा निश्चित् भत्ता, छुट्टी, पेंशन तथा अन्य सुविधायें प्राप्त होती हैं। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश राज्यपाल के सम्मुख शपथ ग्रहण करते हैं। न्यायधीश ६० वर्ष की अवस्था तक अपने पद पर बने रह सकते हैं। उच्च न्यायालय को राज्य-क्षेत्र के भीतर प्रत्येक न्यायालय का निरीक्षण करने का अधिकार है।

अधीनस्थ न्यायालयों के सम्मुख विचाराधीन ऐसे विषयों को जिनका संबन्ध संविधान की व्याख्या से है उच्चन्यायालय अपने पास ले सकता है। उच्च न्यायालय के अधीन कई अधीन न्यायालय होते हैं जिनमें जिला न्यायालय विशेष उल्लेखनीय होता है। जिला न्यायाधीश की नियुक्ति राज्यपाल करता है। उसके नीचे न्यायाधीश लोक-सेवा आयोग द्वारा नियुक्त होते हैं।

राज्य कार्यपालिका

भारतीय संघ में सम्मिलित इकाइयों को राज्य कहा गया है। जिस समय संविधान लागू हुआ था उस समय उनकी सख्या २८ थी, बाद में कूच-बिहार के बंगाल में विलिन हो जाने से यह संख्या २७ हो गई। निकट भविष्य में बिलासपुर का हिमाचल प्रदेश में एकीकरण हो जाने से यह सख्या २६ ही रह जायगी।

संघ में सम्मिलित राज्यों को 'क', 'ख', 'ग' और 'घ' चार भागों में विभक्त किया गया है। उनका यहां पर संक्षेप में क्रमशः विवेचन किया जाता है।

'क' भाग में वे राज्य सम्मिलित किये गये हैं जिन्हें पहले ब्रिटिश भारत के प्रान्त कहा जाता था। भारतीय संविधान की प्रथम अनुसूची में उनके नाम ये हैं—आसाम, उड़ीसा, पंजाब, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मद्रास, मध्य प्रदेश, बम्बई और उत्तर-प्रदेश।

'ख' भाग में सम्मिलित राज्यों के नाम निम्नलिखित हैं—जम्मू तथा काश्मीर, त्रावणकोर,-कोचीन, पटियाला तथा पूर्वी पञ्जाब राज्य-सघ, मध्य भारत, मैसूर, राजस्थान, विन्ध्य प्रदेश, सौराष्ट्र और हैदराबाद। 'ख' भाग में उन राज्य-क्षेत्रों को शामिल किया गया है जो संविधान के लागू होने से पूर्व देशी राज्यों के रूप में थे। इनमें से केवल तीन राज्य जम्मू तथा काश्मीर, मैसूर और हैदराबाद को पृथक इकाई के रूप में रखा गया है और शेष राज्यों में से एकाधिक राज्य-समूहों का एकीकरण करके उन्हें 'ख' भाग में रखा गया है।

'ग' श्रेणी के राज्यों के नाम ये हैं—अजमेर, कच्छ, कुर्ग, त्रिपुरा, दिल्ली, बिलासपुर, भोपाल, मनीपुर और हिमाचल प्रदेश। इन राज्य-क्षेत्रों में दो प्रकार के प्रदेशों को शामिल किया गया है। एक वे जो पहले चीफ कमिश्नरियां थी (जैसे दिल्ली, कुर्ग और अजमेर-मेरवाड़) और दूसरे छोटे-छोटे राज्य या राज्य-समूह।

प्रथम अनुसूची के भाग 'क' के राज्य

राज्यपाल—

'क' श्रेणी के राज्यों की कार्यपालिका का प्रधान राज्यपाल कहलाता है। राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है। पाकिस्तान के अतिरिक्त राष्ट्र-मंडल के अन्य देशों में राज्यपाल (गवर्नर) की नियुक्ति ब्रिटिश राजा करता है। पाकिस्तान ने भी भारतीय परम्परा को अपनाया है। राज्यपाल की पदावधि सामान्यतः पांच वर्ष होती है। कोई भी भारतीय नागरिक, जिसकी अवस्था पैंतीस वर्ष की होती है, राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है। वह किसी सदन का सदस्य नहीं होता। (और विधान-मंडल की सदस्यता के लिये उम्मीदवार होने पर उसे राज्यपाल के पद से त्याग-पत्र देना होता है।) वह अन्य कोई लाभ का पद नहीं धारण कर सकता है। उसे ५,५०० रुपया मासिक वेतन, निःशुल्क निवास स्थान तथा उपलब्धियां, भत्ते आदि प्राप्त करने का अधिकार है। राज्य की समस्त कार्यपालिका-शक्ति संवैधानिक रूप से राज्यपाल में निहित होती है।

प्रत्येक राज्यपाल को अपना पद ग्रहण करने से पूर्व उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के सम्मुख निम्नलिखित शपथ लेनी पड़ती है:—

"मैं,......अमुक......ईश्वर की शपथ लेता हूँ / सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूँ कि मैं श्रद्धापूर्वक (राज्य का नाम) के राज्य के राज्यपाल का कार्यपालन (अथवा राज्यपाल के कृत्यों का निर्वाहन) करूंगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परीक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा और मैं···(राज्य का नाम) की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूँगा।" ※

शपथ के पश्चात् वह शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर भी करता है।

राज्य के मुख्य मंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा होती है, और मुख्य मन्त्री की सम्मति से वह मंत्रि-मन्डल के अन्य सदस्यों को नियुक्त करता है। जो अधिकार संघ में राष्ट्रपति के होते हैं राज्य के सीमित क्षेत्र में लगभग वही अधिकार राज्यपाल के होते हैं। मंत्रि-मंडल की नियुक्ति करने के अतिरिक्त

※ अनु० १५९

राज्यपाल महाधिवक्ता (जिसकी पदावधि साधारणतः पांच वर्ष होती है) और राज्य लोक-सेवा आयोग की नामजदगी भी करता है। जिन राज्यों में कुछ प्रदेश अथवा जातियां अनुसूचित प्रदेश या अनुसूचित जातियां घोषित किये गये हैं उनके प्रशासन की विशेष जिम्मेदारी राज्यपाल की होती है।

राज्यपाल के विधायिनी अधिकार—

राज्य विधान मण्डल के किसी सदन का सदस्य न होते हुए भी राज्यपाल को किसी भी सदन की बैठक बुलाने और उसमें भाषण देने का अधिकार होता है (संविधान में लिखा है कि सदन के पहले अधिवेशन की अन्तिम तिथि तथा दूसरे अधिवेशन की पहली तिथि के बीच ६ मास से अधिक समय का अन्तर नहीं होना चाहिये)। दो सदनों वाले विधान-मंडल में विधान परिषद के कुछ सदस्यों को वह मनोनीत करता है। विधान सभा में भी, यदि ऐंग्लो-भारतीयों को निर्वाचन द्वारा न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व न मिले तो, राज्यपाल कुछ ऐंग्लो-भारतीयों को मनोनीत कर सकता है।

प्रत्येक विधेयक सदन अथवा सदनों द्वारा पारित हो जाने के पश्चात् राज्यपाल की स्वीकृति के लिये जाता है। जब तक उसपर राज्यपाल के हस्ताक्षर नहीं होते वह अधिनियम नहीं बन सकता। राज्यपाल किसी भी विधेयक को (यदि वह धन विधेयक नहीं है) संशोधन सहित, अथवा बिना संशोधन किये भी, सदन के पास पुनः विचारार्थ लौटा सकता है। विधेयक के पुनः पारित होने पर उसे उसपर हस्ताक्षर करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे विधेयक को, जिससे राज्य की न्यायपालिका की शक्ति कम होने का भय हो, राज्यपाल राष्ट्रपति की सम्मति के लिये रोक सकता है।

जब राज्य विधान-मंडल का अधिवेशन न हो और ऐसी परिस्थिति आ पड़े कि जिससे तत्सम्बन्धी कानून बनाकर उसके द्वारा प्रशासन के संचालित करना आवश्यक हो तो राज्यपाल ऐसे अवसर पर अध्यादेश बना सकता है। किन्तु राज्य विधान-मंडल का अधिवेशन होने के ६ सप्ताह पश्चात् वह अध्यादेश (यदि इस बीच विधान-मण्डल द्वारा उस अध्यादेश के सम्बन्ध में कोई और निर्णय न कर लिया गया हो) स्वतः समाप्त हो जाता

है। राज्यपाल की सिफारिश के बिना विधान मण्डल में कोई भी अनुदान स्वीकृत नहीं समझा जाता।

राज्य कार्यपालिका की शक्ति के अन्तर्गत किसी कानून के उल्लंघन करने वाले अपराधी को राज्यपाल क्षमा कर सकता है या उसके दण्ड में कुछ कमी कर सकता है।

मंत्रिमण्डल—

'क' भाग के राज्यों के मंत्रिमण्डल के गठन के लिये वही व्यवस्था स्वीकार की गई है जो केन्द्र में प्रचलित है। अन्तर केवल यही है कि 'क' भाग राज्यों में राष्ट्रपति के स्थान पर राज्यपाल होता है। कुछ राज्यों जैसे बिहार, उड़ीसा और मध्य-प्रदेश के मंत्रिमण्डलों में अनुसूचित जातियों और पिछड़ी जातियों की देख-रेख के लिये एक मंत्री रखने की व्यवस्था की गई है। साधारण रूप से राज्य का प्रशासन मंत्रिमण्डल ही करता है किन्तु कुछ ऐसे विषय हैं जिन्हें मन्त्रिमण्डल के अधिकार-क्षेत्र से पृथक—राज्यपाल के पास रखा गया है।

विधान-मण्डल

राज्य का विधान-मण्डल समस्त राज्य के लिये अथवा राज्य के किसी क्षेत्र के लिये कानून बनाता है। राज्य अनुसूची में उल्लिखित विषयों पर कानून बनाने का उसे अधिकार है।

भाग 'क' में सम्मिलित राज्यों के विधान-मण्डल से अभिप्राय विधान सभा और विधान-परिषद दोनों से होता है। उनका कार्य-काल पांच वर्ष होता है। आसाम उड़ीसा और मध्य-प्रदेश तीन राज्यों को छोड़कर बाकी राज्यों में दोनों सदन हैं।

विधान-सभा*

विधान सभा का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन की रीति से वयस्क मताधिकार

(१) * संविधान के अधीन उचित समय पर प्रत्येक राज्य की विधान-सभा की रचना के प्रयोजनार्थ एक सामान्य निर्वाचन होगा।

के आधार पर होता है। जो व्यक्ति लोकसभा के उम्मीदवार को मत देने का अधिकारी होता है वही विधान सभा के उम्मीदवार को भी चुन सकता है। चुनाव-क्षेत्र प्रादेशिक आधार पर बने होते हैं। कुछ क्षेत्रों को छोड़कर सामान्यरूप से पचहत्तर हजार से लेकर डेढ़ लाख तक जनसंख्या का एक निर्वाचन-क्षेत्र बनाया गया है। किसी विधान सभा की सदस्य संख्या साठ से कम तथा पांच सौ से अधिक नहीं हो सकती। अनुसूचित क्षेत्रों तथा अनुसूचित जातियों और ऐंग्लो-भारतीयों के लिये सविधान प्रारंभ होने से दस वर्ष तक विधानमण्डल में कुछ स्थान सुरक्षित रखे गये हैं।

कोई भी भारतीय नागरिक जिसकी अवस्था पचीस वर्ष है विधान सभा का सदस्य बन सकता है।

राज्य विधान मण्डलों की सदस्यता के लिये योग्यतायेंइस प्रकार हैं।

किसी सभा के कार्यकाल अतीत होने पर या उसके भङ्गहो जाने पर एक सामान्य निर्वाचन होगा, ताकि एक नवीन सभा की रचना की जाय। (नियम १६)

१७—राज्य विधान सभाओं विषयक निर्वाचन के लिये अधिसूचन :— संविधान के अधीन उचित समय में विधान सभा की रचना के प्रयोजनार्थ या एक सभा के कार्यालय के अतीत होने पर अथवा उसके भंग किये जाने पर सम्बन्धित राज्य का गवर्नर अथवा स्थिति अनुसार राज्य प्रमुख ऐसी तारीख या तारीखी पर जैसा कि वह निर्वाचन कमीशन द्वारा नियत हो या हों, शासकीय गजट में प्रकाशित एक या अधिक अधिसूचनों द्वारा इस कानून के और इसके अधीन बनाये नियमों तथा आदेशों के उपबन्धों के अनुसरण में ऐसी तारीख या तारीखों से पहले जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा इस निमित्त नियत की जाय या जायँ, तथा उस अधिसूचन या अधिसूचनों में उल्लिखित हो, सदस्यों का निर्वाचित करने के लिये सब सभा निर्वाचन क्षेत्रों को आमन्त्रित करेगा :

परन्तु बन्धान यह है, कि किसी राज्य को विधान सभा का रचना के प्रयोजनार्थ उसके कार्यकाल के अतीत होने पर ऐसी तारीख से पहले जिस पर कि उक्त विधान सभा का कार्यकाल सामान्तया अतीत होता हो, चार महीना से पहले ऐसा अधिसूचन जारी नहीं होगा। (नियम १७)

एक विधान सभा की सदस्यता के लिये योग्यतायें—एक व्यक्ति किसी राज्य की विधान सभा में एक स्थान भरने के लिये तब तक निर्वाचित होने के लिये योग्य नहीं होगा, जब तक कि—

(क) उस राज्य की अनुसूचित जातियों के अथवा अनुसूचित जन जातियों के लिये किसी रक्षित स्थान के विषय में वह किसी भी उस जाति या स्थिति अनुसार जन जाति का सदस्य न हो, तथा उस राज्य में किसी सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिये एक निर्वाचक न हो;

(ख) सिवाय उस निर्वाचन क्षेत्र के स्थान के जिसके लिये शीलाङ्ग की छावनी और म्युनिसिपिल कमेटी सम्मिलित है; आसाम के किसी स्वायत जिला के लिये किसी रक्षित स्थान के विषय में, वह उस जिला की किसी अनुसूचित जन जाति का सदस्य न हो, तथा उस सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिये जिसमें कि ऐसा स्थान या कोई अन्य स्थान उस जिला के लिये रक्षित है, निर्वाचक न हो, तथा

(ग) किसी अन्य स्थान के विषय में वह उस राज्य में किसी सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिये निर्वाचक न हो। (लोक प्रतिनिधित्व कानून, नियम ५)

किसी विधान परिषद् की सदस्यता के लिये योग्यतायें.—(१) कोई व्यक्ति एक राज्य की विधान परिषद् में स्थान भरने के लिये तब तक निर्वाचित होने योग्य नहीं होगा, जब तक कि वह उस राज्य में किसी सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिए निर्वाचक न हो।

(२) एक व्यक्ति किसी राज्य की विधान परिषद् में ऐसा स्थान भरने के लिये जो कि गवर्नर अथवा स्थिति अनुसार राज प्रमुख द्वारा मनोनयन (नामज़दगी) द्वारा भरा जाने वाला है, तब तक निर्वाचित होने के लिये योग्य नहीं होगा, जब तक कि वह उस राज्य में साधारणतः निवास करने वाला न हो। (लोक प्रतिनिधित्व कानून नियम ६)

विधान सभा का एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष होता है जो सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। (उनका उल्लेख संसदीय प्रक्रिया में देखिये।) विधान सभा

की कालावधि पांच वर्ष होती है। आपात् काल में संसद् इस अवधि को एक वर्ष तक बढ़ा सकता है।

विधान सभा की सदस्य-संख्या निम्न प्रकार है—

राज्य	सदस्य संख्या
आसाम	१०८
बिहार	३३०
बम्बई	३१५
मध्य प्रदेश	२३२
मद्रास	३७५
उड़ीसा	१४०
पंजाब	१२६
उत्तर प्रदेश	४३०
पश्चिमी बंगाल	२३७

विधान परिषद्—

विधान-मंडल का यह स्थायी सदन होता है। इसके एक तिहाई सदस्य दो वर्ष पश्चात् स्वतः स्थान रिक्त कर देते हैं। राज्य परिषद की भांति इसके सदस्यों की पदावधि दो वर्ष से ६ वर्ष तक की होती है। विधान परिषद की सदस्यता के लिये उम्मीदवार की अवस्था ३० वर्ष होनी चाहिये और उसमें वे सब योग्यतायें हों जो संसद विशेष अधिनियम द्वारा निश्चित करे।*

राज्य विधान परिषदों विषयक निर्वाचन के लिए अधिसूचन—(१) संविधान के अधीन उचित समय में एक राज्य की विधान परिषद् की रचना करने के प्रयोजनार्थ उस राज्य का गवर्नर या स्थिति अनुसार राजप्रमुख—

(क) शासकीय गजट में एक अधिसूचन द्वारा इस कानून के तथा इसके अधीन बनाये नियमों तथा आदेशों के उपबन्धों के अनुसरण में, ऐसी तारीख से पहले जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा नियत की जाय, और उस ऐसे अधिसूचन में उल्लिखित होगी, सदस्य या सदस्यों को निर्वाचित करने के लिये प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारियों के निर्वाचन क्षेत्रों, प्रत्येक ग्रैज्वेटों के

विधान परिषद के सदस्य अपने में से एक व्यक्ति सभापति और एक उप-सभापति चुनते हैं। सभापति अथवा उप-सभापति का स्थान स्वतः रिक्त हो जाता है यदि उनमें से कोई विधान परिषद की सदस्यता से वंचित हो

निर्वाचन क्षेत्रों तथा प्रत्येक अध्यापकों के निर्वाचन क्षेत्रों को आमन्त्रित करेगा, तथा

(ख) संविधान के अधीन प्रथम विरचित राज्य की विधान सभा के सदस्यों के नाम धारा ६७ के अधीन अधिसूचन हो चुकने के पश्चात् शासकीय गजट में एक अन्य अधिसूचन द्वारा इस कानून के या इसके अधीन बनाये नियमों तथा आदेशों के उपबन्धों के अनुसरण में, ऐसी ईसी तारीख से पहले जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा इस नमित्त नियत की जाय, तथा ऐसे अधिसूचन में उल्लिखित होगी, सदस्यों को निर्वाचित करने के लिये ऐसे सदस्यों को आमन्त्रित करेगा।

(२) किसी राज्य के विधान मण्डल की रचना के पश्चात् प्रत्येक दूसरे वर्ष में क्रमशः अपने पद की अवधियों के समाप्त होने पर अपदस्थ होने वाले सदस्यों के स्थानों को भरने के प्रयोजनार्थ, गवर्नर या स्थिति अनुसार राज प्रमुख—

(क) शासकीय गजट में एक अधिसूचन द्वारा, इस कानून के तथा इसके अधीन बनाये नियमों तथा आदेशों के उपबन्धों के अनुसरण में ऐसी तारीख से पहले जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा नियत की जाय, तथा ऐसे अधिसूचन में उल्लिखित होगी, एक सदस्य या सदस्यों को निर्वाचित करने के लिये प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारियों के निर्वाचन क्षेत्र, प्रत्येक ग्रैज्वेटों का डिर्वाचन क्षेत्र तथा प्रत्येक अध्यापकों के निर्वाचन क्षेत्र को आमंन्त्रित करेगा, और

(ख) शासकीय गजट में एक अन्य अधिसूचन द्वारा इस कानून के तथा इसके अधीन बनाये नियमों तथा आदेशों के उपबन्धों के अनुसरण में ऐसी तारीख से पहले जो कि निर्वाचन कमीशन द्वारा इस निमित्त नियत की जाय, तथा ऐसे अधिसूचन में उल्लिखित होगी, सदस्यों को निर्वाचित करने के लिये उस राज्य की विधान सभा के सदस्यों को आमन्त्रित करेगा :

परन्तु बन्धान यह है कि इस उपधारा के अधीन अधिसूचन ऐसी तारीखों पर जारी होगा, जो कि उस तारीख से जिस पर कि रिटायर होने वाले सदस्यों के पद की अवधि धारा १५४ के अधीन समाप्त होती हो, जैसा कि निर्वाचन कमीशन द्वारा इस निमित्त सिफारिश की जाय, चार महीना से पहले न आती हो। (नियम १८)

जाय या स्वयं उससे त्याग-पत्र दे दे, परिषद अविश्वास का प्रस्ताव पास कर अपदस्थ करे अथवा मृत्यु हो जाय।

संविधान के अनु० १६६ के अनुसार यदि किसी राज्य की विधान सभा अपने समस्त सदस्यों के बहुमत तथा उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से विधान परिषद को समाप्त करने का निर्णय दे तो उस राज्य की विधान परिषद तत्काल समाप्त हो जाती है। नवम्बर १९५२ में पंजाब विधान सभा ने एक गैर सरकारी प्रस्ताव के रूप में इस प्रश्न को उठाया था, किन्तु इसके स्वीकृत होने के लिये प्रस्ताव के पक्ष में आवश्यक मत प्राप्त न हो सके। इसके विपरीत ऐसे राज्य में जहां विधान परिषद नहीं है, यदि विधान सभा अपने समस्त सदस्यों के बहुमत तथा उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत में राज्य-परिषद की स्थापना का निर्णय करे तो उस राज्य में विधान परिषद की स्थापना हो सकती है।

राज्य विधान परिषदों की सदस्य-संख्या निम्न प्रकार है :—

बिहार	६८
बम्बई	५६
मद्रास	७५
पंजाब	४०
उत्तर प्रदेश	८६
पश्चिमी बंगाल	५१

भाग 'ख' राज्यों में केवल मैसूर में विधान परिषद है, और उसकी सदस्य-संख्या ४० है।

विधानीय प्रक्रिया—

वित्तीय विधेयकों को छोड़कर कोई भी विधेयक विधान मंडल के किसी भी सदन में रखा जा सकता है। राज्य-परिषद को विधान-निर्माण के क्षेत्र में विधान सभा से कम अधिकार प्राप्त होते हैं। यदि किसी विधेयक को विधान सभा द्वारा पारित किये जाने पर विधान परिषद अस्वीकार कर दे या उसमें संशोधन कर दे अथवा उसके सम्मुख रखे जाने के बाद भी यदि वह तीन

मास तक पारित न किया गया हो, तो विधान सभा विधेयक को पुनः पारित कर सकती है। यदि दो बार पारित किये जाने पर भी विधान परिषद विधेयक को स्वीकार नहीं करती है, या उसमें ऐसे संशोधन सहित पारित करती है जिन्हें विधान सभा स्वीकार नहीं कर सकती, अथवा एक मास से अधिक समय तक वह परिषद में ज्यों-का-त्यों पड़ा रहता है तो विधेयक विधान-मण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जायगा। धन विधेयक के सम्बन्ध में विधान परिषद के वही अधिकार हैं जो संसद में राज्य-परिषद के होते हैं। कोई भी विधेयक केवल इस कारण धन विधेयक नहीं हो जाता कि वह कुछ साधनों द्वारा सरकार की आय, अथवा स्थानीय प्रयोजनों के लिये किसी कर के लगाने, व बदलने का उपबन्ध करता है। कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसका निर्णय सभा का अध्यक्ष करता है। राय की विधानीय प्रकिया के लिये संसदीय प्रकिया वाला अध्याय तथा परिशिष्ट देखिये।

प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' के राज्य--

भाग 'ख' में जिन राज्यों को रखा गया है उनकी सूची पहले दी जा चुकी है। इन राज्यों का गठन तथा इनके प्रशासकीय और विधानीय नियमों की जानकारी के लिये हमें देशी रियासतों की संवैधानिक स्थिति मालूम होनी अपेक्षित है। रियासतों के सम्बन्ध में अन्यत्र लिखा जा चुका है,* तथापि यहां पर संक्षेप में उसका सिंहावलोकन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

१५ अगस्त १६४७ से पूर्व भारतवर्ष में लगभग ५८४ देशी रियासतें थीं। राजसत्ता हस्तान्तरित करने से पूर्व ब्रिटिश सरकार ने मंत्रि-मिशन योजना तथा ३ जून १६४७ के वक्तव्य द्वारा देशी नरेशों को यह अधिकार दे दिया था कि वे सीधे भारत सरकार के साथ समझौता करके अपना भविष्य निश्चित कर लें। सीमा प्रांत, बिलोचिस्तान और पश्चिमी पंजाब की कलात, बहावलपुर, खैरपुर आदि बारह रियासतों को छोड़कर शेष रियासतें भारतीय संघ में ही आ सकतीं थी। यत्र-तत्र बिखरी हुई इन रियासतों की समस्याओं को सुलझाने और देशी नरेशों के साथ सन्तोषप्रद समझौता

*देखिये मेरी पुस्तक "देशी राज्य और जन-आन्दोलन"

करने के लिए भारत सरकार ने एक अलग विभाग—रियासती सचिवालय—की स्थापना की जिसका कार्यभार उपप्रधान मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल के सबल कंधोंपर पड़ा।

५ जुलाई १९४७को, जिस दिन राजनीतिक विभाग के स्थानपर रियासती सचिवालय का निर्माण हुआ, सरदार पटेल ने देशी नरेशों से अपील की कि भारतीय संघ में सम्मिलित होने पर ही उनके हित सुरक्षित रह सकेंगे। कुछ रियासतें शामिल हो गयीं, किन्तु कुछ स्वतन्त्र होने का स्वप्न देखने लगीं।

सरदार पटेल ने यह भी घोषित किया कि अलग रहनेवाली रियासतों से किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जायगा। फलस्वरूप त्रावणकोर और भोपाल जैसी रियसतें भी बिना किसी अनुनयके भारतीय संघ का अंग बन गयीं।

देशी नरेशों की प्रतिगामी नीति और उनके द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले हथकण्डों के पीछे जो शक्ति काम कर रही थी वह थी सम्राट की सरकार का राजनीतिक विभाग। मातहत सहायक संधि से लेकर अब तक यह एक विशेष नीति से काम करता रहा है। यों प्रकट रूप से राजनीतिक विभाग का निर्माण रियासतों और ब्रिटिश सरकार के बीच सम्पर्क रखने की नीयत से किया गया था तथा उसका कार्य राजाओं के ऊपर नियन्त्रण रखकर रियासतों के कुशासन को रोकना समझा जाता था। किन्तु इसके विपरीत वास्तविक बात यह थी कि इस विभाग के द्वारा भारतवर्ष के एक चौथाई भाग को अपने सीधे नियन्त्रण में रखकर ब्रिटिश सरकार अपने साम्राज्यवादी पंजों को सुदृढ़ बनाये हुए थी। इस सम्बन्ध में देशी राज्य लोक परिषद की स्थायी समिति का २७ दिसम्बर १९४६ का प्रस्ताव उल्लेखनीय है जिसमें कहा गया था—'राजनीतिक विभाग भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे प्रतिक्रियावादी वर्गों को भारतवर्ष की स्वाधीनता के मार्ग में रुकावट पैदा करने और रियासतों में अपने साम्राज्यवादी पैर जमाने में इस्तेमाल करता है।'

राजनीतिक विभाग की व्याख्या करते हुए देशीराज्य लोक परिषद के ग्वालियर अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए १८ अप्रैल १९४८

को डा० पट्टाभि सीतारमैया ने ठीक ही कहा था कि बिना राजनीतिक विभाग का जिक्र किये रियासतों का जिक्र करना राम के बिना रामायण की कहानी है; तथा राजनीतिक विभाग तो वह यन्त्र है जो सार्वभौमत्व की कील के चारों ओर इस चक्की को घुमाया करता है।'

रियासतों को बाहरी दुनिया से अछूता रखकर राजनीतिक विभाग ने वहाँ के लोगों को कुएँ का मेढक बना दिया था। इस विभाग के द्वारा राजाओं का सीधा सम्बन्ध वाइसराय के साथ होता था, जो गवर्नर जनरल होने के अतिरिक्त ताज का प्रतिनिधि भी समझा जाता था। वह केवल भारत मन्त्री के प्रति उत्तरदायी होता था और देशी राज्यों क सम्बन्ध में एक अधिनायक के रूप में काम करता था। उसके नीचे काम करनेवाले सबसे बड़े अधिकारी को पोलिटिकल सेक्रेटरी कहते थे। वस्तुतः यह व्यक्ति देशी राज्यों के सम्बन्ध में सर्वज्ञ होता था और राजनीतिक विभागपर उसका पूर्ण नियंत्रण होता था। राजाओं के शासन की देखरेख तथा वहाँ की स्थिति की सूचना राजनीतिक विभाग तक पहुँचाने के लिए रियासतों में पोलिटिकल एजेंट, रेजिडेंट या गवर्नर जनरल के एजेंट नियुक्त किये जाते थे। इन अधिकारियों को बहुत बड़े अधिकार प्राप्त थे। व्यावहारिक दृष्टि से देशी नरेशों की स्थिति उनके मातहत एक राजकर्मचारी के समान थी। ये अधिकारी प्रायः रियासतों के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप किया करते थे। सन् १८१४ में लार्ड हेस्टिंग्ज ने एक लेख में यह स्वीकार किया था कि 'हम भारत के देशी राज्यों को अपनी संधियों द्वारा स्वतंत्र सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। हम उनके यहाँ रेजिडेंट भेजते हैं। राजदूत की भांति कार्य करने की अपेक्षा वह अधिनायक बन जाता है। उनके व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप करता है....।'

अपनी स्वेच्छारिता का प्रमाण राजनीतिक विभाग के अधिकारी रियासतों के भीतर अपनी पसन्द के उच्चाधिकारियों को नियुक्त करके देते थे। बाहर से थोपे हुए इन अफसरों को लोकहित की कोई चिंता नहीं होती थी। राजा उनके हाथ की कठपुतली होता था। १९३९ में लोक परिषद के उदयपुर अधिवेशन के तत्कालीन अध्यक्ष पं० नेहरू ने इस ओर संकेत करते हुए कहा

था कि वास्तविक सत्ता राजाओं के पास नहीं होती, इसलिये वे शासन सुधार के संबन्ध में किये गये अपने वायदों को पूरा करने में सफल नहीं हो पाते।

राजनीतिक विभाग की प्रतिगामी-नीति तथा रियासतों के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप के दरजनों उदाहरण दिये जा सकते हैं। हैदराबाद, जूनागढ़, और त्रावणकोर की घटनाओं के पीछे राजनीतिक विभाग का जितना बड़ा हाथ रहा है यह रियासती राजनीति के जानकार भली भांति जानते हैं। 'काश्मीर छोड़ो' आन्दोलन की समीक्षा करते हुए नेशनल हेराल्ड (१२ जून १६४६) ने काश्मीर में नेहरूजी की गिरफ्तारी के पीछे राजनीतिक विभाग की शरारत का पर्दाफाश किया था। रियासतों में नेशनल मुस्लिम गार्ड्स और राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ को शस्त्रास्त्र द्वारा संगठित करके न केवल हिंदू-मुस्लिम झगड़े करवाये गये वरन् उन परिस्थितियों को भी आमंत्रित किया गया जो महात्मा गांधी की हत्या का कारण हुई। अनेक छोटी छोटी रियासतों में निरंकुश शासकों के एजेंटों द्वारा विलीनीकरण के विरुद्ध प्रदर्शन और उपद्रव कराये गये। विला-सपुर और फरीदकोट जैसी छोटी सी रियासत से लेकर काश्मीर और हैदराबाद की बड़ी रियासतों तक में दमन का जो दौर-दौरा रहा उसमें स्पष्ट रूप से राज-नीतिक विभाग का ही हाथ था। कौन नहीं जानता कि रीवां और बलसान जैसी रियासतों को इस विभाग के खूनी पंजों का शिकार होना पड़ा, क्योंकि उन्होंने अपने यहां वैधानिक सुधार किये थे।

इन्हीं सब कारणों से देशी राज्यों के लोकनायक अनुभव करते थे कि जब तक राजनीतिक विभाग का अस्तित्व समाप्त नहीं होता तब तक रियासती प्रजा का कल्याण नहीं। देशी राज्य लोकपरिषद सदा उसका विरोध करता रहा। ग्वालियर अधिवेशन में राजनीतिक विभाग की भर्त्सना करते हुए एक प्रस्ताव द्वारा यह प्रकट किया गया था कि आज की बदली हुई परिस्थितियों में उसका पुरानी शक्ल में बना रहना रियासती प्रजा के भविष्य के लिए सर्वथा भयानक है। इस अधिवेशन के थोड़े ही समय के पश्चात् ५ जुलाई १६४७ से देशी राज्यों का राजनीति का संचालन रियासती सचिवालय द्वारा होने लगा। रियासती सचिवालय ने बहुत सी कठिनाइयों के होने पर भी जो असाधारण प्रगति की

वह एक बेजोड़ चीज है। किंतु राजनीति विभाग के भूमिग्रस्त हो जाने पर भी रियासती सचिवालय देशी राज्यों का एकीकरण करने और उनमें लोकतन्त्र की स्थापना की योजना को असफल करने में निरंतर सचेष्ट रहा। २८ जनवरी १९४८ को सरदार पटेल ने पत्रकारों के समक्ष यह रहस्योद्घाटन किया कि सत्ता हस्तान्तरण के समय राजनीतिक विभाग के एक उच्चाधिकारी ने वी०पी० मेमन से कहा कि आप राजाओं को भारतीय संघ में सम्मिलित करने और यथास्थित समझौते में व्यर्थ अपना समय नष्ट कर रहे हैं, कोई भी राजा नव-निर्मित रियासती सचिवालय द्वारा प्रस्तावित योजना को स्वीकार नहीं करेगा। भारतीय संविधान के लागू होने से पूर्व सरायकेला और खरसवान आदि छ रियासतों के राजाओं ने विहार प्रांत में विलीनीकरण के विरुद्ध अपील कर के अपने अनुकूल निर्णय का असफल प्रयास किया था। क्या उसमें पर्दे के पीछे से राजनीतिक विभाग के भूतपूर्व अधिकारियों का हाथ नहीं था ?

राजनीतिक विभाग का प्रकट रूप से अस्तित्व समाप्त हो जाने पर उसके अधिकारी ब्रिटिश सरकार के विदेश विभाग के भारत सम्बन्धी विभाग में अभी भी काम कर रहे हैं। विश्वस्त आधारपर यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश सरकार अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के कार्य में अपने इन विशेषज्ञों द्वारा एक ऐसी योजना तैयार कर रही है जिससे ब्रिटिश साम्राज्य के स्तम्भ प्रतिगामी देशी नरेशों को सत्तापर पुनः प्रतिष्ठापित किया जा सके। मार्च १९५० में पांच भूतपूर्व पोलिटिकल एजेंटों ने एक ही समय में कुछ रियासतों में अलग अलग भ्रमण किया और राजाओं के सम्पर्क में आये। उनमें श्री फिलिप्स और श्री स्काट ने ईस्टर्न स्टेट्स ऐजेंसी की रियासतों और छत्तीसगढ़ रियासत का दौरा किया, और राजाओं के साथ गोपनीय बैठकें कीं। उनके रहस्यपूर्ण दौरे और बैठकों का उद्देश्य स्पष्ट था। आये दिन हम देखते हैं कि राजा महाराजागण किसी न किसी बहाने से लन्दन जाकर अपने पूर्व परि-चित मित्रों के दरवाजे खटखटाया करते हैं।

आवरण के पीछे से काम करनेवाले श्वेतांग अधिकारियों का अन्तिम प्रयास लौहपुरुष सरदार पटेल के निधन के पश्चात देशी नरेशों को पुर्नसंगठित

करके उनका एक संघ बनाने का था। लगभग ५० राजाओं ने दिसम्बर १६५० में बम्बई में एक सम्मेलन करके बड़ौदा-नरेश के नेतृत्व में एक प्रतिगामी संगठन की नींव डाली। एक प्रकार से यह संस्था नरेन्द्र मण्डल का ही दूसरा रूप था। इसके प्रति रियासती सचिवालय का कड़ा रुख तथा बड़ौदा नरेश की राष्ट्र विरोधी गतिविधि के कारण पदच्युत किये जाने के फलस्वरूप कुछ राजाओं ने तत्काल उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। कुछ ही समय में यह जड़-संस्था हो गयी। उसके पश्चात् ब्रिटेन के पिछले आम चुनावों में अनुदार दल की जीत हो जाने पर तो फरीदकोट के महाराजा ने चर्चिल को एक समुद्री तार देकर उनसे परित्राण की याचना की। यह शंका भी सर्वथा निराधार नहीं हो सकती है कि रियासतों के भीतर विध्वंसक कार्यों में संलग्न प्रतिगामी तत्वों को राजाओं द्वारा जो शह दी जाती रही है उसके पीछे इस विभाग का ही हाथ रहा है।

थोड़ी सी रियासतों को छोड़कर (जिनका वर्णन 'ग' श्रेणि में किया गया है या जो प्रान्तों में विलीन हो गई हैं) बाकी पुरानी रियासतों को समूहबद्ध करके 'ख' श्रेणी के राज्य बने हैं। इन राज्यों पर भी उन्हीं उपबन्धों को कुछ संशोधनों के साथ लागू किया गया है जो 'क' श्रेणि के राज्यों में लागू हैं। उनमें केवल यह अन्तर किया गया कि राज्यपालके स्थान पर भाग 'ख' राज्यों में राजप्रमुख रखे गये जिन्हें प्रिवी पर्स के अतिरिक्त राज-कोष से वेतन और भत्ता की भी व्यवस्था की गई। (अपवाद स्वरूप हैदराबाद और जम्मू-काश्मीर में राजप्रमुख के स्थान पर क्रमशः निजाम और सदरे रियासत का प्रयोग किया गया। दोनों में यह अन्तर है कि निजाम का स्थान एक राज प्रमुख का है और दूसरा काश्मीर की विधान सभा द्वारा चुना जाकर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होता है। काश्मीर के पहले सदरे रियासत युवराज कर्णसिंह चुने गये हैं। हर पांचवें साल यह चुनाव होगा। स्वाभाविक है कि काश्मीर का कोई भी नागरिक इस पद के लिये खड़ा हो सकता है। सही अर्थों में काश्मीर में पहली बार राजशाही का अन्त किया गया।) अन्य राज्यों में राजशाही को समाप्त करने के लिए यह घटना एक प्रेरणा दायक चीज है। कम से कम अन्य भाग 'ख' राज्यों की जनता को तो राज-प्रमुख का पद समाप्त करने के लिए—चाहे भारत के संविधान में परिवर्तन ही कराना पड़े—

अविलम्ब आगे बढ़ना चाहिए। जैसा कि जवाहरलाल जी ने २८ सितम्बर १९५२ को हैदराबाद में पत्र-प्रतिनिधियों को बतलाया, राज-प्रमुखों का पद अधिक समय तक नहीं चल सकेगा। कांग्रेस के इन्दौर अधिवेशन (१४ सितम्बर १६५२) में भी पटियाला तथा पूर्वी पंजाब रियासती संघ के प्रतिनिधि श्री देशराज ने 'ख' श्रेणि के राज्यों में राज-प्रमुख का पद समाप्त करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा था, किन्तु जवाहरलाल जी ने उसका इस आधार पर विरोध किया कि भारत सरकार राज-प्रमुखों का पद हटाने और राजाओं के निजी कोष को कम करने के सम्बन्ध में किये गये समझौते को तोड़ने के लिए तैयार नहीं होगी। नेहरूजी ने कहा कि राजाओं को दी जाने वाली सुविधायें "भारत की एकता की कीमत" है। उन्होंने कहा :

> "राजप्रमखों का पद समाप्त करने का प्रश्न सलाह-मशविरे और समझौते के तरीकों द्वारा हल किया जाना चाहिये, न कि अन्दोलनों व प्रस्तावों द्वारा।......सरदार पटेल द्वारा भारत के एकीकरण के लिए किये गये ये प्रयत्न असफल होते तो देशकी जटिल स्थित और भी उलझ गई होती। ऐसी परिस्थिति में राजाओं के साथ जो समझौते किये गये उनको अब भंग नहीं किया जा सकता।"

उनके इस भाषण के पश्चात् प्रस्तावक ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया किन्तु समझौते के नाम पर यह स्थिति सदा कायम नहीं रह सकती। जनता द्वारा उन्हें अपदस्थ किये जाने से पूर्व राजप्रमुखों के लिए यही शोभनीय है कि वे स्वेच्छापूर्वक अपने अपने समस्त अधिकार भारत सरकार को सौंप दें और उस पद पर नियुक्ति की जो व्यवस्था सरकार ने भाग 'क' राज्यों के लिए रखी है वह भाग 'ख' राज्यों में भी हो।

हैदराबाद, राजस्थान, मध्यभारत त्रावणकोर-कोचीन और दिल्ली राज्यों में रियासती सचिवालय के उच्च कर्मचारी सलाहकार के रूप में काम करते हैं। उनकी उपस्थिति वांछनीय नहीं समझी जाती। हैदराबाद स्थित भारत सरकार के राजनीतिक सलाहकार श्री एम. के. वेलोडी को, जो पहले भारत सरकार की ओर से प्रशासक और तत्पश्चात् वहां के मुख्य मंत्री भी रह चुके हैं, राज्य सरकार वापस बुलाने का केन्द्र को सुझाव दे चुकी है। कुछ राज्यों का केन्द्र पर

यह भी आरोप है कि वह उनके प्रशासन में हस्थक्षेप करता है, जो लोकतंत्रीय व्यवस्था के प्रतिकूल है।* केन्द्र द्वारा अधिक सत्ता हथियाने का प्रयत्न करने का इसी पुस्तक में अन्यत्र उल्लेख किया जा चुका है। किन्तु जिस रूप में ये तर्क उपस्थित किये जाते हैं उस से ध्यान वस्तु-स्थिति से दूसरी ओर चला जाता है। किसी भी राज्य को जितना खतरा अपनी आन्तरिक कमजोरियों से है उसके सबल होने से शतमांश भी केन्द्र के हस्थक्षेप का खतरा नहीं हो सकता। पटियाला राज्यसंघ और राजस्थान जैसे सीमांत के राज्य में कुशासन और अराजकता की स्थिति को कोई भी सबल सरकार सहन नहीं कर सकती। पटियाला संघ की वास्तविक स्थिति को देखते हुए कभी-कभी तो यह लगता है कि किसी भी समय वहां राष्ट्रपति के प्रशासन की घोषणा हो सकती है। यह भी संभव है कि उसे (भाषावार राज्यों का पुनर्निर्माण होने से पूर्व ही) पूर्वी पंजाब के साथ मिलाकर महापूर्वी पंजाब राज्य का निर्माण किया जाय और थोड़े से भाग को हिमाचल प्रदेश में विलीन करके हिमाचल प्रदेश तथा गढ़वाल आदि पर्वतीय भागों को मिलाकर सीमांत का एक पहाड़ी राज्य बना दिया जाय। उसका जो कुछ भी स्वरूप हो, किन्तु पटियाला संघ की जैसी

* पटियाला तथा पूर्वी पंजाब रियासती संघ के वित्त मंत्री सरदार भूपेन्द्र सिंह मान ने ६ अक्टूबर १९५२ को पटियाला में एक प्रेस सम्मेलन में बतलाया कि रियासती सचिवालय उनके राज्य के दैनिक प्रशासन के कार्यों में हस्थक्षेप करता है। उन्होंने कहा कि रियासती सचिवालय मंत्रि-मण्डल का विस्तार न करने पर जोर देता है; यह हमारे नेता के, जो कि विधानसभा के प्रति जिम्मेदार है, अधिकारों पर आघात है।

किन्तु इस वक्तव्य के तत्काल बाद ही (१३ अक्टूबर को) रियासती सचिवालय के एक प्रवक्ता ने इस आरोप का खण्डन किया और कहा कि—

"इसमें सन्देह नहीं कि जब कभी उक्त राज्य के मंत्रिमण्डल ने किसी बात पर सलाह मांगी तो उन्हें सलाह दी गई, किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि अपनी ओर से राज्य मंत्रालय ने कभी किसी रूप में इस मंत्रिमण्डल को या इसके सदस्यों को सम्मति नहीं दी।"

स्थिति है, यदि उसमें आशातीत सुधार नहीं हुआ और नेताओं में सत्ता के लिये प्रतिस्पर्धा चलती रही तो वहां लोकतंत्रीय व्यवस्था का लोप हो जायगा। भाग 'ख' के अन्य राज्यों को, जहां का प्रशासन सन्तोष जनक रूप से चल रहा है, यह आशा की जाती है उन्हें भाग 'क' राज्यों की श्रेणि में रख दिया जायगा। लोकतत्र की सफलता के लिये यह अपेक्षित है कि देश के सब भागों का प्रशासन समान हो।

जहां तक विधानीय विषयों का प्रश्न है जो उपबन्ध अन्य भाग 'क' राज्यों में वर्णित हैं वही इनमें भी हैं। मैसूर को छोड़कर, जहां पहले से ही दो सदनों वाला विधान-मण्डल है, अन्य भाग 'ख' राज्यों में केवल विधान सभायें हैं। उनका गठन और विधानीय प्रक्रिया के नियम संविधान के अनुकूल निर्मित किये गये हैं। विधान सभामें सदस्य-संख्या निम्न प्रकार है:—

हैदराबाद	१७५
मध्य भारत	९९
मैसूर	९९
पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य-संघ	६०
राजस्थान	१६०
सौराष्ट्र	६०
त्रावणकोर-कोचीन	१०८

विधानीय प्रक्रिया के सम्बन्ध में जो उपबन्ध संसद तथा भाग 'क' राज्यों की विधान-सभाओं के लिये वर्णित हैं, न्यूनाधिक मात्रा में वही भाग 'ख' राज्यों के लिये भी हैं।

प्रथम अनुसूची के भाग 'ग' के राज्य

प्रथम अनुसूची के भाग 'ग' में वर्णित राज्यों में कुछ प्रदेश वे हैं जो ब्रिटिश शासन काल में कमिश्नरियां थीं और बाकी देशी राज्यों की इकाइयां या राज्य-समूह। दिल्ली, कुर्ग और अजमेर चीफ कमिश्नरों के प्रान्त थे, त्रिपुरा, भोपाल, कच्छ, मनीपुर और बिलासपुर राजाओं के आधीन रियासतें

थीं, और हिमाचल प्रदेश शिमला की २१ छोटी-छोटी पहाड़ी रियासतों से मिलकर बना है। भाग 'ग' के राज्यों में पहले से कहीं भी प्रतिनिधि सरकार नहीं थी। अजमेर, भोपाल, दिल्ली और हिमाचल प्रदेश को छोड़कर बाकी राज्यों में अभी भी केन्द्र का शासन है। हिमाचल प्रदेश को छोड़कर अन्य राज्यों में चीफ कमिश्नर नियुक्त किये गये हैं। हिमाचल प्रदेश में एक लेफ्टिनेंट-गवर्नर नियुक्त किया गया है। उनमें प्रायः तीन-तीन व्यक्तियों का मंत्रिमण्डल बनाया गया है।

भाग 'ग' के राज्यों के मंत्रिमडण्ल को वे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो भाग 'क' तथा 'ख' के राज्यों को प्राप्त हैं। उनकी विधान-सभा एक प्रकार की सलाहकार समिति है, जिसे कुछ व्यापक अधिकार दे दिये गये हैं। विधान सभा के समक्ष किसी विधेयक के प्रस्तुत करने से पूर्व राज्य सरकार को उसकी स्वीकृति रियासती सचिवालय से लेनी पड़ती है।* वित्तीय विषयों में तो भाग 'ग' के राज्यों को और भी कम अधिकार प्राप्त हैं। छोटे छोटे अनुदानों के लिये भी उन्हें रियासती सचिवालय (जो अब गृह मत्रालय के अन्तर्गत है) की स्वीकृति लेनी पड़ती है।

विधान सभा द्वारा स्वीकृत हो जाने के पश्चात् सब विधेयक केन्द्रीय गृह मंत्रालय के द्वारा सम्बद्ध मत्रालयों को भेज दिये जाते है जहां नीति तथा प्रशासन को आवश्यताओं की दृष्टि से उनका अध्ययन होता है। उसके पश्चात् उसकी रूप-रेखा का बारीकी से छान बीन होती है। इस प्रकार एक विधेयक को कई मंजिलों से होकर गुजरना पड़ता है और कई कार्यालयों की

* दिल्ली राज्य विधान सभा का अधिवेशन २ दिसम्बर १९५२ से होने वाला था। किन्तु वह इस कारण स्थगित कर देना पड़ा क्योंकि सदन में प्रस्तुत किये जाने वाले विधेयक, जिन्हें रियासती सचिवालय की स्वीकृति के लिये भेजा गया था, वे तब तक वापस नहीं आ सके थे। चूंकि उन विधेयकों में कुछ (जैसे भूमि, पंजी-बंधन विधेयक, पंजाब व्यापार कर्मचारी अधिनियम में संशोधन, बिक्री कर विधेयक, सिनेमाघरों में धूम्र-पान पर प्रतिबन्ध सम्बन्धी विधेयक) ऐसे थे जिनके बिना विधान सभा की बैठक बुलाना व्यर्थ होता, इसलिये अधिवेशन को ही स्थगित कर देना पड़ा।

हवा खानी पड़ती है। कई बार उसकी काट-छांट होती है, और कभी-कभी तो छीछालेदर की भी नौबत आ जाती है।

नवम्बर १९५२ में हिमाचल प्रदेशीय विधान सभा में मुख्य मंत्री डा० यशवन्त सिंह परमार ने एकाधिक बार यह प्रकट किया है कि उन्हें किसी सुनियोजित योजना को कार्यान्वित करने में कठिनाई होती है क्योंकि उन्हें एक छोटी-सी धन-राशि ही व्यय करने का अधिकार प्राप्त है।

स्वतंत्रता मिल जाने के बाद देशी रियासतों, और मुख्य रूप से राजाओं के विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। पहले ब्रिटिश सरकार द्वारा देशी नरेशों को बहुत से विशेषाधिकार दिये गये थे जिनमें एक यह भी था कि उन पर कोई अभियोग लगाकर न्यायालय में उनके विरुद्ध मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था, न उन्हें किसी न्यायालय के सम्मुख उपस्थित होने के लिये बाध्य किया जा सकता था। स्वतंत्रता मिल जाने के पश्चात् उनके व सब विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये और भारत के अन्य नागरिकों की भाति उन्हें भी साधारण स्थिति में रख दिया गया। अब राष्ट्रपति की अनुमति से उनके विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा भी दायर किया जा सकता है* और किसी भी मुकदमे के सम्बन्ध में उन्हें न्यायलय के समक्ष उपस्थित होने को बाध्य किया जा सकता है।†

---

* अगस्त १९५२ में जबलपुर के एक फोटोग्राफर डायस ने विन्ध्य प्रदेश में विलीन एक देशी रियासत के राजा के विरुद्ध जाब्ता फौजदारी दण्ड विधान की धारा ८७ (ब) के अन्तर्गत अपनी मोटर की क्षति पूर्ति के लिये पांच हजार रुपये हर्जाने का मुकदमा चलाने की राष्ट्रपति द्वारा आज्ञा प्राप्त हुई। इससे पूर्व १२ जुलाई १९५० को रियासती सचिवालय ने उसे इसकी अनुमति देने से इन्कार कर दिया था।

† २६ नवम्बर १९५२ को जयपुर के स्पेशल जज श्री आनन्द नारायण कौल ने डाक्टर राम बाबू सक्सेना के मुकदमे के सम्बन्ध में टोंक के नवाब को बयान देने के लिये न्यायालय के सम्मुख उपस्थित होने का आदेश दिया और नवाब की इस प्रार्थना को कि मुकदमे की कार्यवाही गुप्त कमरे में हो अथवा नवाब साहब को न्यायालय में कुर्सी पर बैठने की अनुमति दी जाय, अस्वीकार कर दिया।

भाग 'ग' राज्यों की विधान सभाओं में स्थानों का वितरण निम्न प्रकार है :—

राज्य	स्थानों की कुल संख्या	अनुसूचित जातियां के लिये सुरक्षित स्थानों की संख्या	अनुसूचित आदिम जातियों के लिये सुरक्षित स्थानों की संख्या
अजमेर	३०	६	—
भोपाल	३०	५	२
कुर्ग	२४	३	३
दिल्ली	४८	६	—
हिमाचल प्र०	३६	८	—
विन्ध्य प्रदेश	६०	६	६

चन्द्रनगर को भी 'ग' श्रेणी का राज्य घोषित किया जाने वाला है।

प्रथम अनुसुची के भाग 'घ' के प्रदेश

इस श्रेणी में अंडमान और निकोबार द्वीप-समूह रखे गये हैं। इनका शासन-प्रबन्ध केन्द्र के हाथ में है। राष्ट्रपति की ओर से एक चीफ कमिश्नर यहां का प्रशासक है। अण्डमान और निकोबार द्वीप-समूहों का एक प्रतिनिधि लोकसभा में लिया गया है।

भाग 'ग' और 'घ' में वर्णित राज्यों का वर्तमान स्वरूप कालान्तर में निश्चित रूप से बदल जायगा। उनमें से कुछ का निकटवर्ती राज्यों में विलीन होना आवश्यक है। अत्यधिक छोटी इकाईयां, जो अविकसित हों, लोकतंत्र के अनुकूल नहीं समझी जातीं। उदाहरण के लिए त्रिपुरा को ले लीजिये। दिसम्बर १९५२ में रियासती विभाग के मंत्री श्री कैलाशनाथ काटजूने त्रिपुरा और मनीपुर में एक सलाहकार समिति बनाने की घोषणा की। किन्तु केवल सलाहकार समिति के निर्माण मात्र से वहां के लोगों की आर्थिक और सामाजिक उन्नति न हो जायगी। 'क' भाग की जनता जिन अधिकारों का

उपभोग करती है वे त्रिपुरा के निवासियों को भी प्राप्त हों इसके लिए यह आवश्यक है कि उसे पश्चिमी बंगाल में विलीन कर दिया जाय। उसी प्रकार अजमेर को राजस्थान में, तथा भोपाल को मध्य प्रदेश में विलीन करना होगा। विंध्य प्रदेश भी, जो भाग 'ग' राज्यों में सबसे बड़ी इकाई है, अन्तत्वोगत्वा एक पृथक राज्य न रह सकेगा। उसका कुछ भाग उत्तर प्रदेश में और कुछ मध्य प्रदेश में विलीन हो जायगा। उसी प्रकार तिब्बत की सीमा पर स्थित हिमाचल प्रदेश के साथ यदि पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य संघ तथा पूर्वी पंजाब के वे भाग जिनकी उसने मांग की है तथा अन्य पर्वतीय प्रदेश नहीं शामिल किये गये तो इतने छोटे से राज्य को अधिक समय तक बाहरी सहायता पर चलाना संभव न होगा। मनीपुर को उसके भौगोलिक और सैनिक महत्व के कारण फिल हाल पृथक रखा जा सकता है।

छोटे राज्य : सफेद हाथी—

किसी राज्य में लोकतंत्रतीय व्यवस्था स्थापित करने के साथ-साथ उसे चलाने के लिए अपेक्षित साधन भी उपलब्ध हों यह राज्य के लोकनायकों को विचारना है। लोकतंत्रीय व्यवस्था स्वयं एक खर्चीली वस्तु है। व्यवस्थापिका और मन्त्रिमंडल का निर्णय करना और उन पर वेतन, भत्ता, निवास आदि के लिए प्रतिमास निश्चित धन-राशि व्यय करना, फिर व्यवस्थापिका की कार्यवाही से सम्बन्धित विषयों को अलग अलग मदों पर व्यय करना, इस सबका लेखा-जोखा करके देखा जाय तो यह कहना होगा कि छोटे और अविकसित राज्यों के लिये यह एक घाटे का सौदा है। भाग 'ग' में वर्णित अधिकांश राज्य केन्द्र की सहायता पर जी रहे हैं। उनके बढ़ते हुए व्यय को केन्द्र कैसे और कब तक वहन करता रहेगा ? उदाहरण के लिए हम दिल्ली राज्य को लेते हैं। ६ जुलाई १९५२ को राज्य की विधान सभा में एक प्रश्न के उत्तर में सरकार की ओर से तीनों लोकप्रिय मंत्रियों की पद-प्रतिष्ठा के लिए सरकारी निवास स्थान, मोटर गाड़ियों और अन्य सामान आदि की व्यवस्था में जो धन व्यय होता है उसकी सूचना दी गई। उसमें बताया गया कि मुख्य मंत्री की कोठी का मासिक किराया ५२२ रुपया है, शिक्षा मंत्री की कोठी का ३८०

रुपया और स्वास्थ्य मंत्राणी का २८० रुपया है। इन कोठियों की सजावट पर क्रमशः ६,७०० रु०, ७,२८० रु० और ७,२८० रु० व्यय किया गया। तीनों मंत्रियों की मोटर गाड़ियों की व्यवस्था करने में ५०, १३३ रुपया व्यय किया गया (जिसमें १८, ९७५ रु० की मोटर मुख्य मंत्री की, ११,७२६ रु० की शिक्षा मंत्री की और १६,३८६ रु० आठ आने की स्वास्थ्य मंत्राणी की खरीदी गई)। दूसरा उदाहरण हिमाचल प्रदेश का है। अक्टूबर १६५२ में विधान सभा की बैठक में सरकार द्वारा नियुक्त नियम-समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसमें अध्यक्ष को ५०० रु० मासिक वेतन, १५० रु० मासिक भत्ता और ३०० रु० मासिक मार्ग-व्यय के लिए अतिरिक्त भत्ते की मांग की गई। सदस्यों का मासिक भत्ता डेढ़ सौ रुपया निश्चित किया गया, और उन्हें सदन की बैठक के दिनों में १५ रु० दैनिक भत्ता देना स्वीकार किया गया। इस प्रकार के और भी खर्च थे जो विधान सभा ने स्वीकार कर लिये। विरोधी दल द्वारा इसकी आलोचना किये जाने पर मुख्य मंत्री ने केन्द्र और भाग 'क' के राज्यों में मिलने वाले वेतन और भत्तों से इसकी तुलना करते हुए कहा कि यह बहुत कम है। आर्थिक दृष्टि से केन्द्र पर आश्रित होने पर भी भाग 'ग' के राज्यों की यह हालत है। पद-प्रतिष्ठा के नाम पर किया जाने वाला यह व्यय हमें अनायास कांग्रेस के कराची प्रस्ताव का स्मरण कराता है। हाल ही में मध्यभारत और राजस्थान ने, जो 'ख' भागके राज्य हैं, अपनी आर्थिक स्थिति के डामाडोल होने के कारण केन्द्र से आर्थिक सहायता की याचना की है। राज्य सरकारों को, और विशेषकर भाग 'ख' तथा भाग 'ग' के राज्यों को अपनी आय और व्यय में सामञ्जस्य स्थापित रखना चाहिए। व्यवस्थापकों और लोक प्रिय मंत्रियों को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संविधान द्वारा उन्हें अपना वेतन, भत्ता तथा अन्य सुविधाओं को स्वयं निश्चिय करने का जो अधिकार दिया गया है उसका दुरुपयोग करने से वे जनता के अविश्वास के पात्र हो सकते हैं। हमें पूंजी-वादी तथा साम्रज्यवादी देशों की नकल नहीं करनीहै बल्कि उन देशों की भांति त्याग और कष्ट का जीवन बिताकर राष्ट्र को उठाना है जो हमारी जैसी स्थिति में हैं। हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते कि चीन में कम से कम

आय १०० रु० तथा अधिक से अधिक ८०० रुपये मासिक है। राष्ट्रपति माओ-जे-तुंग का मासिक वेतन ८०० रुपये मासिक और प्रधान मंत्री का वेतन ५०० रु० है। विश्व-विद्यालय के प्रधान को २०० रु० और निम्नतर शिक्षक को १०० रु० मासिक मिलता है। चीन में किसी के पास निजी मोटर गाड़ियां नहीं है। सरकारी गाड़ियां हैं जिनका उपयोग अधिकारी केवल सरकारी काम के लिए कर सकते है। साधारण व्यक्तियों की भांति मंत्रीगण भी साधारण मकानों में निवास करते हैं।*

हमारे सम्मुख तो जो आदर्श राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने प्रस्तुत किया है वह सर्वाधिक ग्राह्य होना चाहिये। उनकी जीवन चर्या से सम्बन्धित ३ मई सन् १९४७ की एक घटना को यहां पर उद्धरित करना अप्रासंगिक न होगा। बापू नयी दिल्ली स्थित भंगी बस्ती में ठहरे हुए थे। कुमारी मनु गांधी उनके साथ थीं। उस दिन की घटना का उल्लेख करते हुए मनु गांधी ने अपनी डायरी में लिखा है :

"आज आम आए थे, उनका रस निकाला। किन्तु बापू ने मुझ से कहा, पहले जांच तो करो कि इन आमों की कीमत कितनी है? मैंने समझा कि बापू जी विनोद कर रहे हैं. इसलिए उनके कथन पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। मुझे बापूजी की डाक की नकल करना था, वह करने लगी। थोड़ी देर बाद बापू जी के पास गई और फिर उनसे आम का रस लेने को कहा। बापूजी ने मुझ से फिर यही कहा—'मैं तो समझता था कि तू आम की कीमत पूछ कर ही आएगी। आम की कीमत पूछने के बाद ही मुझे खाने के लिए देना चाहिए था, तूने यह नहीं किया, और मेरे पूछने पर भी तू जवाब नहीं लाई। मेरे सुनने में आया है कि एक आम दस आने का है। अगर यह सच हो तो यह फल खाए बिना मैं जिन्दा रह सकता हूँ। इस तरह तो मेरा रक्त बढ़ेगा नहीं, बल्कि घटेगा। ऐसी असह्य मंहगाई और इतनी व्यथा के बीच तूने मुझे चार आमों का रस गिलास भर कर दिया। इस तरह ढ़ाई रुपए का यह प्याला हुआ। इसे मै किस मुंह से खा सकता हूं?'

---

* भारत की ओर से चीन की यात्रा करके लौट आने वाले सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य डा० अमर नाथ झा द्वारा दी गई सूचना के आधार पर।

" यह बात बापूजी खूब गम्भीरता से कर रहे थे। इतने में बापूजी को प्रणाम करने के लिए एक-दो निराश्रित बहनें अपने बालकों के साथ आ गईं और बापूजी ने तुरन्त दोनों बालकों को अलग-अलग प्यालों में वह रस पीने के लिए दे दिया। मुझ से कहा, 'ईश्वर मेरी मदद पर है, इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। मैं अपने मन में खूब परेशान था और विचार कर रहा था कि मैं कहां हूँ। अन्यथा इस छोकरी को ऐसा कैसे सूझता कि वह मेरे लिए इतने मंहगे आमों का रस निकालती, किन्तु प्रभु ने इन बालकों को भेज दिया और बालक भी वही आये, जिनकी मैं इच्छा रखता था। तू देख तो सही कि ईश्वर की कैसी दया है।' बापूजी की इस व्यथा से मैं भी थर-थर कांप रही थी, किन्तु उनके मन की वेदना को भी मैं समझ सकती थी।"

राष्ट्रपिता द्वारा प्रस्तुत की गई मितव्ययता की यह छोटी सी मिसाल हमारा मार्ग दर्शन करने के लिए पर्याप्त है। जब तक हम उस पर आचरण नहीं करते केवल कागजी योजनाओं के द्वारा हम देश के करोड़ो भूखे और नंगे देशवासियों की रोटी और रोजी की समस्या का स्थायी हल नहीं निकाल सकते।

———

संसदीय प्रक्रिया

ससंदीय प्रक्रिया*

बहुत से सदस्यों को, जो पहले—पहल ससद या विधान मण्डल के लिए उम्मेदवार होते हैं उन्हें यह भी नहीं मालूम होता कि वे चुनाव क्यों लड़ रहे हैं, जनता के प्रतिनिधि होने के नाते उनकी क्या जिम्मेदारियां हैं, और ससद् तथा लोक सभा का सदस्य होने के नाते उनका क्या कर्तव्य होगा। ऐसे अधिकांश सदस्यों को तो ससंदीय प्रक्रिया का बोध सर्व प्रथम ससंद् भवन में जाकर होता है; और यह कटु सत्य है कि वर्षों व्यवस्थापिका सभा के सदस्य रहकर भी बहुत से सभासद उसकी प्रक्रिया नियमावली से सर्वथा अनभिज्ञ रहते हैं। आम चुनाव के बाद ससंद की बैठक के पहले ही दिन जब सदस्यों ने शपथ ग्रहण की तब कुछ सदस्यों द्वारा पढ़कर शपथ ग्रहण न करने अथवा शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर करने की अपेक्षा अंगूठा लगाने से यह विदित हो गया कि हमारे प्रतिनिधियों में कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो ससंदीय प्रक्रिया से परिचित होना तो दूर रहा, सर्वथा निरक्षर होने के कारण ससंद सम्बन्धी मौलिक बातों से भी परिचित नहीं। यहां पर ससंद् के सदस्य की एक दिल-चस्प कहानी, जिसे श्री. हरिकृष्ण मेहताब ने लिखा है उद्धरित करना आवश्यक है। श्री मेहताब लिखते हैं—

प्रायः यह देखा जाता है कि सत्य कभी-कभी कहानी से भी अधिक आश्चर्यकारी होता है। इसी प्रकार की एक सच्ची घटना यह है। इससे पता चलता है कि भारत किस प्रकार वर्तमान परिस्थितियों की बाधाओं और ऐसी अनेक अड़चनों को ठुकरा कर, जिन्हें इस बात के सबूत के रूप में उपस्थित किया जाता था कि भारत लोकतान्त्रिक स्वायत्तशासन के लिए अयोग्य है, लोकतन्त्र की ओर साहस और वीरता के साथ अग्रसर होता जा रहा है। इस घटना के उल्लेख से प्रशासकों को देश को उन बड़े भागों

---

* T. Erskine May : Parliamentary Practice.

की जहां कबीली जातियां बसती हैं, समस्या की महत्ता को समझने और कानूनविशेषज्ञों को इन भागों में बसनेवाली जनता के हित में संविधान द्वारा स्वीकृत शासनव्यवस्था के सम्यक् संचालन के साधनों पर विचार करने में सहायता मिल सकती है। इस घटना को अपने ढंग की अकेली और अपवादस्वरूप न असमझना चाहिये। इन क्षेत्रों का पर्याप्त अनुभव होने के कारण मैं कह सकता हूँ कि यह एक ही घटना उस बड़ी समस्या का एक अच्छा नमूना है जो आज पहले से भी अधिक गम्भीर हो गयी है।

यह कहानी लोकसभा के एक ऐसे सदस्य के सम्बन्ध में है जिसे उसके स्वनियुक्त सचिव ने उसके क्वार्टर से निकाल दिया था। १२ अगस्त को लोकसभा का अधिवेशन अनिश्चित काल के लिए स्थगिव हो गया। सदस्यों ने ३ महीने के लम्बे अधिवेशन के बाद राहत की सांस ली। इतने दिनों बाद वे घर लौटने की खुशी से फूले न समाते थे। उसी दिन लोक सभा के सदस्य तथा मेरे मित्र श्री शुक्ल एक अन्य सज्जन के साथ, जो दिल्ली जैसे शहर में एक घबड़ाये हुए देहाती जैसे लगते थे और अपनी किसी मुसीबत से छूटने के लिए हर किसी से सहायता मांग रहे थे, मेरे कमरे में आये। इसके बाद शीघ्र ही कांग्रेस दल के सर्वव्यापक उपप्रधान सचेतक श्री मलैया भी मेरे कमरे में आ दाखिल हुए और उन्होंने बिना इन्तजार किये हुए इस व्यक्ति की कहानी शुरू कर दी।

जिन सज्जन का मैंने अभी उल्लेख किया है इनका नाम है श्री मुछाकी कोसा। ये मध्यप्रदेश के बस्तर नामक सुरक्षित कबीली निर्वाचनक्षेत्र से लोकसभा के लिए सदस्य चुने गये हैं। बस्तर रियासत से बाहर का इलाका है जिसे मध्यप्रदेश में मिला लिया गया है। गत चुनाव में बस्तर के महाराज ने कांग्रेस का विरोध किया था। आपने उस जिले की सभी सीटोंपर कब्जा कर लिया है। वे स्वयं चुनाव में नहीं खड़े हो सके क्योंकि नियमानुसार उनकी उम्र अभी कम है। उस जिले के अधिकांश अधिवासी कबीली जाति के हैं और वहां से उनके लिए लोकसभा की एक सीट सुरक्षित है अतः महाराज ने श्री कोसा को एक स्वतन्त्र उम्मेदवार के रूप में खड़ा कर दिया। कबीला

जातियों में श्री कोसा का बड़ा सम्मान है, चाहे शहर में ये अजीब से दिखाई देते हों और इनका सांसारिक ज्ञान उसी पहाड़ी जगह तक ही सीमित क्यों न हो जहां के ये रहनेवाले हैं। ग्राम इदजेपाल, तहसील जगदलपुर जिला बस्तर के रहनेवाले श्री कोसा अब जंगली आदमी नहीं रह गये। अब वे भारतीय लोकसभा के सदस्य के रूप में पण्डित जवाहरलाल नेहरू डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी तथा ऐसे अन्य अनेक व्यक्तियों के साथ बैठकर भारत के भविष्य का निर्माण कर रहे हैं। किन्तु वे लिखना-पढ़ना नहीं जानते। वे अपने कबीले की बोली के अतिरिक्त कोई भाषा नहीं जानते। वह बोली भी उनकी जाति के अतिरिक्त अन्य किसी को मालूम नहीं है। वे अपने जीवन में पहली बार उस समय गाड़ीपर चढ़े जब उन्हें संसद के अधिवेशन में शामिल होने के लिए दिल्ली आना पड़ा और उन्होंने पहली बार मोटर की सवारी तबकी जब उन्हें दिल्ली यातायात विभाग ने कांस्टियूशन हाउस से मोटर से संसद-भवन पहुंचाया। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक बस्तर के महाराज उनके राजनीतिक प्रधान रहे हैं। उस समय तत्कालीन राजनीतिक विभाग के अधिकारी देशी रियासतों के शासकों को स्वतन्त्रता एव लोकतात्त्रिक आन्दोलन के विरुद्ध कबीली जनता का उपयोग करने की सलाह देते थे। कबीली जनता भूतपूर्व शासकों को नियति द्वारा नियुक्त अपने अनिवार्य प्रभुओं के रूप में देखती थी यहांतक कि आज भी यद्यपि पुराने राजे समाप्त हो गये हैं तथापि कबीलियों को इसका विश्वास नहीं है। उन्हें आशंका है कि किसी कुचक्र से पुराने शासक फिर वापस आ सकते हैं। कुछ भूतपूर्व देशी नरेशों ने गत चुनाव में इस आशंका का पूरा-पूरा फायदा उठाया और वे सफल भी हुए। श्री कोसा के चुन लिये जाने के बाद बस्तर के महाराज ने इस मामले को यहीं नहीं छोड़ दिया। उन्होंने एक दूसरे व्यक्ति को, जो हिन्दी जानता है और दिल्ली जैसी जगह में सारा काम ठीक से चला सकता है, श्री कोसा का सेक्रेटरी नियुक्त कर दिया जो दिल्ली में उनके सारे काम की देखभाल करता था। उसने श्री कोसा के लिए कांस्टिट्यूशन हाउस में दो कमरे किराये पर लिए और आरम्भिक खर्च के लिए श्री कोसा से ८०० रुपये भी लिये। अपनी भिन्न स्थिति के

बावजूद श्री कोसा स्वामी के रूप में उसकी आज्ञा का पालन करते थे और उसी रूप में उसका सम्मान करते थे क्योंकि वह उसी पुराने शासक का पुराना अधिकारी था। दिल्ली में रहते हुए श्री कोसा को दो वक्त खाना मिलता था और पहनने के लिए एक टुकड़ा वस्त्र मिलता था। उनकी प्रथम श्रेणि की यात्रा का भत्ता तथा ४०) का दैनिक भत्ता उनका सेक्रेटरी ही लिया करता था और यह रकम उसी के पास जमा होती थी। श्री कोसा संसद के कार्यालय में ले जाये जाते थे। उन कागजोंपर जिनके बारे में वे कुछ नहीं जानते थे, उनके अंगूठे के निशान ले लिये जाते थे और रुपये सेक्रेटरी को मिल जाते थे। श्री कोसा की भाषा केवल उनके सेक्रेटरी को मालूम थी अतः उनसे सारी बात-चीत अनिवार्यतः उनके सेक्रेटरी के मार्फत ही हो सकती थी। श्री कोसा नियमित रूप से संसद में आते हैं और अपनी बगल में बैठे हुए सदस्य के साथ वोट देते हैं। सेक्रेटरी मनमानी करता जा रहा था और उसके दिन बड़े मौज से कट रहे थे किन्तु अनजाने हो धीरे-धीरे कबीले के प्रधान श्री कोसा के मस्तिष्क पर संसद के वातावरण का प्रभाव पड़ने लगा और वे अपने सेक्रेटरी के घ्यवहार के प्रति दबी हुई घृणा का भाव व्यक्त करने लगे। इसके विपरीत उनका सेक्रेटरी अपने विचारों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आने देना चाहता था। शायद उसमें एकमात्र यही परिवर्तन हुआ कि वह हर मौकेपर संसद के एक सदस्य पर अपना अधिकार जताने में विशेष आनन्द लेने लगा।

अन्ततोगत्वा सेक्रेटरी के अनजाने ही अनायास इसकी प्रतिक्रिया हुई। धीरे-धीरे श्री कोसा ने अपनी घृणा व्यक्त करनी आरम्भ कर दी। उनका सेक्रेटरी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता था। उसने एक दिन श्री कोसा को खाना ही नहीं दिया। जब श्री कोसा ने इसका विरोध किया तो उन्हें रोज से भी ज्यादा झिड़कियां मिलीं। श्री कोसा के लिए यह व्यवहार असह्य हो गया। वे संसद भवन में अपने एक परिचित के सामने रो पड़े और उन्होंने अपने वास-स्थान को वापस न जाने का निश्चय व्यक्त किया। कोई उनकी भाषा नहीं समझ सकता था किन्तु उनकी भावभंगिमाओं और चेहरे से यह पता चल गया कि किसी व्यक्ति ने उनके प्रति क्रूरता का व्यवहार किया है।

संसद के कुछ सदस्य ५ अगस्त को उन्हें सहानुभूतिपूर्वक अपने निवास-स्थान को ले गये। श्री कोसा वहां आराम से रहे किन्तु उन्हें आशा थी कि उनका सेक्रेटरी उनकी भावनाओं को समझेगा और उनसे वापस आने का अनुरोध करेगा। किन्तु उनके बीच इतनी गहरी खाई पड़ चुकी थी कि सेक्रेटरी ने एक जंगली आदमी के पास जाना अपने गौरव के विरुद्ध समझा। श्री कोसा का धैर्य टूट रहा था क्योंकि अधिवेशन समाप्त हो चुका था और सभी सदस्य अपने घर जाने की तैयारी में थे। किन्तु वे कहां जायंगे? गांव वापस जाने पर महाराज और उनके आदमी क्या उन्हें पीटेंगे नहीं? क्या महाराज के क्रोध के कारण उन्हें अपनी सम्पत्ति से हाथ नहीं धोना पड़ेगा? इसी पशोपेश में उन्होंने एक अधिकारी के रूप में मुझसे मिलने का निश्चय किया। उन्हें बड़ी कठिनाई से बोलने के लिए तैयार किया गया। मैं उनकी बात तो नहीं समझ सका किन्तु अपने अनुभव से मुझे मालूम हो गया कि उनपर क्या बीती होगी।

मैंने तुरन्त कांस्टीट्यूशन हाउस जाकर श्री कोसा के सेक्रेटरी से मिलने का निश्चय किया। मैंने श्री मलेया को अपने साथ ले लिया। श्री कोसा तथा उनके नये आतिथि भी मेरे साथ हो लिये। कांस्टीट्यूशन हाउस में पहुंच कर मैं कमरा नम्बर १२ के सामने पड़ी खाट पर बैठ गया। इसी कमरे में श्री कोसा रहा करते थे। मैंने श्री कोसा के सेक्रेटरी को बुला भेजा। उसने आते ही आते ही सीधा जवाब यह दिया कि वह बस्तर के महाराज की आज्ञा के बिना कोई बात नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त उसने इस बात से अप्रसन्नता प्रकट की कि श्री कोसा बिना कोई सूचना दिये ही यहां से चले गये। सहसा मेरी आंखों के सामने उन परिस्थितियों का चित्र सा खिच गया जिनमें भारतीय लोकतन्त्र को अग्रसर होना पड़ रहा है और मैंने एक लंबी सांस ली। किंतु मुझे इस स्थिति का सामना तो करना ही था। अतः मैंने अपनी पूरी ताकत से उस तथाकथित सेक्रेटरी से सीधे कहा कि तुम्हारे सामने संसद का एक सदस्य खड़ा है, तुम उसके मुलाजिम हो, तुम्हें उसके रुपये का हिसाब तत्काल अभी और यहीं देना होगा जिससे मैं आज रात ही को रवाना हो सकूं अन्यथा तुम्हें अपनी

करनी का फल भुगतना होगा। इसी बीच श्री मलैया ने पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट को एक निरीक्षण अधिकारी भेजने के लिए फोन कर दिया। एक पुलिस इंस्पेक्टर और कुछ सिपाही फौरन आ गये। इस पर भी श्री कोसा का सेक्रेटरी झुकने को तैयार न था और हिसाब देने के लिए समय मांग रहा था। बाद में कुछ कड़ी बात होने पर वह होश में आया और उसने अपना खाता दिखाया। खाते से पता चला कि उसने हर तरह की विलास की सामग्रियां खरीदी थीं जिनमें सिनेमा का खर्च भी शामिल था। बेचारे कोसा को यह तो पता न था कि सिनेमा क्या है, या क्या चीजें खरीदी गयी हैं। फिलहाल हमने हिसाब को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। इसके अनुसार श्री कोसा के नाम बाईस सौ रुपया निकलता था। मैंने सेक्रेटरी को यह रकम तुरन्त अदा करने को कहा। उसे बड़ी अनिच्छा से रुपये अदा करने पड़े। मैंने जब नोटों को श्री कोसा की ओर बढ़ाया तो उनका चेहरा अवर्णनीय आनन्द से उद्दीप्त हो उठा था। चन्द घण्टों में ही उन्हें जो सम्मान प्राप्त हुआ था उससे जैसे वे अपने को उठा हुआ महसूस कर रहे थे। उन्होंने अपनी भाषा में हम सबको धन्यवाद देते हुए यह आशंका व्यक्त की कि अपने घर वापस जाने पर कहीं महाराज उन्हें सताने न लगें। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि यदि वे कड़े बने रहे तो उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इसके बाद सेक्रेटरी उस स्थान से चला गया और श्री कोसा ने अनुभव किया कि वह एक कबायली आदमी न होकर सचमुच संसद के सदस्य हैं। मैंने मध्य प्रदेश के मुख्य मन्त्री को लिख दिया है कि वे श्री कोसा का ध्यान रखेंगे।

अब उन लाखों कबीली जनता की स्थिति की सहज ही कल्पना की जा सकती है जिन्हें यह भी नहीं मालूम हो पाता कि उन्हें कब रजिस्ट्री आफिस में ले जाया जाता है और एक न एक बहाने से बिलकुल जाली कागजों पर उनके अंगूठे के निशान ले लिये जाते हैं। जरा हम इसकी कल्पना भी करें कि कबीली आदमी पर उस समय क्या गुजरती होगी जब उन्हीं जाली कागजात के आधार पर पुलिस उसके पास पहुँचती है और उसे जमीन के तथाकथित खरीदार को 'कानून' अपनी जमीन पर कब्जा दे देनी पड़ती है। अगर वह

उस छोटी सी जायदाद को, जिसके लिए उसने अपना खून-पसीना एक किया है, बचाने की कोशिश करता है तो उसे पीटा जाता है, गिरफ्तार किया जाता है, यहां तक कि गोली भी मार दी जाती है। महाजन उसे एक बार कर्ज दे देता है और उसका पुश्त-दरपुश्त उसे भरता चलता है, फिर भी कर्ज अदा होने का नाम नहीं लेता। सौदागर उसकी खेती का पैदावार एक तरह से बिना दाम दिये ही खरीद लेता है। अनेक सरकारी अधिकारी उसकी मुर्गियां, बकरे वगैरह वैसे ही ले लेते हैं। वह अपने मुखिया के आदेश के बिना कोई मजदूरी लिये ही सड़कों पर काम करता है और यात्रियों के सामान ढोता है। कबीली जनता के मुखिया का नमूना हमने अभी श्री कोसा में देखा है। ये मुखिया वस्तुतः कबीली जनता के नेता होते हैं। वे गरीब नहीं होते क्योंकि जनता की श्रम-शक्ति उनके हाथ में होती है। वे समझदार गृहस्वामी भी होते हैं। किन्तु 'दुष्ट परदेसियों' को जिन्हें वे अपनी भाषा में 'दिकू' कहते हैं, वे नहीं जानते। उनकी कोई खास भाषा नहीं है अतः वे शिकायत नहीं कर सकते। इन्हीं कारणों से इन क्षेत्रों में अंग्रेजों ने साधारण शासन व्यवस्था नहीं लागू की थी और कबायली जनता के हितों की देखभाल स्थानीय अधिकारियों के जिम्मे सौंप दी गयी थी। इंस्पेक्टरों से नीचे के पुलिस अधिकारी इन क्षेत्रों में नहीं जा सकते थे। इन सारी एहतियाती कारवाइयों के बावजूद इन क्षेत्रों में काफी अत्याचार होता था। अब कबायली जनता को भी अन्य नागरिकों के समान अधिकार प्राप्त हो गये हैं और एक ही कानून सर्वत्र सबके लिए समान रूप से लागू है। प्रशासनाधिकारिमों एवं सामाजिक कार्यकर्ता दोनों को इन पिछड़े क्षेत्रों के अधिवासियों का पिछड़ापन जल्द से जल्द दूर करना है जिससे वे अन्य नागरिकों के साथ-साथ आगे बढ़ सकें। भारतीय संविधान की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि देश की उन्नत और पिछड़ी जनता के बीच की दूरी—जंगल और संसद के बीच की दूरी—जल्द तय की जाय। पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री कोसा के बीच जो महान् अन्तर है उसे समाप्त करना है और यह भी शीघ्र से शीघ्र करना है।

यह घटना शिक्षाप्रद है। अन्य बातों के अतिरिक्त इससे यह भी प्रकट होता

है कि अशिक्षित और अयोग्य व्यक्ति न केवल व्यवस्थापिका सभा के लिये भार-स्वरूप होता है वरन लोकतंत्रीय व्यवस्था में ससंदीय पद्धति के विकास के मार्ग में भी बाधक होता है। इसलिए निर्वाचन में उम्मेदवार होने से पूर्व प्रत्येक सदस्य को ससंदीय प्रक्रिया सम्बन्धी मौलिक बातों का पूरा ज्ञान होना अपेक्षित है।

ससंद का वास्तविक कार्य क्या है? ससंदीय प्रक्रिया किसे कहते हैं और उसका क्या महत्व है?—इन बातों को जानने की उत्सुकता प्रायः उन सभी व्यक्तियों को होती है जो ससंदीय कार्यों में दिलचस्वी रखते हैं किन्तु उसकी प्रक्रिया से अपरिचित होते हैं। ११ वीं शताब्दी में ससंद (पार्लिया-मेन्ट) को पार्लेमेंट (Parlement) कहा जाता था, जिसका अभिप्राय 'वार्तालाप' से होता था।* बाद में इस शब्द का प्रयोग वाद-विवाद करने वाली सभा के लिये किया गया। १२५८ के पश्चात् 'पार्लियामेंट' का प्रयोग केवल राष्ट्रीय व्यवस्थापिका सभा के लिए होने लगा। तब से इस नामकरण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उसके कार्यक्षेत्र में समय समय पर जो परिवतन हुए वे संसदीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटनायें हैं।

'प्रक्रिया' शब्द को 'व्यवहार' भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसे "प्रोसिड्-यूअर" (Procedure) कहते हैं, जो लटिन शब्द "प्रोसिडेर" (Procedure) से बना है। इसका अर्थ "आगे बढ़ना" होता है।

नियमित रूप से किसी सभा की कार्यवाही को संचालित करने के लिए जब ४ या ६ व्यक्ति एकत्रित होकर कोई बैठक करते हैं, वे अपने में से एक व्यक्ति को अध्यक्ष पद पर आसीन करके उसके अनुशासन में सभा की कार्यवाही सम्पादित करते हैं। वे प्रस्तावित विषयों पर वाद-विवाद करते हैं और अंत में एक-एक चीज़ पर अपना निर्णय देते हैं। यदि कार्यवाही

" 'I cannot hold long parlement with you' says the Emir Baligant to the dying king Marsile."

—Chauson de Roland, quoted from Kenneth Mackenzie; The English Parliament, p. 12.

को संचालित करने की कोई प्रक्रिया तथा उसकी नियमावली न होगी और सभासद अनुशासन में रहकर संयम से कार्य न करेंगे तो उनका किसी निर्णय पर पहुँचना संभव न होगा। सभा में कैसे बैठना चाहिए, कैसे बोलना चाहिए, सभापति का चुनाव कैसे होता है, सभापति और सभासदों की क्या ज़िम्मेदारियाँ है—ये बाते ऐसी हैं जो बिना किसी पुस्तक का अध्ययन किये भी सब लोगों को मालूम रहती हैं। किसी सभा-सम्मेलन को बुलाने और उसकी कार्यवाहियों को सफलता पूर्वक संचालित करने के लिये प्रक्रिया सम्बन्धी कुछ मौलिक नियम होते हैं जिनका देश और काल के अनुसार यत्किंचित परिवर्तन होते हुए लगभग सभी जगह समान रूप से पालन होता है। सभा करने का उद्देश्य यह होता है कि प्रस्तावित विषय पर लोगों का मत जानने के लिये उस पर कुछ प्रमुख व्यक्तियों का वाद-विवाद हो, विभिन्न विचारधारा के लोग उस पर अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, उसमें यथास्थान संशोधन होता है और आवश्यकता पड़ने पर विरोध भी किया जाता है। सभा की कार्यवाही का परिणाम दो बातों पर निर्भर करता है—(१.) उसका नियम पूर्वक संचालित होना और (२.) सभा के बहुमत से निर्णय होना। जेरमी बेन्थम के कथनानुसार यदि सभा के समय किसी नियम का पालन नहीं किया जायगा तो उसकी कार्यवाही हो-हल्ले में बेकार हो जाती है।*

सार्वजनिक सभाओं और सम्मेलनों को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिये जब उसकी प्रक्रिया के नियम अपेक्षित समझे जाते हैं तब व्यव-

* "Somebody Catches or pretends to catch the idea of something else more proper to be done. The next speaker takes this for his theme. Affections go warm, and crowding about this second subject the first is insensibly departed from and forgotten. And so on, till men's minds are effectually confused, and their whole stock of time and patience gone."

Jermy Bentham : Essay on Political Tactics p. 342

स्थापिका-सभा के कार्य-संचालन के लिये, जिसमें देश के सभी वर्गों और क्षेत्रों के चुने हुए प्रतिनिधि निर्दिष्ट स्थान पर सम्मिलित होकर समस्त राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करते हैं और उनपर अपना निर्णायक मत देते हैं, तब यह अत्यावश्यक हो जाता है कि ऐसी सभा का गठन और निर्देशन कानून की ठोस भित्ति पर आधारित हो और उसे व्यापक अधिकार प्राप्त हों।

जिस विधि से संसद की कार्यवाही सम्पादित होती है उसे संसदीय प्रक्रिया कहते हैं, और डा० जेनिंग्स के कथनानुसार लोकसभा तथा प्रशासन के कार्य, जो लोकमत के आधार पर संपादित होते हैं, उस प्रक्रिया के आधार भूत अंग होते हैं।* भारत की संसदीय प्रक्रिया का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। वह न्यूनाधिक मात्रा में ब्रिटिश संसदीय पद्धति का प्रतिबिम्ब मात्र है। ब्रिटेन की संसदीय प्रक्रिया को डाइसी ने परम्परागत कानूनों का संग्रह बतलाया है,† और यही बात टी. अर्स्काइन ने भी लिखी है।‡ १७ वीं शताब्दि तक ब्रिटिश संसद का सबन्ध केवल राजा तक सीमित था। राजा को नए कर लगाने तथा प्रशासन के कार्यों में जनमत जानने की जब इच्छा होती वह संसद की बैठक बुलाता और उससे विचार विमर्श करता था। संसद के सदस्य जनता के कष्ट उसके सम्मुख रखते और सरकार की कर सम्बन्धी नीति की आलोचना करते थे।

कालान्तर में जब मंत्रिमंडल को संसद के समर्थन की आवश्यकता अनुभव होने लगी तब स्वतः दलों का निर्माण होने लगा। निर्वाचन की व्यवस्था लागू होने पर जनता को सीमित मताधिकार प्राप्त हुआ और लोकतंत्र के

* Dr. W. I. Jennings : Parliament.

† "Our parliamentary procedure is nothing but a mess of conventional law."

—Dicey.

‡ "The present constitution of Parliament has been the growth of many centuries."

T. Erskine May.

आधार पर प्रतिनिधि सरकार का निर्माण हुआ। धीरे धीरे संसद की शक्ति का विकास हुआ। सर चार्ल्स वुड (बाद में लार्ड हेलीफैक्स) के वाक्यों को उद्धरित करते हुए इलबर्ट लिखता है कि १६ वीं शताब्दी तक सरकार का क्षेत्र प्रशासन तक ही सीमित था, तथा कानून में परिवर्तन करने का प्रस्ताव स्वतंत्र सदस्य रखते थे और सदन में उसपर विचार-विमर्ष होता था। उस समय दलबन्दी का कोई स्थान नहीं था बल्कि सब सदस्य स्वेच्छा पूर्वक प्रस्तावित विषय पर अपने स्वतंत्र विचार रखते थे और उस पर व्यक्तिगत रूप से अपना निर्णय देते थे।* इस सम्बन्ध में सन् १८३२ में महत्वपूर्व परिवर्तन हुआ जिसके अनुसार संसदीय प्रक्रिया को कानूनी रूप मिला।† पहले-पहल वित्त सम्बन्धी तीन स्थायी आदेश निकाले गए। उसके पश्चात् ब्रिटिश संसद् को न केवल कानून बनाने का अधिकार मिला बल्कि इस बात की भी स्वतंत्रता मिली कि वह स्वेच्छानुसार देश में चाहे जेसा शासन स्थापित करे। वह आवश्यकतानुसार वैध उपायों द्वारा शासन को पलट भी सकती है।

मैं पहले लिख चुका हूँ कि भारत का संवैधानिक विकास मुख्यत: विदेशी सत्ता से स्वशासन प्राप्त करने के लिये किये गये संघर्ष का प्रतिफल था।

---

* " 'When I was in Parliament,' he (Sir Charles Wood) said, twenty years ago, the functions of the Government were chiefly executive. Changes in our law were proposed by the independent members and carried not as party questions, by their combined action on both sides.'

(Sir Courteney Ilbert : Parliament)

† "Before that date the law of Parliament was almost wholly customary law, since that date it has largely been modified by enacted law, for the Standing Orders of each House stand in the same relation to its customary law as acts of Parliament stand to the common law of the country."

—C. P. Ilbert : Preface to the Procedure of the House of Commons.

संवैधानिक विकास के साथ साथ संसदीय क्षेत्र में जो यत्किंचित परिवर्तन हुए उन पर ब्रिटेन की संसदीय प्रक्रिया की बहुत बड़ी छाप है। स्वतंत्र भारत का संविधान निर्माण करने में संविधान–निर्माताओं को विभिन्न देशों के संविधानों से सहायता प्राप्त हुई और, जैसा कि मैं स्वतंत्र भारत के संविधान का विश्लेषण करते हुए इस पुस्तक के पिछले खंड में लिख चुका हूँ, कई देशों की कुछ प्रणालियों को हमने आवश्यक परिवर्तन के साथ स्वीकार किया। किन्तु जहां तक संसदीय प्रक्रिया का सम्बन्ध है भारत एक प्रकार से ब्रिटेन का ही अनुगामी है।

भारत के संविधान में प्रक्रिया के नियमों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—

"(१) इस संविधान के उपबन्धों के आधीन रहते हुए संसद का प्रत्येक सदन अपनी प्रक्रिया के, तथा अपने कार्य-संचालन के, विनियमन के लिये नियम बना सकेगा।

" (२) जब तक खंड (१) के आधीन नियम नहीं बनाये जाते तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहिले भारत, डोमीनियन्स के विधान-मंडलों के बारे में जो प्रक्रिया के नियम और स्थायी आदेश प्रवृत्त थे, वे ऐसे रूप में और अनुकूलनों के साथ, जिन्हें, यथास्थिति, राज्य परिषद् का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष करे, संसद के सम्बन्ध में प्रभावी होंगे।

" (३) राज्य-परिषद के सभापति और लोक-सभा के अध्यक्ष से परामर्श करने के पश्चात् राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों सम्बन्धी, तथा उनमें परस्पर संचार सम्बन्धी, प्रक्रिया के नियम बना सकेगा।

" (४) दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में लोकसभा का अध्यक्ष अथवा उसकी अनुपस्थिति में ऐसा व्यक्ति पीठासीन होगा जिसका खंड (३) के आधीन बनाई गई प्रतिक्रिया के नियमों के अनुसार निर्धारण हो।"*

इससे स्पष्ट है कि भारत की संसदीय प्रक्रिया, जो संविधान के प्रारम्भ से पूर्व चालू थी स्वतंत्र भारत के लिये भी स्वीकार की गई है। ब्रिटिश भारत की तत्कालीन संसदीय प्रकिया ब्रिटिश संसदीय प्रक्रिया का एक अंश मात्र थी।

---

*अनु० ११८

उसी में कुछ परिष्कार किया गया है। प्रक्रिया सम्बन्धी कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिये केन्द्र में संसदीय विभाग का एक पृथक मंत्री नियुक्त किया गया है जिसका सचेतक वाले अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है। इस समय कांग्रेस दल के मुख्य सचेतक श्री सत्यनारायण सिन्हा ही संसदीय विभाग के मंत्री हैं* । कुछ राज्यों में भी संसदीय विभाग के लिये उपमंत्री या सभा सचिव की नितुक्ति की गई है।

भारतीय संसद् का कार्य सम्पादित करने में पहले विलम्ब हो जाया करता था। उसे अधिक सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिये जुलाई १९५२ में लोक-सभा के अध्यक्ष श्री मावलंकर के सभापतित्व में १५ व्यक्तियों की एक सलाहकार समिति का निर्माण किया गया है जिसमें सर्व श्री अनन्त संयनम आयंगर, सत्यनारायण सिन्हा, हरिकृष्ण मेहताब, यन० वी० गाडगिल, बी० के० वरोच, एच०वी० पटास्कर, पी० टी० चक्को, पी० टी० पुन्नूज, सारङ्गधर दास, चण्डिकेश्वर शरण सिंह जूदेव, कर्नल वी० यच० जैदी, श्री मती अम्मू स्वामीनाथनन, डा० लका सुन्दरम और सरदार हुकुम सिंह हैं। इस तरह की समिति का निर्माण इसलिये भी आवश्यक था कि पहले न तो सरकार को ही और न संसद् के सदस्यों को इस बात का अनुमान रहता था कि प्रस्तुत विषय पर कब तक वाद-विवाद चलेगा। बहुत से विवादास्पद विषयों को अनावश्यक रूप से अधिवेशन की समाप्ति तक खींचा जाता था। और ऐसे विधेयक पर, जिन्हें केवल औपचारिक ढंग से ही प्रस्तुत किया जाना तथा स्वाकृत होना अपेक्षित था, अधिक जांच पड़ताल के कारण उनमें अनावश्यक रूप से समय नष्ट होता था।

यह समिति संसदीय विषयों से संबधित प्रत्येक कार्य के लिये समय निश्चित करती है और सदन की प्रक्रिया को नियमित रूप से संचालित करती है।

---

* पाकिस्तान में भी हालही में (अक्टूबर १९५२) संसदीय विभाग के लिये एक पृथक मंत्री की व्यवस्था की गई है। वित्त विभाग के उपमंत्री श्री गयासुद्दीन पठान को पहला संसदीय मंत्री नियुक्त किया गया है।

भारत की संसदीय प्रक्रियाके सम्बन्ध में लोक-सभाके अध्यक्ष श्री जी. वी. मावलंकर लिखते हैं* कि प्रजा के हित में प्रशासन चलाने की सामान्य योजना के अनुसार संसद मुख्यतः एक विधान सभा के रूप में कार्य करती है। यह कानून बनाती है, जिसकी सीमा के भीतर रहकर सरकार को अपना कार्य करना पड़ता है। किन्तु संसद् का काम केवल विधान बनाना ही नहीं है। वह स्वयं सरकार की कार्यवाही का कार्य अपने ऊपर नहीं लेती है अपितु उसे अन्य प्रकार से मार्ग-दर्शन करा सकती है। वित्त-संबंधी विषयों पर संसद् का पूर्ण नियंत्रण होता है तथा उसकी स्वीकृति के बिना सरकार एक पैसा भी खर्च नहीं कर सकती, सिवाय उस समय जब कि कोई कानून से खर्चा करने का बोझ उस पर डाला गया हो। संसद् द्वारा स्वीकृत सम्पूर्ण धनराशि तथा कुछ खास अधिनियमों पर व्यय होने वाली राशि, एक सचित कोष के रूप में रखी जाती है जिसमें से संसद् की विभिन्न विषयों में पूरी स्वीकृति के बिना कुछ भी खर्च नहीं किया जा सकता। यह ध्यान में रखने की बात है कि वित्त अथवा धन कोष के तात्पर्य में जनता पर कर लगाने की बात भी आती है अतः आय-व्ययक को स्वीकृत करने का अधिकार लोकसभा को ही है जिसमें सदस्यों का निर्वाचन सीधे वयस्क मताधिकार पर होता है। राज्य परिषद उसकी आलोचना कर सकती है, किन्तु इस सम्बन्ध में लोक सभा का निर्णय ही अंतिम होता है।

और भी कई प्रकार हैं जिनके द्वारा संसद सरकार की कार्यपालिका पर अपना अधिकार और नियंत्रण रखती है। जानकारी के लिये सदस्य मंत्रियों से प्रश्न पूछ सकते हैं तथा प्रति दिन प्रथम घंटे में प्रश्नोत्तर ही चलते हैं, यहां तक कि इस समय का नाम प्रश्नोत्तरकाल ही पड़ गया है। आय-व्ययक स्वीकृत करने के पूर्व सदस्य उस पर आलोचना करते हैं जो दो प्रकार से होती हैं। प्रथम प्रकार समग्र आय-व्यक पर बहस होती है जहां वे सरकार की नीति की आलोचना कर सकते हैं, सुझाव रख सकते हैं, असंतोष प्रकट कर सकते हैं

*संसद् और संविधान।

और कटौती के प्रस्ताव कर सकते हैं, तथा जिनके द्वारा वे विशिष्ट मांगों पर या विशिष्ट प्रश्नों पर बहस और टिप्पणी कर सकते हैं। इसके अलावा प्रत्येक मंत्रालय के साथ निर्वाचित सदस्यों की एक-एक समिति होती है, जो वैसे तो सिद्धांत में सलाहकार के रूप में होती है किन्तु नीति तथा खर्च पर अत्यधिक प्रभाव रखती है। एक अनुमान समिति अभी हाल ही में बनाई गई है जो संसद समिति के रूप में कार्य करती है। इसके अधिकार-क्षेत्र का विकास होने की बहुत ही संभावना है। इसके द्वारा यह अपने प्रभाव-कार्य के अतिरिक्त सरकारी नीति में परिवर्तन करा सकेगी और व्यवस्था तथा व्यय पर नियन्त्रण रखेगी। ये समितियां संसद् के सदस्यों को प्रशासन के विभिन्न अंगों से परिचित रखने के लिये तथा होनहार परिश्रमी सदस्यों को भविष्य के लिये सुयोग्य मत्री बनने की शिक्षा देने की दृष्टि से भी आवश्यक हैं।

यह विशेष रूप से ध्यान देने की बात है कि जहां इस प्रकार से सरकार के नियन्त्रण रखे जाने के विधान हैं वहां संसद् द्वारा स्वीकृत नीतियों के प्रतिदिन के प्रचलन में संसद कोई हस्तक्षेप नहीं करती। कार्यपालिका को क्षेत्र मर्यादा में स्वतंत्रता से तथा अपनी प्रेरणा से कार्य करने का अधिकार होता है। यह लोकतंत्र की परम्परा के अनुकूल ही है तथा कार्य के ठीक-ठीक चलाने के लिये यह आवश्यक है। कार्यपालिका पर प्रश्नों, सुझावों, प्रस्तावों आलोचनाओं आदि द्वारा जो नियंत्रण रखा जाता है वह परोक्ष होते हुए भी महत्वपूर्ण है। प्रत्येक कार्य जनता के समक्ष आ जायगा यही विचार एक प्रकार का अंकुश है। और फिर इसमें सारे मंत्रिमडल के या किसी एक मत्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित करने का भी विधान है।

हमारा संविधान मुख्यतया अंग्रेजी संविधान के अनुरूप है। अत: हमने उनके आधारभूत सिद्धांन्तों और परिपाटियों को भी अपना लिया है। सर्व प्रथम तो यही कि संसद सरकार के प्रभाव से बिल्कुल स्वतंत्र है। इसी से संसद् के अध्यक्ष की न केवल सम्मान वृद्धि हुई है वरन् संसद् कार्य के सब क्षेत्रों में उनको सर्वोच्च अधिकार प्राप्त हुआ है। संसद् का सेक्रेटेरियट अथवा कार्यालय सरकारी नियन्त्रण के बाहर रहकर स्वतंत्र रूप से कार्य करता है। हमारे देश

में अध्यक्ष प्रायः किसी वर्ग या दल से सम्बन्ध नहीं रखते। हमारी लोकतंत्र प्रणाली के विकास-काल में यह संभव नहीं है कि अध्यक्ष ब्रिटिश पार्लमेंट के अध्यक्ष की पूरी तरह बराबरी कर सके और वह स्थान पा सके जो ब्रिटिश अध्यक्ष ने पार्लमेंट की सर्वोच्च शक्ति प्राप्त करने के बाद १०० वर्ष के समय में पाया है, किन्तु अध्यक्ष मुख्य रूप से दलबन्दी में भाग नहीं लेता। तथा उन विवादस्पद विषयों से भी अलग रहता है, जिनकी संसद में उपस्थित किये जाने की संभावना होती है। सरकार और विरोधी दल—ऐसे दो दल के सिद्धान्तों की ओर हम भी प्रगति कर रहे हैं। अपने देश में विधान सभा के सदस्यों की सुविधाएं और विशेषाधिकार ब्रिटिश पार्लमेंट के सदस्यों के बराबरी में ही पाये जाते हैं, जैसे उन्हें बन्दी नहीं बनाया जा सकता, उन्हें विचार व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार है इत्यादि। यह ध्यान देने की बात है कि संसद् भवन में सभी संबंधित विषयों पर अध्यक्ष का अधिकार है।

संसद् की कार्यवाही के सम्बन्ध में जन साधारण की यह धारणा है कि संसद् का (जिससे प्रायः लोक सभा का अभिप्राय होता है, क्योंकि राज्य-परिषद को अधिकांश लोग नहीं जानते) काम केवल कानून बनाना है। दो शताब्दि पूर्व बड़े-बड़े विचारक और शासक, राजनीतिज्ञ और विधानज्ञ यही मानते थे कि व्यवस्थापिका का क्षेत्र केवल कानून बनाना है। उनमें नेपोलियन का नाम उल्लेखनीय है। व्यवस्थापिका के प्रति पूरा सम्मान प्रकट करते हुए भी नेपोलियन का यह दृढ़ मत था कि संसद् को कार्यपालिका की स्वतंत्रता का उसी प्रकार आदर करना चाहिए जिस प्रकार वह अपनी स्वतंत्रता की अपेक्षा करती है। उसे सरकार की आलोचना नहीं करनी चाहिए*।

* "The legislature, according to him, should legislate, should construct grand laws on scientific principles of jurisprudence, but it must respect the independence of the executive as it desires its own independence to be respected. It must not criticise the Government."

—Ilbert : *ibid.*

संसद् के तीन मुख्य कार्य होते हैं—वह कानून बनाती है, राज्य की आय के श्रोत मालूम कर 'कर' लगाती है और वाद-विवाद के द्वारा सरकार के कार्यों पर नियंत्रण रखती है। उसके तीन प्रमुख अंगों के अनुरुप संसद् अथवा विधान-मंडल की प्रक्रिया तथा काम-काज के संचालन के नियम बनाये जाते हैं। ब्रिटिश संसद की कार्य-विधि के नियमों में से अधिकांश अलिखित हैं जो प्रथाओं और परम्पराओं पर आधारित हैं, कुछ स्थायी नियम भी हैं, जिनके बिना स्थायी आदेश और संसद् के आदेशों के आधार पर ब्रिटिश संसदीय पद्धति का समूचा ज्ञान नहीं हो सकता। उन नियमों में संसद् जब चाहे परिवर्तन कर सकती है किन्तु इसके साथ ही संसद् के सदस्य सदा इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि वे पहले से चली आ रही प्रथाओं और परम्पराओं का आदर करें। वे परम्परा से प्राप्त हुए नियमों को बदलने में नहीं बल्कि उनका पालन करने और उन्हें स्थायी बनाये रखने में अपना गौरव समझते हैं। नियमों में परिवर्तन करना केवल तब ही आवश्यक समझा जाता है जब यह अनुभव हो कि अमुक नियम सभा की कार्यवाही को सुचारु रूप से सम्पादित होने देने में बाधक है। असंकाइन मे लिखता है कि ब्रिटिश-संसद् के दोनों सदनों के स्थायी नियम पृथक-पृथक कार्यों के लिये समय निर्धारित करने एवं विभिन्न विषयों की कार्य-प्रणाली को सुचारु रूप से सम्पादित करने में सहायक होते हैं। परम्परा के अनुसार मंत्रिमडल द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव, संकल्प या विधेयक को प्राथमिकता मिलती है। सदन के अन्य दलों अथवा स्वतंत्र सदस्यों को प्रायः एक दिन का समय मिलता है जब कि वे निजी रूप में कोई विधेयक प्रस्तुत कर सकते हैं। उसके लिये भी ऐसा समय निश्चित होता है जब दीर्घ काल से सदन की कार्यवाही जारी रहने के कारण अधिकांश सदस्य ऊब जाते हैं और प्रस्तावित विषय को जल्दी से जल्दी निपटाना चाहते हैं। इस प्रकार अ-सरकारी कार्यों के लिये अत्यल्प समय मिलता है।

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सभापति-श्रेणि के चुनाव की प्रक्रिया

समस्त चुनाव-क्षेत्रों से चुनाव-परिणामों की घोषणा हो जाने के पश्चात् लोकसभा की बैठक होती है। लोकसभा के प्रथम अधिवेशन की पहली तिथि की सूचना, जिसका निश्चय राष्ट्रपति करता है, सचिव द्वारा सब सदस्यों को दी जाती है। लोकसभा का सबसे पहला काम अध्यक्ष का चुनाव करना है। शब्दकोष में अध्यक्ष की परिभाषा करते हुए लिखा है "लोकसभा के सदस्य अपने में से जिस व्यक्ति को अपना प्रतिनिधित्व करने तथा सभा की अध्यक्षता के लिये निर्वाचित करते हैं वह लोकसभा का अध्यक्ष होता है*।" इसका अर्थ यह हुआ कि (१) अध्यक्ष-पद के लिये वही व्यक्ति उम्मीदवार हो सकता है जो लोकसभा का सदस्य है, (२) उसका निर्वाचन उसी सदन के द्वारा होता है और (३) सभा की अध्यक्षता करने के अतिरिक्त वह उसका सम्माननीय प्रतिनिधि भी है। लोकसभा और राष्ट्रपति के बीच समस्त संदेश-वाहन का कार्य अध्यक्ष के माध्यम से होता है। सभा की कार्यवाहियों को संचालित करने तथा प्रक्रिया के नियमों का सदन द्वारा पालन कराये जाने की जिम्मेदारी अध्यक्ष पर होती है§। बिना अध्यक्ष के सभा का निर्माण अधूरा समझा जाता है। अध्यक्ष के अधिकार और कर्त्तव्यों का मैं संसद वाले अध्याय में उल्लेख कर चुका हूँ। संसदीय प्रक्रिया सम्बन्धी अध्यक्ष के कार्यों का यहां विवेचन करना आवश्यक है।

ब्रिटेन में अध्यक्ष-पद ऐसे व्यक्ति को सौंपा जाता है जिसके सम्बन्ध में सबको यह विश्वास रहता है कि वह प्रतिभाशाली और योग्य व्यक्ति होने के अतिरिक्त निष्पक्षता से अपना कार्य सम्पादित करने की क्षमता रखता है। लोकसभा के चुनाव के लिये भी जब वह खड़ा होता है, वह चाहे जिस

*"The member of the House of Commons who is chosen by the House itself to act as its representative and to preside over its debates."

§ Edward Porritt : The Unreformed House of Commons. —Vol. 1 p. 394.

दल की ओर से चुनाव लड़े, उसका प्रायः विरोध नहीं किया जाता† । अपवादस्वरूप केवल दो बार (सन् १८९५ और १९३५ में) चुनाव हुआ‡ ।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में जो परम्परा चलायी जा रही है वह इसके विपरीत है। गत आम चुनावों में ऐसे व्यक्तियों का संसद् या विधान-मण्डल के चुनाव में तो विरोध किया ही गया, किन्तु अध्यक्षपद के चुनाव में भी लगभग सब स्थानों पर कड़ा विरोध किया गया। लोकसभा के अध्यक्ष पद के लिये श्री जी. वी. मावलंकर का विरोध श्री मोरे ने किया। मावलंकर जी को ३९४ मत प्राप्त हुए और उनके प्रतिद्वन्द्वी को ५५। बिहार के अध्यक्ष-पद के लिये श्री विंध्येश्वरी प्रसाद वर्मा के विरुद्ध झारखण्ड दल के श्री पाल दयाल खड़े हुए जिसमें श्री वर्मा को ७४ और पाल दयाल जी को २८ मत मिले। उत्तर प्रदेश में श्री आत्माराम गोविन्द खेर को ३६६ मत मिले और उनके प्रतिद्वन्द्वी श्री निहालुद्दीन को केवल २४। (इसमें विधान सभा का नव-निर्मित 'संयुक्त दल', जिसमें हिन्दू महासभा, जन-संघ और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के प्रतिनिधि और कुछ स्वतंत्र सदस्य शामिल थे, मतदान से पृथक रहे।) इस प्रकार अन्य राज्यों में भी दलबन्दी के आधार पर अध्यक्ष

---

†"In connection with the election of the Speaker the tradition of the House of Commons is of re-electing the Speaker at the beginning of each New Parliament as long as he is willing to stand. In the House of Commons there is a more important and dignified convention in respect of the election of the Speaker and it is that he is not opposed in his constituency."

(Campion : Instroduction to the procedure of the House of Commons pp. 53-54,

‡An exception to this rule occured in the year 1895, when the Speaker, Mr. Gully, was unsuccessfully opposed by a candidate put up by the Tories in his constituency, Carlisle. . . . . . . Though the Conservative-Unionist party had in the meantime gained a majority, Mr. Gully was, as a matter of fact, unanimously re-elected as Speaker, in spite of his coming from the Liberal party."

—Josef Redlich : The procedure of the House of Commons, Vol. II, p. 133.

का चुनाव किया गया। सबसे उल्लेखनीय मद्रास की घटना थी। मद्रास विधान सभा के अध्यक्ष श्री शिवषणमुखम पिल्लै, जो पिछली विधान सभा (मद्रास प्रान्तीय धारा सभा) के भी सदस्य रह चुके थे, इस बार मद्रास विधान सभा की सदस्यता के लिये एक स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए। बिना किसी दल की सहायता के वे चुनाव में विजयी हुए, यह उनकी लोकप्रियता का प्रमाण था। किन्तु जब उन्हें विधान सभा की अध्यक्षता के लिये खड़ा किया गया तो उनका कड़ा विरोध हुआ। तथापि श्री पिल्लै १६२ के विरुद्ध २०६ मतों से चुनाव जीत गये।

जिस तिथि को चुनाव किया जाना निश्चित हो उससे एक दिन पूर्व लोकसभा के कोई भी दो सदस्य दोपहर से पहले एक निर्देशन-पत्र पर सभा के किसी अन्य सदस्य का नाम अध्यक्ष-पद के लिये प्रस्तावित कर सचिव के पास प्रस्तुत करते हैं। उसमें से एक प्रस्तावक तथा दूसरा समर्थक होता है। नाम प्रस्तावित करते समय उन्हें पदाभिलाषी की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक होती है। इसके अतिरिक्त नाम प्रस्तावित होने से पूर्व उन तीनों (पदाभिलाषी, प्रस्तावक और समर्थक) का लोकसभा के सदस्य के रूप में शपथ लेना आवश्यक होता है, अन्यथा निर्देशन-पत्र वैध नहीं समझा जा सकता। चुनाव के दिन जो व्यक्ति सभा का सभापतित्व करता है वह पदाभिलाषी तथा उसके साथ-साथ प्रस्तावक और समर्थक का नाम घोषित करता है। यदि एक ही व्यक्ति का नाम प्रस्तावित किया गया हो तो वह निर्वाचित समझा जायगा।* किन्तु यदि दो या दो से अधिक व्यक्तियों के नाम प्रस्तावित हों तो मत-पत्र द्वारा निर्वाचन होता है।

जहां दो से अधिक पदाभिलाषी प्रस्तावित किये गये हों और प्रथम मत-दान में किसी पदाभिलाषी ने शेष पदाभिलाषियों द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण मतों से अधिक मत न प्राप्त किये हों तो वह पदाभिलाषी जिसने सबसे कम मत प्राप्त किये हैं, निर्वाचन से पृथक कर दिया जाता है और मत-दान का कार्य होता रहता है। प्रत्येक मतदान में सबसे कम मत प्राप्त करने वाला पदाभिलाषी

* T. Erskine May : Parliamentary Practice, p. 145.

निर्वाचन से उस समय तक पृथक किया जाता रहेगा जब तक कि एक पदाभिलाषी को शेष बचे हुए अन्य पदाभिलाषियों (या पदाभिलाषी) के सम्पूर्ण मतों से (जैसी भी दशा हो) अधिक मत न प्राप्त हो जायं। शेष बचे हुए पदाभिलाषी (या पदाभिलाषियों) के सम्पूर्ण मतों से अधिक जिस पदाभिलाषी के मत होंगे वह निर्वाचित समझा जायगा। यदि किसी मत-दान में तीन या उनसे अधिक पदाभिलाषियों ने समान संख्या में मत प्राप्त किये हों तो उनका भाग्य निर्णय पर्ची डाल कर किया जायगा।†

अध्यक्ष का चुनाव हो जाने के पश्चात् तत्काल ही चुनाव-फल की घोषणा कर दी जाती है। उसके बाद सदन का नेता, और विभिन्न दलों के नेता उसे बधाई देते हैं। उनके संक्षिप्त भाषण भी होते हैं। अध्यक्ष सदन को धन्यवाद देता हुआ आश्वासन देता है कि वह यथा-शक्ति निष्पक्षता से कार्य करेगा, और सभा से सहयोग की अपेक्षा करता है।

संसदीय सचिव औपचारिक ढंग से राष्ट्रपति को इसकी सूचना देता है और राष्ट्रपति उसे स्वीकार कर लेता है। सन् १६१६ के कानून के अनुसार जब तक गवर्नर-जनरल अध्यक्ष के निर्वाचन की पुष्टि नहीं करता था, तब तक चुनाव परिणाम के अनुसार कार्य आरंभ नहीं हो सकता था गवर्नर-जनरल अपनी तथा भारत मंत्री की ओर से अधिकृत रूप से उसकी घोषणा करता था*। किन्तु

† Rules of Procedure and Conduct of Business in Parliament, p, 4.

* "Mr. chairman—In accordance with the provision of sub-rule (3) of rule 5 A of the Indian Legislative Rules, I have to announce to Honourable Members that six nomination papers duly filled in have been received on behalf of Mr. Vithalbhai Patel. The names of the proposers and seconders are as follows :

Proposers : Pt. Moti Lal Nehru, Mr. K. C. Neogy, Mr. K. C. Roy, Lala Lajpat Rai, Seth Haji Abdulla Haroon, Mr. K, Ahmad,

Seconders : Mr. A. Ramaswami A Iyengar, Mr. B. Das, Mr. Sarabhai Nemchand Haji, Mr. M. R. Jayakar, Mr. W. M. P. Ghulam Kadir Khan, Khan Bahadur Haji Abdullah Haji Kasim.

जब १६३५ में प्रान्तों में नया कानून लागू हुआ तब प्रान्तीय धारासभाओं में इस प्रक्रिया में परिवर्तन कर दिया गया और धारा-सभा जिस व्यक्ति को अध्यक्ष चुन लेती वह बिना किसी प्रकार की आपत्ति उठाये स्वीकार कर लिया गया। अध्यक्ष का चुनाव होने पर राष्ट्रपति की स्वीकृति (ब्रिटेन में राजा की स्वीकृति) उल्लिखित चुनाव पर मुहर लगाने के लिए होती है। यह एक प्रकार का औपचारिक कार्य होता है। ब्रिटेन में अपवाद स्वरूप जैसे और भी बहुत सी बातें हैं वैसे ही अध्यक्ष के चुनाव पर कभी-कभी राज्य द्वारा विरोध होना असंभव बात नहीं है। चार्ल्स द्वितीय के समय हुई एक घटना (जिस में राजा ने सर एडमंड सेमोर को लोक सभा का अध्यक्ष चुना जाना अस्वीकार किया था) अतिरिक्त कभी भी राजा ने इस पर आपत्ति नहीं की*। कालान्तर में उसकी शक्तिका और भी ह्रास हो गया।

जिस व्यक्ति को अध्यक्ष चुना जाता है वह, चाहे जिस दल के उम्मीदवार

---

*As no nomination papers have been received on behalf of any other member, I declare Mr. Patel duly elected. (Applause) In this connection, I have received the following Message from His Excellency the Viceroy and Governor-General.

(The Assembly received the message standing.)

"In pursuance of the provisions of section 63 C of the Government of India Act, I, Edward Frederick Lindley, Baron Irwin, hereby signify that I approve the election by the Legislative Assembly of Mr. Vithalbhai Javerbhai Patel as President of the said Assembly.

(sd) Irwin. Viceroy and Governor-General."

I accordingly invite Mr. Patel to occupy the Chair. (Applause.) (The Chairman then vacated the chair, which was occupied by the Honourable Mr. Vithalbhai Javerbhai Patel".)

—The Legislative Assembly Debates, Vol. I, p. 10

"In the House of Commons the election of Speaker has to be confirmed by the Royal approbation and there has been no occasion when this has been refused except once in the case of the election of Sir Edward Seymour in the time of Charles II."

—Campion : ibid, p. 53.

के रूप में लोक सभा में चुना गया हो, अध्यक्ष पद ग्रहण करने के पश्चात् सदन के भीतर और बाहर न केवल दलबन्दी से पृथक रहता है, वरन् सक्रिय राजनीति से सन्यास ले लेता है।* जिस दल का टिकट लेकर वह सभा में चुना जाता है उससे वह स्वतः पृथक हो जाता है। राबर्ट लूसका तो यह कथन है कि अध्यक्ष का पद स्वीकार कर लेने के बाद वह उन अधिकारों का भी उपयोग नहीं करता जो अपने निर्वाचन क्षेत्र के किसी प्रतिनिधि को प्राप्त होते हैं।†

अध्यक्ष का चुनाव हो जाने के पश्चात् वह सदन में सभा के अन्य सदस्यों द्वारा शपथ-ग्रहण कराता है‡। शपथ-ग्रहण अनिवार्य है §। यदि कोई सदस्य निश्चित तिथि तक शपथ-ग्रहण न करे तो उसका स्थान रिक्त घोषित किया जाता है और उस चुनाव क्षेत्र में, जिससे चुन कर वह संसद में आया है, पुनः चुनाव की व्यवस्था की जाती है। ब्रिटिश संसद् में भी यही प्रक्रिया है।[1]

उपाध्यक्ष का चुनाव—

अध्यक्ष के अतिरिक्त सदन को एक उपाध्यक्ष का चुनाव करना भी आवश्यक होता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष सदन की अध्यक्षता ग्रहण करता है। लोकसभा का अध्यक्ष तथा राज्य परिषद का सभापति नित्य मध्याह्न के पश्चात् सदन की अध्यक्षता करते हैं। राज्यों में भी यही प्रक्रिया अपनायी गई है।

---

* "The member of the House of Commons who is elected to the chair ceases, from the moment of his election, to belong to any political party; this condition precedent for the Speaker's impartiality, his exclusion from the conflict of parties, has been an unwritten law of Parliament since the beginning of the nineteenth century."

—Redlich, ibid, vol. II p. 132.

† Robert Luce : The Legislative Procedure, p. 435

‡ भारत का संविधान पृ० ३५४, ३५६

§ May : ibid, p. 149

1 Campion : ibid, p. 78, p. 131.

यह आवश्यक नहीं कि उपाध्यक्ष का चुनाव भी उसी दिन हो जिस दिन अध्यक्ष का होता है। अपितु यह अव्यावहारिक होता है, किन्तु यथाशीघ्र इसकी व्यवस्था की जाती है। अध्यक्ष चुनाव की तिथि निश्चित करता है। जो प्रक्रिया अध्यक्ष के चुनाव की होती है वही उपाध्यक्ष की भी होती है। भारत वर्ष में ब्रिटिश शासनकाल में चुनाव की पुरानी प्रक्रिया के नियम ऐसे थे कि निर्देशन-पत्र चुनाव के थोड़ी देर पहले भी प्रस्तुत किये जा सकते थे। सन् १९२१ में बम्बई प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के अध्यक्ष पद के चुनाव के लिए, और उसके पश्चात् सन् १९३० में उत्तर प्रदेशीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के अध्यक्ष के चुनाव के लिए, मत-दान के कुछ ही मिनट पहले तक निर्देशन पत्र प्रस्तुत कियेजाते रहे*। किन्तु अब संसदीय प्रक्रिया के नये नियमों के अनुसार जिस प्रकार अध्यक्ष के चुनाव के लिए निर्देशन-पत्र एक दिन पूर्व सचिव के पास दिया जाता है उसी प्रकार उपाध्यक्ष के चुनाव के लिए भी निर्देशन-पत्र एक दिन पूर्व देना होता है। अध्यक्ष की भांति उपाध्यक्ष का चुनाव भी दल बन्दी की भावना से रहित होना चहिये।

सदन की कार्यवाही संचालित करते समय उपाध्यक्ष के वही अधिकार होते हैं जो अध्यक्ष के हैं। ब्रिटिश लोक सभा का पहला स्थायी आदेश इसी सम्बन्ध का है†। और ८१ वें स्थायी आदेश और १८५५ के डिपुटी स्पीकार ऐक्ट के अनुसार दोनों बारी-बारी से सदन की अध्यक्षता करते हैं‡।

सभापति-श्रेणि—

संसद् के चुनाव के पश्चात् लोक-सभा का अधिवेशन आरंभ होने के कुछ ही दिनों के भीतर अध्यक्ष सदन के सदस्यों में से एक सभापति-श्रेणि का निर्देश करता है। लोकसभा की संसदीय प्रक्रिया के नियमों में यह संख्या अधिक से

---

* Chamier ibid, p. 17

† "in the case of the Speaker's unavoidable absence, to "perform the duties and exercise the authority of Speaker in relation to all proceedings of the House . . ."

— Standing Order I

‡ May : ibid, p. 182.

अधिक छः निश्चित की गई है। राज्य विधान सभाओं में सभापति-श्रेणि की संख्या अलग-अलग है। अनुच्छेद १८० (२) के अनुसार उत्तर-प्रदेश[a] और हिमाचल प्रदेश[b] में दस-दस सदस्यों की सभापति-श्रेणि बनाई गई है तथा बंगाल[c], मध्यभारत[d], आसाम[e], मध्य प्रदेश[f], मद्रास[g], पंजाब[h], मैसूर[i], हैदराबाद[j] और पटियाला तथा पूर्वी पंजाब रियासती संघ[k] में चार-चार हैं। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों की अनुपस्थिति में इनमें से कोई भी व्यक्ति जिसे वे सदन की अध्यक्षता करने के लिए आग्रह करें इस पद पर काम करता है। जिस समय वह सदन की अध्यक्षता करता है उसे वही अधिकार प्राप्त होते हैं जो अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष के होते हैं।

सभापति-श्रेणि में निर्दिष्ट किये गये व्यक्तियों की सूचि में अध्यक्ष आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन भी कर सकता है। जब तक नये नामों की घोषणा नहीं की जाती तब तक वे उस पद पर बने रहते हैं और आवश्यकता पड़नेपर अध्यक्ष का आसन ग्रहण करते हैं।

Redlich : Parliamentary Procedure, Vol. II p, 170

a—4 rule 7 (I), b—rule—7 (I), c—rule—7, d—rule 7 (I) e—rule 6 (1), f—rule 7, (I) g—rule 15, h—rule 11 (I), i—rule 6, j—rule 7 (I), k—rule 11 (I).

सदन में सदस्यों द्वारा पालनीय नियम

उपस्थिति-पत्रक—

सभा के प्रत्येक उपवेशन में सदन में एक मेज पर, जो सचिव के निकट रखी होती है, उपस्थिति-पत्रक (रजिस्टर) रखा रहता है। सदन में प्रवेश करने के पश्चात् बैठक की कार्यवाहियों में भाग लेने से पूर्व अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मंत्रीगण तथा सभा के सब सदस्य उस उपस्थिति-पत्रक पर अपने हस्ताक्षर करते हैं। जो सदस्य हस्ताक्षर नहीं करता वह उस दिन उपस्थित नहीं समझा जाता। इसका कुप्रभाव सदस्य के दैनिक भत्ते पर (जो सभा की बैठक के दिनों प्रत्येक सदस्य को प्राप्त होता है) ही नहीं बल्कि उन कार्यवाहियों पर भी पड़ने का अन्देशा होता है जिनमें वह सदन का सदस्य होने के नाते भाग लेता है। इसलिये यदि वह सदस्य, जिसने सभा की कार्यवाहियों में तो भाग लिया है किन्तु किसी कारण उपस्थिति-पत्रक पर हस्ताक्षर करना भूल गया, दो दिन के भीतर अध्यक्ष से प्रार्थना करे और अध्यक्ष को भी सन्तोष हो जाय कि वह सचमुच सदन में उपस्थित था तो उपस्थिति अंकित होने की अनुमति प्रदान कर दी जाती है।

गण पूर्ति—

सदन की कार्यवाही आरंभ होने के लिये गण पूर्ति का होना अनिवार्य है। गणपूर्ति (कोरम) से अभिप्राय यह होता है कि संसद (लोकसभा और राज्य-परिषद) अथवा विधान मण्डल (विधान सभा और विधान-परिषद) की कुल सदस्य-संख्या का कम से कम दस प्रतिशत भाग (लोकसभा के लिए ५० सदस्य) सदन में उपस्थित हों*। यदि बैठक आरंभ होते समय गणपूर्ति नहीं होती तो सभा की कार्यवाही शुरू नहीं की जाती। ब्रिटिश लोकसभा में गणपूर्ति के अभाव में अध्यक्ष अपना आसन भी ग्रहण नहीं

* "Forty members, includiug the Speaker, form the quorum of the House."

करता* । दो मिनट तक घंटी बजती रहती है, यदि पांच मिनट के भीतर सदस्य सदन में उपस्थित नहीं हुए तो अध्यक्ष सभा की कार्यवाही उसी दिन कुछ समय के लिये, अथवा अगले दिन के लिये, स्थगित कर देता है ।

घंटी बजने के पश्चात् यदि सदस्य सदन में पहुंच जाते हैं और गणपूर्ति हो जाती है तो आध घंटे के भीतर पुनः गणपूर्ति अनावश्यक समझी जाती है । ब्रिटिश लोकसभा में इससे भिन्न प्रक्रिया है । वहां पर कोई प्रश्न पूछे जाने के पश्चात् यदि यह पाया गया कि गणपूर्ति नहीं है तो पुनः गिनती नहीं कराई जाती† । शपथ-ग्रहण के अवसर पर यदि एक दिन में शपथ-ग्रहण का कार्य पूरा न हो तो दूसरे दिन आरंभ होगा, किन्तु पहले दिन की भांति दूसरे दिन भी पुनः गणपूर्ति होनी अपेक्षित है । ‡

*"In the House of Commons the Speaker does not take the Chair if he finds that there is no quorum. Once the Speaker has taken the Chair the initiative of ascertaining whether there is quorum in the House or not must be exercised by the House itself, but it is incumbent on the Speaker to satisfy himself before taking the Chair that a quorum exists."

—May : Parliamentary Practice, 13th ed. p. 223

† "In the House of Commons when a question has been put and then it is discovered that there is no quorum, the House cannot be counted."

(A. B. C. of Parliamentatry Procedure.)

‡ "In that House it has been found impracticable to finish the swearing in of members in a day when a new Parliament assembles. So it has to be carried on to the following day. On this day when the swearing in is resumoed there must be a quorum in the House and the Speaker in the Chair.

—Campion : ibid, p. 78

संसदीय प्रक्रिया में गणपूर्ति क्रमिक विकास का फल नहीं है वरन एक अप्रत्यशित घटना के फल स्वरूप की गई व्यवस्था है। ५ जनवरी १६४० को प्योरिटनों के सदस्य जिनका लोकसभा में स्पष्ट बहुमत होते हुए भी, उस दिन सभा की कार्यवाही आरंभ होने के समय तक अपने विरोधियों से कम ही सदन में उपस्थित थे, उस स्थिति से बचने के लिये तुरन्त एक सरकारी आदेश प्रेषित किया गया, जिसमें कहा गया कि जब तक सदन में कमसे कम चालीस सदस्य उपस्थित न होंगे अध्यक्ष अपना आशन ग्रहण न करेंगे †। यह संख्या लोकसभा की कुल सदस्य संख्या का दसवां भाग थी। उस समय से इस नियम में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया है। ब्रिटेन की संसदीय परम्पराओं का अनुकरण करते हुए भारतवर्ष में भी गण-पूर्ति कुल सदस्य-संख्या का दस प्रतिशत रखी गई। ब्रिटिश शासन-काल में यह व्यवस्थापिकाओं में कुल सदस्य-संख्या का छठा भाग थी।

भारत की व्यवस्थापिका सभाओं में अधिकांश सभासद प्रायः गण-पूर्ति का महत्व अनुभव नहीं करते। प्रत्येक अधिवेशन में किसी न किसी दिन अध्यक्ष को सदन की कार्यवाही स्थगित करने का आदेश देना पड़ता है क्योंकि आवश्यक गण-पूर्ति नहीं होती। भोपाल राज्य की विधान सभा में गण-पूर्ति का अभाव सर्वाधिक रहता है। १३ अक्टूबर १९५२ को विधान-सभा के उपाध्यक्ष श्री लक्ष्मी नारायण को यह निर्णय करके संतोष कर लेना पड़ा कि एक बार गण-पूर्ति होजाने के पश्चात् शेष कार्यवाही के लिये उसका होना अत्यावश्यक नहीं है। पिछली संसद के समय गण-पूर्ति न होने की अधिक शिकायतें हुआ करती थीं और अध्यक्ष तथा सचेतक को प्रत्येक समय

—May, ibid, 12th edi. p. 206

† House of Commons Journals, Vol. II, p. 63.

सदस्यों को ठीक समय पर सदन में उपस्थित होने और पूरे समय तक सभा की कार्यवाहियों में भाग लेने की चेतावनी देनी पड़ती थी। नयी संसद से यह शिकायत कुछ कम हुई है। १६ जून १९५२ को लोकसभा के उपाध्यक्ष श्री अनन्त शयनम आयंगार ने कहा कि अध्यक्ष से मुझे सिफारिश करनी पड़ेगी कि जब सदन में काम हो रहा हो तब इस बात का ध्यान रखा जाय कि कौन-सा सदस्य कितनी देर तक सदन में रहता है और कितनी देर सदन से बाहर। इससे उस सदस्य के निर्वाचन-क्षेत्र वालों को लाभ होगा। इस बात पर खेद प्रकट करते हुए कि मध्यानान्तर तत्काल ही सदस्यगण यह अनुभव करने लगते हैं कि सदन में कुछ त्रुटि है और वे प्रकोष्ट में चले जाते हैं। लोकसभा के सदस्यों के निर्वाचन पर प्रचुर धन व्यय हुआ है इस लिये जिस समय सदन में काम हो रहा हो उस समय उन्हें प्रकोष्ट में या अन्यत्र नहीं जाना चाहिये।

सदस्यों के बैठने का क्रम—

ब्रिटिश लोकसभा में सदस्यों के बैठने के लिये कोई निश्चित स्थान नहीं होता, किन्तु परम्परानुसार अध्यक्ष के दायीं ओर अगली पंक्ति में मंत्रि-परिषद के सदस्य बैठते हैं और उसके दूसरी ओर विरोधी दल के सदस्य*। हमारे यहां भी यही परम्परा अपनायी गई है। किन्तु यह क्रम अध्यक्ष द्वारा निश्चित किया जाता है जो आवश्यकता पड़ने पर सदन के नेता तथा विरोधी दल के नेता की सम्मति ले सकता है। इस समय लोकसभा में सदस्यों के बैठने का जो क्रम निश्चित किया गया है उसके अनुसार मंत्रि-परिषद और कांग्रेस दल के सदस्यों को छोड़कर, जो अध्यक्ष के दायीं ओर दल के नेता प्रधान मंत्री नेहरू से प्रारंभ होकर क्रम से बैठते हैं. अध्यक्ष के बाईं ओर बैठने वाले सदस्यों को निम्न प्रकार स्थान दिया गया है : साम्यवादी गुट के नेता श्री ए० के० गोपालन को वह स्थान दिया गया है जो साधारणतः विरोधी पक्ष के नेता को मिलता है। चूंकि चुनाव के पश्चात् बनने वाले विभिन्न संसदीय दलों एवं समूहों में से केवल साम्यवादी गुट को ही मान्यता दी गई है, इसलिये

* May : ibid, p. 165

उन्हें वह स्थान मिला है। समाजवादी प्रजा पार्टी की नेत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी तथा डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी भी विरोधी नेताओं के रूप में अगली पंक्ति में स्थान ग्रहण करते हैं। नामजद सदस्य श्री फ्रैंक (ऐथंनी) को भी आगे स्थान मिला है। दूसरी पंक्ति में सर्व श्री हीरेन्द्र नाथ मुकर्जी, एस. एस. मोरे, सारंगधर दास, रामनारायण सिंह, रामचन्द्र रेड्डी, तुलसी दास किला चन्द्र आदि को स्थान मिला है। १८ जून १९५२ को लोकसभा में बैठने के क्रम पर आपत्ति उठाते हुए आसाम के कांग्रेसी सदस्य श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने शिकायत की कि पुराने सदस्यों में मैं आगे की पंक्ति में बैठा करता था, किन्तु इस नये सदन में तो पीछे ढकेल दिया गया हूँ। मेरे जैसा पुराना सदस्य जो सात साल से आगे की पंक्ति में बैठा करता था अब पीछे बैठाया जा रहा है। इस पर श्री मावलंकर ने उत्तर दिया कि मैंने किसी सदस्य विशेष के लिये स्थान निर्धारित नहीं किया है, बल्कि दलों के लिये उनकी संख्यानुसार स्थान का निर्धारण किया है। शेष अनिर्धारित स्थान कांग्रेस दल के लिये हैं और यह कांग्रेस दल का कर्तव्य है कि वह अपने सदस्यों के स्थान का निर्धारण करें।

सदन की बैठक आरंभ होने पर, अर्थात् अध्यक्ष द्वारा अपना आसन ग्रहण करने के पश्चात्, सदस्यों को अनुशासन में रहकर सदन के नियमों का पालन करना और उसकी प्रतिष्ठा को बनाये रखना चाहिये। सदन में प्रवेश करने, अपने स्थान पर बैठने और सदन के बाहर जाने जैसी साधारण बातों के लिये कोई नियम नहीं बना होता, किन्तु शिष्टाचार की जो परम्परा स्थापित कर दी गई है वह छोटी-छोटी बातों में भी सदस्यों के मार्ग-दर्शन के लिये पर्याप्त है। मद्रास विधान सभा में तो एक बार (१ जुलाई १९५२) विरोधी दल के एक सदस्य ने मुख्य मंत्री श्री राजगोपालाचारी के सदन में बैठकर मुस्कराते रहने पर भी आपत्ति की और अध्यक्ष से कहा कि यह शिष्टाचार के विरुद्ध है। किन्तु उनकी आपत्ति को स्वीकार नहीं किया गया और अध्यक्ष श्री पिल्लई ने निर्णय दिया कि सदस्यों को सदन में मुस्कराने की पूरी स्वतंत्रता है। सदस्यों को अनियमित रूप से सदन

में चलना-फिरना वर्जित है, उन्हें झुक कर इस प्रकार चलना चाहिये कि भाषण देने वाले सदस्य और अध्यक्ष के बीच न आ जायं। कोई सदस्य सदन के बीच से लांघ कर नहीं जा सकता§। अध्यक्ष के प्रति सम्मान सूचक रूप से बैठते समय (या उठते समय) उसकी ओर सर झुकाना चाहिये। उसे सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि व्यवस्थापिका सभा की, जिसका वह सदस्य है, प्रतिष्ठा उसके हाथ में है। सदन की कार्यवाही संचालित करने की जिम्मेदारी अध्यक्ष के ऊपर होती है इस लिये वह सदस्यों की अशिष्टता, उच्छृंखलता और अनुशासन-हीनता पर प्रतिबन्ध लगाता है *। मध्य भारत की विधान सभा में तो पान खाना भी नियम-विरुद्ध है †।

सदन की बैठक के समय कोई सदस्य ऐसी पुस्तक पत्र-पत्रिका या अन्य कोई वस्तु जिसका सभा की कार्यवाही से कोई सम्बन्ध नहीं सदन में बैठकर नहीं पढ़ सकता।‡ संयुक्त प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौन्सिल में १६ मई १६२७

§ May : ibid, p, 305.

* मार्च १६५२ में मध्यप्रदेश विधान सभा की बैठक में उसके एक सदस्य, पण्डित राम गोपाल तिवारी, जो मध्य प्रदेश के पिछले मंत्रिमण्डल में मुख्य सभा सचिव भी रह चुके थे, कुर्सी पर एक पैर रख कर भाषण देने लगे। उनके पास ही दूसरी कुर्सी पर एक महिला भी बैठी थीं। एक सदस्य ने तिवारी जी के इस प्रकार पैर रख कर खड़े होने पर आपत्ति की और अध्यक्ष ने भी उसे अनुचित ठहराया। इसपर तिवारी जी को क्षमा-याचना करनी पड़ी।

† "सभा की बैठक होते समय प्रत्येक सदस्य सभा भवन में न तो कोई चीज खायेगा, न पियेगा, न पान चबायेगा।"—मध्य भारत विधान-सभा की प्रक्रिया तथा काम-काज के संचालन के नियम, अध्याय ५, नियम ३१ (७)

‡ "Members are not to read books, newspapers or letters in their places. This rule, however, must now be understood with some limitations; for although it is still irregular to read newspapers, any books and letters may be referred to by members preparing to speak but ought not to be read for amusement or for business unconnected with the debate."

—May : ibid, pp. 305-6.

को एक सदस्य के सदन की कार्यवाही के समय समाचार-पत्र पढ़ने पर आपत्ति की गई जिस पर सभापति ने निर्णय दिया कि सदन में ऐसी चीज जिसका सभा की कार्यवाही से सम्बन्ध नहीं, पढ़ना अनुचित है। सदस्य व्यवस्थापिका की कार्यवाही को सम्पादित करने के लिये सदन में आते हैं, उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे सदन के प्रत्येक कार्य में दिलचस्पी से भाग लें। उसे नियंत्रित करने और सदस्यों का ध्यान अन्य बातों की ओर न जाने देने के लिये इस प्रकार के नियम आवश्यक हैं। सदन में लेटना या सोना भी अनुचित समझा जाता है।*

सदस्य को अपनी अव्यवस्थित अभिव्यक्तियों, कोलाहल, अथवा किसी अन्य अनुचित कार्य के द्वारा दूसरे सदस्य के भाषण में विघ्न डालने का अधिकार नहीं है। † किन्तु प्रायः इस नियम का इतना अधिक उल्लंघन किया जाता है कि अध्यक्ष के लिये इसका पालन करवाना असम्भव सा हो जाता है। अर्सकाइन मे लिखता है कि १६ मार्च १८७२ को लोक सभामें हुई बहस में इतना शोर मचा कि सदस्यगण तरह-तरह की आवाजें कसने लगे। कुछ तो मुर्गे की तरह बांग देने लगे। बाद में अध्यक्ष ने सदन की प्रतिष्ठा पर बट्टा लगाने के लिये उनकी भर्त्सना की ‡।

कुछ शब्द और वाक्य ऐसे हैं जिनका प्रयोग साधारण रूप से अशिष्ट अथवा असंसदीय नहीं प्रतीत होता किन्तु सदन में उनको बारम्बार दुहराने से वे

* १६ जुलाई १९५२ को बम्बई विधान सभा के सचेतक ने कांग्रेसी सदस्यों को आदेश दिया कि वे सदन में जब सभा की कार्यवाही चल रही हो सोया न करें क्योंकि ऐसा करना सदन के सम्मान के प्रतिकूल है।

† "Members are not to disturb a member who is speaking, by hissing, exclamations or other interruption; and the resolution of the house 22nd January, 1693, enjoins 'that Mr. Speaker do call upon the member, by name, making such disturbance, and that every such person shall incur the displeasure and Censure of the house."

—May : ibid, p. 306

‡ Journals of the House of Commons 152, 473.

अनुशासन हीनता के परिचायक हो जाते हैं। बहुधा सदन में बहुत साधारण शब्दों, जैसे "वाह-वाह", "शान्ति-शान्ति" के दुहराने से या ताली पीटने से, सदन में कोलाहल-सा मच जाता है। अध्यक्ष को सदस्यों से शांति कायम रखने की चेतावनी देनी पड़ती है। यदि उस पर भी सदस्यगण चुप न रहें तब अध्यक्ष सदन की कार्यवाही कुछ समय के लिये अथवा अगले दिन के लिये स्थगित कर सकता है। *

सर आर० पालग्रेव ब्रिटिश लोक सभा की ९ जून १६४१ की कार्यवाही का उल्लेख करते हुए लिखता है कि सदन की कार्यवाही के समय लोकसभा के सदस्य सर डब्ल्यू० कारनबी ऊंचे स्वर में किसी से बातें कर रहे थे। अध्यक्ष ने पहले उन्हें क्रुद्ध दृष्टि से देखा। उन्होंने ध्यान नहीं दिया। तत्पश्चात् उनके अशिष्ट व्यवहार से असन्तुष्ट होकर अध्यक्ष ने उनका नाम लेकर शांत होने का आदेश दिया।† उस जमाने में अध्यक्ष द्वारा सदन में ऐसे अवसर पर किसी सदस्य का नाम लेना एक गंभीर बात समझी जाती थी जिसका अर्थ यह समझा जाता था कि वह संकेत सदस्य के लिये अन्तिम चेतावनी है।

२६ नवम्बर १६५२ को लोकसभा में उप-राजस्व मंत्री श्री एम. सी. शाह उपाध्यक्ष की ओर पीठ करके एक दूसरे मंत्री के साथ बातें करने लगे। उपाध्यक्ष ने शाह को सदन में शिष्टता के साथ बैठने का आदेश दिया और कहा कि सदन में शिष्टाचार के कुछ पालनीय नियम अनिवार्य होते हैं जिनमें एक यह भी है कि कोई सदस्य उस समय को छोड़कर जब वह वापस जा रहा हो, अध्यक्ष की ओर पीठ नहीं कर सकता। ब्रिटिश लोकसभा के स्थायी आदेशों के अनुसार इस प्रकार के अशिष्ट व्यवहार करने पर सदस्य को सदन से बाहर भी निकाला जा सकता है§। भारत की संसदीय प्रक्रिया

* May : ibid, p. 204-5 Standing Order No. 21

† Sir R. Palgrave : The House of Commons, p. 11

§ Standing Orders No. 17 and 19.

नियमावली में अध्यक्ष को अधिकार प्राप्त है कि वह किसी सदस्य के असत् व्यवहार, सदन की कार्यवाही को शांतिपूर्वक सम्पन्न न होने देने और अध्यक्ष द्वारा बार-बार चेतावनी देने पर भी उसकी अवहेलना करने अथवा उच्छृङ्खल आचरण करने के कारण उसे सदन से बाहर निकलने का आदेश दे सकता है* । जिस सदस्य को यह आदेश दिया जाता है वह तत्काल सदन से बाहर चला जाता है और कुछ समय के लिये अथवा उस दिन की शेष बैठक में उपस्थित नहीं रहता । किसी सदस्य को यदि अधिवेशन में पुनः सभा त्याग करने की आज्ञा दी जाय तो अध्यक्ष उस सदस्य को अधिवेशन की शेष बैठकों तक सदन में न आने का आदेश भी दे सकता है ।

इस संबन्ध में लोक सभा के सदस्य श्री आनन्दन नम्बियार का उदाहरण हमारे सम्मुख है । १८ जुलाई १९५२ को लोकसभा में जाब्ता फौजदारी संशोधन विधेयक पर चल रहे वाद-विवाद पर कांग्रेस दल और विरोधी दल में कुछ झड़पें हो गई । विधेयक पर जब चर्चा चल रही थी तब विरोधी दल ने लगभग बीस बार उसमें बाधा डाली और प्रत्येक समय कांग्रेसी दल की ओर से 'शान्ति' 'शान्ति' की जोरों से आवाज की गई । इसी प्रसंग में विरोधी दल के एक प्रमुख सदस्य श्री मोरे और अध्यक्ष में इस प्रकार बार-बार बाधा डालने के प्रश्न पर गरमा गरम बातचीत होने के कारण गड़बड़ी सी शुरू हो गई । इस कहा-सुनी के बाद श्री मोरे सदन से उठकर चले गये ।

थोड़ी देर के बाद अध्यक्ष ने श्री आनन्दन निम्बायर का नाम उन लोगों में गिना जो निरन्तर बाधा डाल रहे थे और अध्यक्ष की व्यवस्था का उल्लंघन कर रहे थे । इस पर श्री निम्बयार ने कहा कि अध्यक्ष ने मेरे साथ

*"The Speaker may, if he deems it necessary, name a member who disregards the authority of the Chair or abuses the rules of the House by persistently and wilfully obstructing the business thereof."

—Rules of Procedure and Conduct of Business in Parliament, rule 172.

न्याय नहीं किया है। अध्यक्ष ने उनसे अपने शब्द वापस लेने को कहा। श्री निम्बयार ने अपने शब्द वापस लेने से इन्कार किया। इस पर अध्यक्ष ने उन्हें सदन से बाहर निकल जाने का आदेश दिया। उत्तर में श्री निम्बयार ने कहा कि मुझे जबर्दस्ती ही निकाला जा सकता है। सदन के दो मार्शल उन्हें उनके स्थान से आगे हटाने में असमर्थ हो गये। सदन के नेता श्री नेहरु ने भी उनसे कहा, किन्तु वे टस से मस न हुए। अन्त में वे स्वतः उठकर बाहर चले ग इस घटना की विस्तृत सूचना वाद-विवाद संबन्धी अध्याय में है।

———

राष्ट्रपति का भाषण

अनुच्छेद ८६ और ८७ के अनुसार राष्ट्रपति को संसद के दोनों सदनों को सम्बोधित करने और उन्हें संदेश भेजने का अधिकार है। संसद के प्रत्येक सत्रारंभ में राष्ट्र-पति का विशेष आदि भाषण होता है*। भाषण का मसविदा बहुत छोटा होता है। उसे वह प्रधान मंत्री की सम्मति लेकर तैयार करता है। राष्ट्रपति के भाषण में सरकार के पिछले कार्यों का सिंहावलोकन और भावी नीति पर प्रकाश डाला जाता है। सरकार की गृह-नीति तथा विदेश नीति राष्ट्रपति के भाषण में निहित होती है। उसी प्रकार राज्य की विभिन्न समस्याओं का विवेचन राज्यपाल, राजप्रमुख अथवा उप-राज्यपाल, जो भी राज्य का प्रधान हो, विधान मण्डल के सम्मुख दिये गये भाषण में निहित होता है।

यहां पर राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का ५ फरवरी १९५२ को संसद के सदस्यों के सम्मुख दिया गया भाषण उद्धृत किया जाता है। इससे देश की तत्कालीन स्थिति का ज्ञान होने के साथ-साथ यह भी पता चलता है कि राष्ट्रपति का भाषण कितना महत्वपूर्ण एवं सार गर्भित होता है। राष्ट्रपति ने कहा थाः—

"संसद के सदस्यों, असाधारण परिस्थितियों में हम आज यहां मिल रहे हैं। इस समय भी जब यह संसद् बैठने जा रही है, भारत की जनता की पसंद से और उसके आदेश पर नई संसद् बन रही है। पूरी तरह से संगठित होते ही नई संसद् का यह अहोभाग्य और जिम्मेदारी होगी कि वह इस महान् देश का शासन करे। किन्तु उसके बनने की प्रतीक्षा में ही हम बैठे नहीं रह सकते क्योंकि भारत के संविधान का यह विधान है कि संसद् की दो बैठकों के बीच में ज्यादा समय न बीते। साथ ही कई आवश्यक और महत्वपूर्ण बातें हैं जिन्हें वैत्तिक वर्ष के समाप्त होने से पहले ही तय करना जरूरी है। इसलिए

* Rule 19.

यहां इन्हीं महत्वपूर्ण बातों और खास कर के अगले वैत्तिक वर्ष के खर्चे की मंजूरी के लिए लेखानुदान और चालू वैत्तिक वर्ष के लिए अनुपूरक अनुदान को स्वीकार करने के लिए हम मिल रहे हैं। हमारी सरकार ऐसे दूसरे जरूरी अथवा विवादरहित विषयों को ही संसद् के इस सूत्र के सामने रखेगी जिन्हें कि तय किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में यह उचित नहीं होगा और हमारी सरकार का यह प्रयोजन भी नहीं है कि वह आप के सामने ऐसे विवादग्रस्त विषयों को रखे जिन पर विचार स्थगित किया जा सकता है। ऐसे सब विधानों पर विचार करना नई संसद् का काम होगा।

"दो वर्ष हुए जब हमारा संविधान जारी हुआ था और भारत के गणतंत्र का जन्म हुआ था। प्रजातंत्रात्मक संस्थाओं के इतिहास में अभूतपूर्व पैमाने पर साधारण निर्वाचन इस विशाल देश में संविधान के अनुसार हो गया है। भारत की जनता ने जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी कर दी गई है और जो कदम श्रद्धापूर्वक उठाया था वह सही साबित हुआ है। यद्यपि अभी तक साधारण निर्वाचन समाप्त नहीं हुआ तथापि जिस कुशलता के साथ यह बड़ा काम राज्य कर्मचारियों और प्रजाजनों के पारस्परिक सहयोग से संगठित और पूरा किया गया है उसकी मैं प्रशंसा करना चाहता हूँ और हमारे यहां के उन करोड़ों मतदाताओं को मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ जिन्होंने शान्ति और व्यवस्था के साथ अपने मत डालकर उस भरोसे को ठीक साबित कर दिया है जो उनके सम्बन्ध में रखा गया था। सारे देश भर में स्त्रियों ने स्वतंत्रतापूर्वक अपने मताधिकार का प्रयोग कर के जो गहरी दिलचस्पी और उत्साह दिखाया है उस से तो मैं और भी सन्तुष्ट हूँ। हमारे प्रजाजनों की शक्ति और सद्बुद्धि पर आश्रित हमारे गणतंत्र की शान्तिपूर्ण और सहयोगात्मक प्रगति के लिए यह शुभ शकुन है।

"जब कि इस महान् कार्य का भारत ने सफलता से सामना कर लिया है, मुझे इस बात का खेद है कि संसार में अब भी कशमकश की हालत बनी हुई है और कुछ देशों में, जिन से हमारे मैत्री सम्बन्ध हैं, संघर्ष और हिंसात्मक घटनाएं हुई हैं। मिश्र में जो घटनाएं हाल में घटी हैं और जिनके परिणामस्वरूप पर्याप्त विनाश और पीड़ा हुई है उन के लिए मैं अवश्य ही दुःख

प्रकट करता हूँ और अपनी मेरी यह उत्कट आशा है कि जो समस्याएं उस देश के सामने हैं उन्हें शान्तिपूर्ण रीति से सम्बन्धित राष्ट्रों के न्यायोचित अरमानों के अनुरूप हल कर लिया जायेगा।

"पिछली बार जब मैं ने आप के सामने अभिभाषण किया था मैंने यह बताया था कि जिस युग में हम जीवित हैं उस की सब से प्रमुख बात एशिया के देशों का प्रादुर्भाव है। वह महान आन्दोलन आज भी चल रहा है और वह एशिया तक ही सीमित न रह कर अन्य देशों में भी, जिन्हें अब भी स्वतंत्रता हासिल करनी है, फैलता जा रहा है। ट्यूनीशिया में वही स्वतंत्रता की प्रेरणा लोगों को आन्दोलित कर रही है और स्वभावतः उनके साथ हमारी सहनुभूति है। मेरी यह उत्कट आशा है कि युगप्रेरणा पर जो इन आन्दोलनों में व्यक्त हो रही है, रोकथाम नहीं लगाई जायेगी और शान्तिपूर्ण रीति से उस की पूर्ति हो सकेगी। आपकी और अपनी ओर से लीबिया के स्वतंत्र राज्य के प्रादुर्भाव का मैं स्वागत करना चाहता हूँ।

"नेपाल में इस नवस्वतंत्रता को अनेक कठिनाइयों से जूझना पड़ा है। वहां कुछ लोगों ने ऐसी बेवकूफी की जिस से उस राज्य का स्थायित्व भी खतरे में पड़ा। सौभाग्यवश वह असफल हुए और नेपाल सरकार उत्तरोत्तर सुधार के पथ पर चलते रहने के लिए कटिबद्ध है। जो बंधन भारत को नेपाल से बांधे हुए हैं वे नेपाल के प्रधान मंत्री की इस भेंट से और भी दृढ़ हो गये हैं जो उन्हों ने हमारे प्रधान मंत्री से दोनों राष्ट्रों मे सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं में से अनेक पर विचार विमर्श करने के लिए हाल में की थी। इस भेंट के और उसमें कुछ बातचीत के फलस्वरूप दोनों देशों के लिए लाभकारी निर्णय किये गये हैं।

"हमारे महान पड़ोसी चीन के विज्ञान, साहित्य और कला के क्षेत्र में प्रमुख स्थान रखने वाले सज्जनों का एक सांस्कृतिक शिष्टमंडल भारत आया और हम सब ने उस का स्वागत किया और वे लोग हमारी सरकार के मेहमान रहे। शिष्टमंडल ने भारत में दूर-दूर तक दौरा किया और इस प्रकार दोनों देशों की पारस्परिक जानकारी को बढ़ाया जैसा करना कि पारस्परिक सद्भावना के बढ़ाने के लिए नितान्त आवश्यक है। हमारे लोगों की शुभकामनाएं और

उनसे मित्रता के लिए अपनी इच्छा को चीन के लोगों को प्रकट करने के लिए एक सांस्कृतिक शिष्टमंडल चीन भेजने का हमारी सरकार का इरादा है।

"मुझे आप को यह बताने में प्रसन्नता है कि हमने ईरान तुर्की और हिन्देशिया के साथ मैत्री की संधियां कर ली हैं। अफगानिस्तान से वैमानिक यातायात का सम्बन्ध स्थापित कर लिया गया है। फिलपीन से राजदूत के स्तर पर राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये गये हैं और बंगकाक में भारतीय राजा दूत और नई दिल्ली में थाई राजदूत का स्तर उठा कर दूत का स्तर कर दिय गया है। हमने हिन्देशिया और थाईलैण्ड के वैमानिक बल के मिशन का स्वागत किया है। ईरान और अफग.निस्तान से वैमानिक समझौते के लिए बातचीत चल रही है। जापान से शाघ्र ही शान्तिसन्धि हो जाने की हमारी सरकार की आशा है।

"हमारी सरकार की यह हार्दिक कामना और अविचल नीति रही है कि सब देशों से मैत्री और शान्ति सम्बन्ध बनायें रक्खे जायें और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि यह नीति सुफलदायिनी सिद्ध हो रही है। किन्तु मुझे इस बात का खेद है कि दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयों की समस्या का कोई हल अभी नहीं निकल पाया है। संयुक्त राष्ट्र ने इस समस्या पर फिर विचार किया है और तीन सदस्यों का आयोग इस समस्या के, जो न केवल भारत और पाकिस्तान वरन् संसार भर के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, हल करने में सहायता करने के लिए नियुक्त किया है। जातीय असहिष्णुता और आधिपत्य पर आधृत कोई भी नीति वर्तमान जगत में न तो स्वीकार की जा सकती है और न सफल हो सकती है आर उस का अनिवार्य परिणाम केवल संघर्ष होगा जिस से संसार की शान्ति संकट में पड़ जायेगी।

"काश्मीर समस्या पर संयुक्त राष्ट्र अब भी विचार कर रहा है। मुझे आशा है कि इस समस्या का, जो चार वर्षों से चली आ रही है, शीघ्र ही अन्तिम हल निकल आयेगा। वह हल जम्मू और काश्मीर की जनता की इच्छा के अनुकूल ही हो सकता है। मुझे हर्ष है कि वहां जनता का प्रतिनिधान करने वाली संविधान सभा चुन ली गई है और शीघ्र ही उस राज्य के लिए संविधान निर्माण का काम आरम्भ कर देगी।

"पश्चिमी भारत के अधिकतर भाग में तथा अन्य राज्यों के कुछ क्षेत्रों में वर्षा न होने के कारण देश की खाद्यस्थित हमे पर्याप्त चिन्तित कर रही है। अन्य देशों से अन्न लाने के लिए कदम उठाए जा चुके हैं। "अधिक अन्न उपजाओ" आंदोलन का भी अच्छा फल हो रहा है और कुछ चुने हुए क्षेत्रों में इस को और अधिक जोर से चलाने का हमारा निश्चय है। हमारी सरकार ने "अधिक अन्न उपजाओ" आंदोलन की जांच पड़ताल के लिए और उसे सफल बनाने के लिए पर्याप्त कार्यवाही की सिफारिशें करने के लिए एक समिति नियुक्त की है।

"देश की आम आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। थोक कीमत का इन्डेक्स अप्रैल १६५१ के ४५७·५ औसत से गिर कर दिसम्बर १६५१ में ४३३·१ हो गया है। कई उद्योगों की जैसे रूई के कपड़े, पटसन, इस्पात, कोयला, नमक, चीनी, सीमेन्ट, विद्युत् का सामान, रबर का सामान, मशीनी औजार, छोटे औजार, और डिजल इन्जिनों के उद्योगों की पैदावार में अच्छी वृद्धि हुई है। देश के अन्दर खपत के लिए कपड़ा मिलने के बारे में काफी तरक्की हुई है। विदेशों से व्यापार में भी वृद्धि हुई है किन्तु विदेशों से व्यापार का संतुलन हमारे हक में नहीं है और इसलिए आयात और निर्यात में कमी-बेशी कर के उन के अनुपात को सुधारने की काफी जरूरत है।

"कुछ नये उद्योग शुरू किये गये हैं जैसे कि लिनोलियम, स्वसंचालित कर्घे धुनाई का यंत्र, अलूमीनियम पाउडर। गंधक के श्रोत ढूंढ़ लिये गये हैं और भारत को गंधक के बारे में आत्मनिर्भर करने का प्रयास किया जा रहा है। मशीनी औजार और टेलीफोन तार के कारखानों का निर्माण कार्य आरंभ हो गया है, पैनीसिलिन बनाने का कारखाना भी बन रहा है पर फिलहाल पैनीसिलिन को बोतलों में भरने का यंत्र बम्बई में लगाया जा चुका है।

"भारत में तेल शुद्ध करने के कारखानों की स्थापना के लिए कुछ विदेशी समवायों से मूआहदे कर लिये गये हैं।

"सिकन्दर में स्थित खाद बनाने के कारखाने में पैदावार का काम शुरू हो गया है और यह आशा है कि इस वर्ष के आधे खत्म होने तक वह अपनी

पूरी पैदावार करने लग जायेगा। हमारी खेती के लिए यह अत्यन्त लाभदायक होगा और इससे विदेशी मुद्रा में भी काफी बचत होने की आशा है।"

"समुद्री जहाज बनने के विशाखापट्टनम् वाले कारखाने का प्रबन्ध एक नये समवाय के हाथ में लिया जा रहा है। इस समवाय में सरकार का निर्णायक भाग होगा। कच्छ में कंडला के नये बन्दर की आधारशिला अभी हाल में रखी गयी है। यह बन्दर, जिस का महत्व कुछ ही दिनों में काफी बढ़ जायेगा, सारे उत्तरी भारत की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा।"

"विकास योजनाओं के लिये संयुक्त राज्य से ५ करोड़ डालर की सहायता मिलने के समझौते का मैं स्वागत करता हूँ। मुझे इस बात का विशेष संतोष है कि ये योजनाएं विशेषता खाद्य उत्पादन का प्रोत्साहन करने के लिये तथा नीलोखेरी, फरीदाबाद और इटावा जैसी कम्यूनिटी योजनाओं के विकास के लिए हैं। फोर्ड प्रतिष्ठान से ग्राम्य सुधार के लिए समझौते का भी मैं स्वागत करता हूँ।

"श्रमिकों के कल्याण के क्षेत्र में भी प्रगति हुई है। प्लान्टेशन लेबर ऐक्ट और मिनिमम वेजेज़ ऐक्ट पर अमल किया जा रहा है तथा जबरन श्रक से कानूनी संरक्षण के लिए कार्यवाही की जा रही है। एम्पलोईज़ स्टेट इन्श्योरन्स ऐक्ट पर अमल शुरू करके इस दिशामें आरम्भिक कदम उठाया जा चुका है। कृषिक श्रमिकों के सम्बन्ध में जांच का काम खत्म होने वाला है और कुराज्यों में खेती में न्यूनतम मजदूरी के निश्चयन के लिये कार्रवाई की जा रही है। श्रमिकों के लिये घर बनाने की योजना (क) और (ख) श्रेणी के राज्यों में भी लागू की जा रही है। एम्पलोईज प्रोवीडेन्ट फन्ड आर्डिनेन्स जो पिछले नवम्बर में जारी किया गया था, एक महत्वपूर्ण आयोजन है जिस से औद्योगिक श्रमजीवियों के बुढ़ापे में और घर की रोटी कमाने वाले की असामयिक मृत्यु की अवस्था में मदद मिल सकेगी।

"मुझे इस बात की खुशी है कि झगड़ों के निपटाने के लिये बातचीत करने के लिये स्थाई संस्था बनाने के सम्बन्ध में रेलकर्मचारियों से समझौता हो गया है। देश के कल्यान के लिए आवश्यक है कि हमारी यातायात व्यवस्था कुशलता से और बिना किसी रुकावट और बाधा के काम करती

रहे और हरेक झगड़ा मैत्रीपूर्ण बातचीत से निपटा दिया जाये। देश की यातायात की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है। कमी के क्षेत्रों में अन्न के पहुंचाने के काम में रेलों का काम अत्यन्त प्रशंसनीय रहा है।

"कुछ मास पूर्व प्रकाशित पंच-वर्षीय योजना के मसौदे पर उसके प्रकाशन दिन से ही देश में काफी बहस हुई है और बहुत प्रकार की टिप्पणियां और आलोचनाएं आई हैं। योजना आयोग इन सब सुझावों पर बड़े ध्यान से विचार कर रहा है और अपनी अन्तिम रिपोर्ट तैयार करने में लगा हुआ है जिसे, कि वह तीन महीनों में दे देने की आशा करता है। जनता के सब वर्गों में इसके बारे में जो गहरी दिलचस्पी पैदा हुई है उससे हमारी सरकार को बहुत प्रोत्साहन मिला है और उसे पूरा भरोसा है कि इस योजना के निष्पादन में देश की जनता का पूरा सहयोग होगा जिससे कि देश के मानवी और प्राकृतिक सम्पत्तिसाधनों का पूरा पूरा उपयोग हो सके और आर्थिक समस्याओं के हल करने में अधिकाधिक सहायता मिल सके।

"जैसा कि मैं कह चुका हूँ संसद् इस सत्रमें केवल परमावश्यक विधान ही हाथ में लेगी। इस आवश्यक विधान में ऐसे अध्यादेश जो संसद् के पिछले सत्र के बाद निकाले गये हैं और राष्ट्रपति—उपराष्ट्रपति-निर्वाचन विधेयक भी शामिल हैं। पंजाब उदघोषणा जिसे संसद् ने ६ अगस्त १६५१ को अनुमोदित किया था छः महीनों के बाद खत्म हो रही है। इसको उतने समय के लिये फिर लागू करना है जब तक कि नई पंजाब विधान सभा की बैठक न हो।

"यह पांचवां और अन्तिम अवसर है जब मैं इस संसद् में अभिभाषण कर रहा हूँ। आप के सामने मेरा प्रथम अभिभाषण दो वर्ष से कुछ दिन अधिक हुए ३१ जनवरी १६५० को भारत के गण-राज्य घोषित किये जाने के तुरन्त बाद ही हुआ था। हमारे तरुण गणराज्य के, जिसकी सेवा के लिये हम सब वचनबद्ध हैं, यह दो वर्ष पीड़ाओं और समस्याओं से भरे रहे हैं। आप ने इन समस्याओं का सामना साहस के साथ किया है और आप की कृति भारत के इतिहास का अंग बन चुकी है। इस ऐतिहासिक भवन में,

जो इतनी स्मृतियों से भरपूर है, आप में से कुछ फिर आओगे और कुछ संभवतः न लौटोगे। किन्तु चाहे आपका कार्य संसद् में हो अथवा अन्यत्र वह देश की सेवा के लिये ही तो समर्पित रहेगा। इस समर्पन की भावना से और राष्ट्रपिता की स्मृति के अनुप्राणन से ही तो हम अपने उस गरिमामय भाग्य के, जो हमारा आह्वान कह रहा है, उपयुक्त सिद्ध होगा। उस विभूति के संदेश को, जिन्होंने हमें स्वतंत्रता दिलवाई, हमें हमेशा याद रखना है—हमें याद रखना है भारत के सब लोगों में एकता और सद्भावना के संदेश को, वर्गीय विभिन्नताओं तथा जन्म, जाति और धर्म पर आधृत विभेदों के उन्मूलन के संदेश को, जो दलित या अधिकारवंचित हैं उनको ऊपर उठाने के संदेश को, तथा शान्तिपूर्ण और सहयोगमय भारत के, जो अपने सब नागरिकों को प्रगति की सुविधाएं प्रदान करता है, विकास के संदेश को। हमारे इतिहास का एक खंड समाप्त हो रहा है और दूसरा जल्द ही आरम्भ होगा। सद्बुद्धि और सहिष्णुता भावना आप का सहारा हो और मातृभूमि की सेवा आप के सब कामों को अनुप्राणित करती रहे।"

अनुच्छेद ८६ (२) और ८७ (२) के अनुसार संसद के सदन पृथक-पृथक रूप से राष्ट्रपति के भाषण अथवा संदेश पर विचार कर सकते हैं। सदन के नेता की सम्मति लेकर लोकसभा का अध्यक्ष राष्ट्रपति के भाषण पर वाद-विवाद के लिये तिथि निश्चित करता है। उस तिथि को शासकीय दल की ओर से सदन का कोई सदस्य धन्यवाद का प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। प्रायः प्रधान मंत्री ही उसे रखता है। उस पर फिर वाद-विवाद होता है जो प्रायः चार या पांच दिन तक चलता है। यदि अध्यक्ष की अनुमति हो तो संशोधन भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं। राष्ट्रपति के भाषण पर प्रस्तुत किये गये धन्यवाद के प्रस्ताव पर संशोधन रखने के लिये पूर्व सूचना की आवश्यकता नहीं होती। उसकी काफी आलोचना और प्रत्यालोचना होती है। मई १९५२ में राष्ट्रपति के भाषण पर तो लोकसभा में साम्यवादी दल के नेता श्री ए० के० गोपालन ने यहां तक कह डाला कि यह जनता के विरुद्ध खुली लड़ाई की शुरुआत है। श्री गोपालन की इस कटु आलोचना से उत्ते-

जित होकर प्रधान मंत्री नेहरू जी ने भी प्रत्युत्तर में कह दिया कि यदि साम्यवादी राष्ट्रपति के नीति सम्बन्धी भाषण को युद्ध-घोषणा समझते हैं तो सरकार और साम्यवादियों के बीच युद्ध है।

यदि सरकार की ओर से इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित हो कि राष्ट्रपति के भाषण पर रखे गये धन्यवाद के प्रस्ताव पर वाद-विवाद करने की तिथि फिलहाल परिवर्तित कर दी जाय और तत्काल शासकीय विधेयक (या सरकारी काम काज) का प्राथमिकता दी जाय तो अध्यक्ष इस पर सदन की सम्मति लेता है। रस्म आदायगी के रूप में वह सदा पास हो जाता है। भारत की संसदीय प्रक्रिया में यह नियम है कि कार्य स्थगन का प्रस्ताव आने पर संसदीय प्रक्रिया के अनुसार संसद में चल रहा वाद-विवाद स्थगित किया जा सकता है*।

अनुच्छेद ८६ (२) के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा भेजे गये सन्देश को संसद् में अध्यक्ष पढ़ कर सुनाता है। राज्यों में अनुच्छेद १७५ (२) के अनुसार विधान-मण्डल में राज्यपाल का भाषण पढ़कर सुनाया जाता है। उसमें उल्लिखित विषयों पर विचार करने के लिये कौन-सी प्रक्रिया अपनायी जाय इसका निर्देश स्वयं अध्यक्ष देता है। इन निर्देशों के देने में अध्यक्ष चाहे तो आवश्यक परिवर्तन भी कर सकता है। ब्रिटिश संसद में राजा अपना संदेश अपने प्रवक्ता के हाथ भेजता है †।

राष्ट्रपति के भाषण पर अभी तक कभी अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की स्थिति नहीं आयी। ब्रिटेन में रानी एलिजाबेथ के नवम्बर १९५२ में ब्रिटिश संसद् में दिये गये प्रथम भाषण पर, जिसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकार की राष्ट्रीयकरण की नीति में संशोधन करने का संकेत किया था, मजदूर दल

*"Subject to the provisions of these rules, a motion for an adjournment of the business of the House for the purpose of discussing a definite matter of urgent public importance may be made with the consent of the Speaker." Rule 43

† May : ibid, P. 161

ने लोकसभा में चर्चिल की सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया किन्तु वह गिर गया। हमारे यहां कुछ राज्यों में राज्यपालों के भाषण पर आपत्ति की गई और उसपर प्रस्तुत किये गये धन्यवाद के प्रस्ताव का विरोध किया गया। ‡ ६ मई १६५२ को पंजाब विधानसभा में विभिन्न विरोधी दलों के ३० सदस्य उस समय सदन से उठकर बाहर चले आये जब वहां के राज्यपाल श्री चन्दूलाल भाषण देने के लिए खड़े हुए। विरोधियों का नेतृत्व करनेवाले साम्यवादी दल का एक वक्तव्य निकला जिसमें कहा गया कि उन्होंने यह उस नीति के विरुद्ध विरोध-प्रदर्शन करने के लिये किया है जिसके अनुसार ब्रिटिश शासन काल के एक कुख्यात व्यक्ति को पुनः राज्यपाल बनाया गया है। उसी प्रकार ९ मई १६५२ को मद्रास विधान सभा में धन्यवाद के प्रस्ताव पर एक सदस्य ने अविश्वास सूचक संशोधन प्रस्तुत किया। २३ अन्य संशोधन रखे गये। संयुक्त जनतांत्रिक मोर्चे के नेता श्री टी० विश्वनाथन का अविश्वास का संशोधन अनियमित घोषित किया गया।

प्रधान मंत्री (राज्यों में मुख्य मंत्री), चाहे उसने पहले वाद-विवाद में भाग न लिया हो, बाद में सरकार की ओर से उत्तर देता है। उसके स्थान पर कोई अन्य मंत्री शासन की स्थिति का स्पष्टीकरण करता है। और उसके पश्चात् मत-विभाजन होता है।

———

‡ १३ मई १६५२ को मद्रास विधान परिषद् में राज्यपाल के भाषण के लिये प्रस्तुत किये गये धन्यवाद के प्रस्ताव पर अविश्वास सूचक संशोधन रखा गया। मत-विभाजन होने पर संशोधन गिर गया और प्रस्ताव ११ मतों के विरुद्ध ४२ मतों से स्वीकार कर लिया गया।

संसद् की भाषा

संसद् में प्रयोग की जाने वाली भाषा के सम्बन्ध में संविधान में लिखा है कि संसद् कार्य हिन्दी या अंग्रेजी में किया जायगा,—

"परन्तु यथास्थिति राज्य-परिषद् का सभापति या लोक-सभा का अध्यक्ष अथवा ऐसे रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिन्दी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, अपनी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।"

"जब तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से १५ वर्ष की कालावधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो कि 'या अंग्रेजी में' ये शब्द उस में से लुप्त कर दिये गये हैं*।"

भारतवर्ष में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। लगभग सभी राज्यों (प्रान्तों) की अपनी अपनी भाषाएँ हैं। कुछ राज्यों में एकाधिक भाषाओं का प्रयोग होता है। स्वाभाविक है कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधि भी व्यवस्थापिकाओं में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करें। किन्तु अभी तक अधिकांश राज्यों के विधान-मडल तथा संसद में मुख्यतः अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग होता रहा है।† यह अंग्रेजी शासन की देन है। संविधान द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी घोषित किये जाने पर भी ससद् तथा अधिकांश विधान मडलों में अंग्रेजी का ही बोलबाला है।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने संसद् के उद्घाटन के अवसर पर दिए गए अपने भाषणों को हिन्दी में आरम्भ करके इस दिशा में जो पहल की है

* अनु० १२०

† ७ मई १९५२ को भोपाल राज्य की विधान सभा की बैठक भाषाकी समस्या के कारण आध घंटे के लिए स्थगित हो गई क्योंकि मुख्य मंत्री के 'भाषण की स्वतंत्रता' के विधेयक को, जो अंग्रेजी में प्रस्तुत किया गया था, कुछ सदस्यों ने हिन्दी में मांगा। मुख्य मंत्री ने कहा कि यद्यपि हिन्दी अनुवाद की व्यवस्था अभी तक नहीं हो सकी है, फिर भी इस विधेयक का साधारण हिन्दी अनुवाद आध घंटे में कर दिया जायगा। इस पर बैठक आध घंटे के लिये स्थगित हो गई।

वह हिन्दी के प्रोत्साहन और उसके विकास के मार्ग में सहायक सिद्ध हुआ है इसमें कोई संदेह नहीं। नई संसद् के गठित होने के पश्चात् १३ मई १६५२ को राष्ट्रपति ने हिन्दी में ही शपथ ग्रहण की।

लोकसभा के सदस्यों में से जिन प्रमुख व्यक्तियों ने हिन्दी में शपथ ग्रहण की उनमें श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री राज गोपालाचारी के पुत्र श्री नरसिंहम, बिहार के श्री ख्वाजा इनायतुल्ला के नाम उल्लेखनीय हैं। भारत की अन्य भाषाओं में भी शपथ ग्रहण हुआ। शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुल-कलाम आजाद ने उर्दू में और केरल के क्रान्तिकारी समाजवादी नेता श्री कृष्णन नायर ने मलयालम में शपथ ली। दो सदस्यों ने तेलगू में और दो ने मलयालम में शपथ ली। दो सदस्यों ने सचिव से पढ़वाकर शपथ ली क्योंकि उन्हें हिन्दी का इतना भी ज्ञान न था। और एक सदस्य ने, जो बिलकुल निरक्षर था, अपना अंगूठा ही लगाया। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि संसद के कांग्रेसी सदस्यों में से ५८ ऐसे हैं जो हिन्दी नहीं जानते।

संसद् के सदस्यों में हिन्दी भाषा का प्रचार और प्रसार करने के लिये २८ मई १९५२ को 'संसदीय हिन्दी संघ' की स्थापना की गई। और एक प्रतिज्ञा-पत्र पर सदस्यों से हस्ताक्षर कराये गये। प्रतिज्ञा-पत्र में लिखा था "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि संसद में यथासम्भव हिन्दी का अधिकाधिक व्यवहार करूंगा।"

राष्ट्रभाषा को अपनाये जाने के लिये इतना अधिक प्रचार किये जाने पर भी प्रायः यह देखा गया है कि भाषा की समस्या पर सदन में हो-हल्ला मच जाता है*। संसदीय कार्यों में हिन्दी का कितना अभाव है यह संसद् के राजस्थान से चुने गये सदस्य स्वामी केशवानन्द द्वारा बतलाये गये तथ्य से स्पष्ट होता है। ५ जून १६५२ को श्री स्वामी ने एक पत्रकार सम्मेलन में

* २१ मई १६५२ को जिस समय अध्यक्ष श्री मावलंकर ने लोकसभा की बैठक में सूचना दी कि रेलवे तथा यातायात मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री हिन्दी में बोलेंगे, विरोधी पक्ष के कुछ लोगों ने मांग की कि चूंकि यह महत्वपूर्ण विषय

कहा कि संसद अंग्रेजी जानने वालों के लिये भले ही स्वर्ग हो किन्तु अंग्रेजी न जानने वालों के लिये तो यह नरक है। अपना अनुभव बतलाते हुए उन्होंने कहा कि मैं अपना भत्ता आदि इसलिये नही ले पाता कि बिलों के विवरण को पढ़ने में असमर्थ होने के कारण मैं उन्हें फेंक देता हूँ, मैं किसी प्रस्ताव पर इसलिये नहीं बोलता कि चर्चा अंग्रेजी मे होने के कारण मैं स्वयं समझ नहीं पाता कि किस प्रकार का वाद-विवाद हो रहा है। परिगणित जाति और आदिवासी जाति के सदस्यों की भी यही स्थिति है। इन लोगों का संसद के सदस्य होने के नाते भत्ता लेने के सिवा और कोई काम नहीं।

६ जून को श्री मावलंकर ने लोकसभा में कहा कि जो हिन्दी नहीं समझते उन्हें उसे समझने का यत्न करना चाहिये क्योंकि यह सम्भव नहीं, कि १५ वर्ष तक सब कामकाज अंग्रेजी में होते रहें और उसके पश्चात् एकाएक उसके स्थान पर हिन्दी में काम होने लगे!

उन राज्यों के लिए जहां दो या दो से अधिक भाषायें बोली जाती हैं भाषा की समस्या निःसन्देह काफी जटिल है। वह तब तक जटिल बनी रहेगी जब तक भाषावार प्रान्तों का निर्माण नहीं होता। हमारे सम्मुख हैदराबाद राज्य विधान-सभा की मिसाल है जिसमें बहु-भाषी सदस्यों के होने के कारण आये दिन नई नई उलझनें पैदा होती रहती हैं। जैसा कि पहले भी एकाधिक बार हो चुका है २४ नवम्बर १९५२ को विधान सभा

है अतः भाषण अंग्रेजी में होना चाहिये। अध्यक्ष ने कहा कि यातायात मंत्री बाद में साररूप से अंग्रेजी में भी भाषण दे देंगे। किन्तु जब डा०मुकर्जी और हरिन्द्र चट्टो-पाध्याय आदि ने इस बात पर जोर दिया कि शास्त्री जी का भाषण पहले अंग्रेजी में हो और फिर हिन्दी में तब अध्यक्ष ने कहा कि यह मंत्री महोदय की इच्छा पर निर्भर है, वे जिस भाषा में चाहें भाषण दें। इस पर श्री सत्यनारायण सिंह ने कहा कि इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति पहले ही परम्परा डाल चुके हैं! किन्तु विरोधी दल के सदस्य अंग्रेजी भाषण की मांग पर डटे रहे। कुछ तो विरोध स्वरूप सदन से बाहर भी चले गये। इसके पश्चात् शास्त्री जी ने यह कहकर कि भविष्य में वे हिन्दी में ही भाषण दिया करेंगे इस बार अंग्रेजी में भाषण आरम्भ किया।

के समक्ष भाषा की समस्या उपस्थित हो जाने से अजीब सी स्थिति उत्पन्न हो गई। विधान सभा के अध्यक्ष श्री वैद्या और गृहमंत्री पी० सी० बिन्दु दोनों महाराष्ट्री हैं और तेलगू भली भांति नहीं समझते। विरोधी दल के सदस्य श्री यल. यन. नरसिंहराव जब एक विधेयक पर १० मिनट से अधिक समय तक भाषण कर चुके तब अध्यक्ष ने उन्हें कहा कि उन्हें ऐसी भाषा में बोलना चाहिये जिससे कम से कम प्रस्तावक उनकी बात समझ सके। श्री नरसिंहराव ने कहा, **"मैं अपने विचार केवल तेलगू में ही प्रकट कर सकता हूँ, और किसी भाषा में नहीं।"**

अध्यक्ष: **"किंतु आप समय-समय पर उर्दू और हिन्दुस्तानी में भी बोलते रहे हैं।"** अध्यक्ष के ऐसा कहने पर भी श्री नरसिंहराव का भाषण तेलगू में जारी रहा।

अगले वक्ता श्री लिम्बानी मुकुटजी ने मराठी में भाषण दिया जिस पर सदन में करतलध्वनि हुई।

हैदराबाद विधान-सभा में ६ भाषायें (तामिल, कन्नड़, मराठी, तेलगू, उर्दू और अंग्रेजी) बोली जाती हैं। कुछ सदस्यों, जैसे अध्यक्ष और प्रधान मंत्री, को छोड़कर अधिकांश सदस्य इनमें से केवल एक या दो भाषायें ही बोल सकते हैं। हैदराबाद की ही नहीं वरन् सारे देश की भाषा की समस्या तब तक संतोषजनक रूप से नहीं सलझ सकती जब तक कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी देश के सभी क्षेत्रों और वर्गों के लिये ग्राह्य नहीं हो जाती, और भाषा आधार पर राज्यों का पुनर्निर्माण नहीं किया जाता।

संसदीय प्रक्रिया के नियमों से सभासदों को भिज्ञ कराने के लिये उसका राष्ट्र-भाषा में अनुवाद किया जाना चाहिये। राज्य विधान-मंडल के सदस्यों को संसदीय प्रक्रिया नियमावली राष्ट्र-भाषा के अतिरिक्त उनकी मातृभाषा में भी उपलब्ध होनी चाहिये। यह खेद का विषय है कि कुछ राज्यों (जैसे- उत्तर प्रदेश; मध्य भारत, मध्य प्रदेश और बिहार) को छोड़कर अन्य किसी राज्य के व्यवस्थापक मंडलों ने इसे नहीं अपनाया है। संसद् की प्रक्रिया नियमावली केवल अंग्रेजी में ही उपलब्ध है, जिसका हिन्दी भाषा-भाषी

सभासद तथा अन्य सदस्य कोई लाभ नहीं उठा सकते। संसदीय प्रक्रिया के सम्बन्ध में हिन्दी या अन्य किसी देशी भाषा में कोई भी पुस्तक नहीं निकली है। जब तक इस पर पर्याप्त साहित्य नहीं निकलता संसदीय क्षेत्र में काम करने वाले बहुत से सभासद वर्षों अन्धकार में आँख-मिचौनी खेलते रहेंगे।

भाषण की स्वतंत्रता*

संसद् में भाषण देने की प्रत्येक सदस्य को पूर्ण स्वतंत्रता होती है। संविधान में भी यह उपबन्ध है कि न्यायालय संसद की कार्यवाहियों की जांच नहीं कर सकते। अनुच्छेद १२२ में लिखा है—

"(१) प्रक्रिया में किसी कथित अनियमितता के आधार पर संसद की किसी कार्यवाही की मान्यता पर कोई आपत्ति न की जायगी।

"(२) संसद का कोई पदाधिकारी या सदस्य, जिसमें इस संविधान के द्वारा या अधीन संसद में प्रक्रिया को, या कार्य-संचालन को, विनियमन करने की, अथवा व्यवस्था रखने की, शक्तियां निहित हैं, उन शक्तियों के अपने द्वारा किये गये प्रयोग के विषय में किसी न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन न होगा।"

ब्रिटिश संसद में भाषण की स्वतत्रता पर १६८८ में कानून बना जिसकी भाषा इस प्रकार है—"भाषण की स्वतंत्रता तथा संसद में वाद-विवाद या सदन की कार्यवाही पर किसी भी न्यायालय में या संसद के बाहर, न कोई मुकदमा ही चलाया जा सकता है, और न उस पर प्रश्न ही उठाया जा सकता है।"†

संसदीय प्रक्रिया में भाषण का सर्वाधिक महत्व बतलाते हुए रेडलिक लिखता है: "बिना भाषण के संसदीय यंत्र की विभिन्न संस्थायें महत्वहीन

*May : ibid, pp. 96-101

†"That the freedom of speech, and debates or proceedings in Parliament, ought not to be impeached or questioned in any court or place out of Parliament."

—Bill of Rights : Section 9.

और अर्थविहीन हैं। भाषण से उन्हें एकरूपता मिलती है और संसदीय कार्यों में आत्म-ज्ञान और सार्थकता प्राप्त होती है।"※ इसमें सन्देह नहीं कि केवल भाषणों के द्वारा ही संसद की सार्थकता सिद्ध हो सकती है। इसीलिये अंग्रेजी की यह कहावत प्रचलित है कि "संसदीय सरकार बातचीत की सरकार है।"† लोकतंत्र के आधार पर स्थापित प्रत्येक शासन का यह सर्वमान्य लक्षण समझा जाता है कि वह अपने कार्यों को, अपनी योजना को भाषण के द्वारा बाकायदा प्रकट करे। किसी भी वैधानिक सरकार के लिये अपने आचरण की सफाई भाषण द्वारा देना आवश्यक होता है। जिस सदन में सरकार अपने कार्यों का स्पष्टीकरण करती है और भावी योजनाओं को कार्यान्वित करने की सदन से स्वीकृत लेती है; तथा जिसमें सरकार के विपक्षी सदस्य उससे प्रश्न पूछते हैं उसकी आलोचना करते हैं और काफी वाद-विवाद के पश्चात् उसकी योजनाओं पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगाते हैं उसमें भाग लेने वाले सभासदों को यदि भाषण देने और अपने विचार स्वेच्छा से प्रकट करने की स्वतंत्रता न मिली तो लोकतंत्र और संसदीय व्यवस्था दोनों का कोई महत्व नहीं रह जाता। इसी लिये कहा गया है कि भाषण ही वह तत्व है जो संसद् रूपी शरीर को मानवीय शरीर में, वायु की भांति, जीवन दान करता है और कार्य करने की शक्ति देता है।

भारतीय संसद् में भाषण की स्वतंत्रता सदस्य का सबसे पहला और

※"without speech the various forms and institutions of Parliamentary machinery are destitute of importance and meaning. Speech unites them into an organic whole and gives to parliamentary action self-consciousness and purpose."

Redlich : ibid, Vol. III p. 42.

†Parliamentary *government is government by talking*."

बुनियादी अधिकार है। यह अधिकार उसे ब्रिटेन की संसदीय पद्धति से प्राप्त हुआ है, और जैसा कि एलसिंज को उद्धरित करते हुए मे लिखता है उसने कानून द्वारा यह अधिकर प्राप्त किया है।* किन्तु इस अधिकार का यह मतलब नहीं कि उसकी कोई मर्यादा या सीमा नहीं। भाषण की स्वतंत्रता के अभाव में संसदीय प्रगति संभव नहीं। किन्तु यह सत्य है कि यदि भाषण देने के अधिकार को कुछ कठोर नियमों से बांधकर संसदीय प्रक्रिया का परिष्कार न किया गया तो न तो संसद में किसी विषय पर नियम पूर्वक वाद-विवाद ही चल सकता है और न उसका कोई परिणाम ही निकल सकता है। इसलिये संसदीय प्रक्रिया में भाषण देने अथवा वाद-विवाद करने के लिये कुछ नियम बनाये जाते हैं जो न केवल सभा की कार्यवाही को सरलता के साथ सम्पादित करने में सहायता करते हैं वरन् सदन की प्रतिष्ठा को भी बनाये रखते हैं।

*the "Commons did oftentime, under Edward III, discuss and debate amongst themselves many things concerning the Kings prerogatives, and agreed upon petitions for laws to be made directly against his prerogative, as may appear by divers of the said petitions, yet they were never interrupted in their consultations, nor received chek for the same, as may appear also by the answers to the said petitions."

—(Elsynge, 177) May : ibid, p. 96.

भाषण और वाद-विवाद की प्रक्रिया

अध्यक्ष द्वारा नाम पुकारा जाना—

भाषण देने, प्रश्न पूछने अथवा प्रस्ताव रखने की जब आवश्यकता हो सदस्य को चुपचाप अपने स्थान पर खड़ा हो जाना चाहिये। अध्यक्ष उसका नाम सम्बोधित करके जब तक उसे अपने विचार व्यक्त करने का आदेश न दे तब तक उसे कुछ नहीं कहना चाहिये। यदि एक साथ दो या दो से अधिक सदस्य खड़े हो जाय तो जिस व्यक्ति का नाम अध्यक्ष पुकारेगा केवल वही भाषण शुरु करेगा और बाकी सदस्य अपने स्थान पर बैठ जायगे। एकाधिक सदस्य एक साथ खड़े हो जाते हैं तब उनमें से जिस पर अध्यक्ष की दृष्टि पड़ती है वही पहले खड़ा हुआ समझा जाता है और इसलिये उसी को पहले अपने विचार रखने का अवसर प्राप्त होता है। (२० अक्टूबर १९५२ को उड़ीसा विधान सभा में दो कांग्रेसी सदस्य एक साथ बोलने के लिये खड़े हुए। दोनों पहले भाषण देने की अनुमति प्राप्त करने के लिये उत्सुक थे। उनमें से एक अपने स्थान पर चुपचाप खड़ा रहा। दूसरे व्यक्ति ने अध्यक्ष को संबोधित कर उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा। अध्यक्ष ने कहा कि जिस पर अध्यक्ष की दृष्टि पहले पड़ती है उसे भाषण देने की अनुमति प्राप्त होती है, न कि उस सदस्य को जो संबोधन द्वारा अध्यक्ष का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है* ।

यदि एक साथ एक दर्जन व्यक्ति बोलने के लिये खड़े हो गये तो कौन सर्व प्रथम खड़ा हुआ इसका निर्णय एक व्यक्ति के लिए करना प्रायः कठिन हो जाता है। अध्यक्ष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सभी विचारधारा के अधिक से अधिक सदस्यों को अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दे,

---

*"Catching the eye is more important than the ear."

—Speaker N. K. Das, Orissa Legislative Assembly.

इसलिए प्रस्तुत विषय के महत्व को देखते हुए वह यथाशक्ति सबको समय देने का प्रयत्न करता है।*

उस सदस्य को जो सदन में पहले-पहल भाषण देने की इच्छा प्रकट करता है प्राथमिकता देना अनुचित नहीं समझा जाता। किन्तु उस स्थिति में उक्त सदस्य को यह बतलाना चाहिये कि सदन में पहले-पहल भाषण देना चाहता हूँ, इसलिए मुझे प्राथमिकता मिलनी चाहिए।†

जब कोई सदस्य भाषण दे रहा हो यदि बीच में अध्यक्ष खड़ा हो जाय तो वक्ता को तत्काल बैठ जाना चाहिये। अध्यक्ष के भाषण के समय सदन में पूर्ण शांति रहनी चाहिये। किसी सदस्य का अपने स्थान से विचलित होना भी अशिष्टता और उच्छृंखलता का सूचक होता है।‡

वांछनीय यथार्थवादिता—

विधान मंडल अथवा संसद में कोई सदस्य ऐसे विषय पर न भाषण दे सकता है और न प्रश्न ही पूछ सकता है जो किसी न्यायालय में विचाराधीन हों।

किसी सदस्य द्वारा भाषण के समय सदन में गलत उद्धरण प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की विधान सभा के अध्यक्ष ने एक व्यवस्था देकर इस सम्बन्ध में नयी परम्परा स्थापित की है। उक्त व्यवस्था का कारण विरोधी दल के नेता श्री राजनारायण सिंह द्वारा ६ दिसम्बर ५२ को विधान सभा की बैठक में भाषण देते समय इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धरित करने के

‡ "A Speaker must combine with his austerely judicious temper a sense of humour that cannot be wearied, a ready sagacity of thought and speech overtaken by no emergency, the composure that combines confidence and the authority that requires it. The Kindliness that must govern his dealings at all times with all sorts and conditions of unfortunate members and the physical vigour necessary, day after day, for vigilance when a debate shows liveiliness and for endurance when it does not . . . . .

—London Time; 20-6-1928

* May : ibid, p. 279.

† May : ibid, p. 339.

कारण हुई । नगरपालिका संशोधन विधेयक पर वाद-विवाद के सिलसिले में सरकार में अयोग्यता और भ्रष्टाचार के प्रमाण स्वरूप श्री राजनारायण ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के निर्णय का कुछ भाग पढ़ कर सुनाया था ।

श्री राजनारायण के उक्त उद्धरण के विरुद्ध स्वायत्त शासन मंत्री श्री मोहन लाल गौतम ने शिकायत की । १६ दिसम्बर को विधान सभा में उन्होंने कहा कि न्यायाधीश का यह अभिप्राय नहीं था जैसा कि उनके निर्णय के एक अंश को उद्धरित करके सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया । उक्त उद्धरण को सभा की कार्यवाही से निकाल देने की मांग करते हुए श्री गौतम ने कहा कि यह सभा की प्रतिष्ठा के विरुद्ध है । किन्तु श्री राजनारायण ने पुनः अपनी बात को दुहराते हुए इस बात पर जोर दिया कि न्यायाधीश का वही अभिप्राय था जो उन्हों ने (श्री राजनारायण ने) समझा है और कहा कि

"मैंने अपने शब्द जज के मुँह से नहीं कहलाये थे, मैंने कहा था कि जज के फैसले से यह इशारा निकलता है कि यह सरकार अयोग्य, भ्रष्ट और दिवालिया है ।"

मुख्य मत्री पन्त जी ने श्री मोहन लाल गौतम का समर्थन करते हुए कहा कि जब सदन में कोई उद्धरण दिया जाता है तब उसका यह स्पष्ट अर्थ होता है कि जो बात कही जा रही है उद्धरण उसका पुष्टिकरण करता है । यदि कोई ऐसा उद्धरण दिया जाय जो प्रस्तुत तर्कों के विपरीत हो तो उसका कोई अर्थ नहीं । जो मामला विचाराधीन है, उसमें दल का कोई प्रश्न नहीं, बल्कि प्रश्न सभाकी मर्यादा का है जिसका प्रत्येक सदस्य को ध्यान होना चाहिये ।

१९ दिसम्बर को इस विषय पर व्यवस्था देते हुए अध्यक्ष श्री खेर ने कहा कि सभा की कार्यवाही के किसी भाग को काटने का अधिकार अध्यक्ष के हाथों में रहना चाहिए । अब तक उत्तर प्रदेशीय विधानसभा के नियमों में ऐसी कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी जिसके अनुसार कारवाई के कागजात के कोई अंश काटे जा सकें । केवल १६७ वें नियम में यह कहा गया है कि सचिव विधान सभा की हर बैठक के बाद उसकी पूरी और सही रिपोर्ट तैयार करायेगा और उसको उस रूप में प्रकाशित करेगा जिसमें अध्यक्ष उसको आदेश

दे। किन्तु २३३ वें नियम के अनुसार ऐसे सब प्रश्न जिनका इन नियमों में उल्लेख नहीं है, ऐसे प्रकार से तय किये जायेंगे जिस प्रकार अध्यक्ष आदेश करे।

लोकसभा में कारवाई के किसी अंश को सभा के प्रस्ताव स्वीकार करने पर काटा जाता है। श्री खेर ने कहा कि यदि अध्यक्ष को जो सत्ता दी गई है उसके अंतर्गत यह अधिकार भी दे दिया जाय तो अच्छा होगा। वे तीसरे नियम के अनुसार इसका प्रयोग कर रहे हैं और उन शब्दों को काट रहे हैं जिनकी शिकायत की गई है। उन्होंने कहा कि केवल अध्यक्ष को यह अधिकार देने से ही सबके हित सुरक्षित हो सकते हैं। यदि विरोधी दल का कोई अल्पसंख्यक वर्ग कारवाई के किसी अंश को निकालना चाहता है तो जो बहुमत उनको कायम रखने के पक्ष में है वह अल्पसंख्यकों की मांग के विरुद्ध मत दे सकता है। यदि बहुमत किन्हीं शब्दों को निकालना चाहे तो वह अपने मतों की शक्ति से ऐसा कर लेगा। इसलिए यह सत्ता अध्यक्ष के हाथों में रहने देना ही अच्छा है।

विरोध की शैली—

भाषण अध्यक्ष को सम्बोधित करके किया जाना चाहिये।‡ संसद की कार्यवाही सार्वजनिक सभा से भिन्न होती है, इसलिये वक्ता सदन में भाषण करते हुए ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं कर सकते जो किसी दूसरे सदस्य के सम्मान के विरुद्ध समझी जाती हो। इस प्रकार की भाषा असंसदीय मानी जाती है। पाकिस्तान की संसद में इतनी अधिक तू-तू मैं-मैं होती है कि अधिकांश सदस्यों को इसका अनुभव भी नहीं होता कि असंसदीय भाषा क्या होती है। नवम्बर १९५२ को पाकिस्तान की संसद में एम. ए. गुरमानी ने मियां इफ्तिखारुद्दीन द्वारा कही गई कुछ बातों का विरोध करते हुए कहा

‡ २१ नवम्बर १९५२ को लोक सभा में जब श्री वी० वी० गांधी भाषण दे रहे थे उन्हें बीच में ही एक दूसरे सदस्य ने टोक दिया। श्री गांधी ने उस सदस्य की ओर मुंह करके प्रत्युत्तर में कुछ कह दिया। इस पर अध्यक्ष श्री मावलंकर ने आदेश दिया कि अध्यक्ष को संबोधित करके भाषण देने का यह अर्थ समझा जाना चाहिये कि वक्ता की दृष्टि भी अध्यक्ष की ओर हो, अन्यत्र नहीं।

कि यह सफेद झूठ है, तब सभापति ए. एच. गजदर ने उन्हें 'सफेद झूठ' शब्द वापस लेने को कहा। गुरमानी ने इस शब्द को वापस लेते हुए इसके स्थान पर 'असत्य' का प्रयोग किया जिस पर सरदार शौकत हयात खां ने कहा—"जिसकी आपको आदत पड़ी है।" मियां इफ्तिखारुद्दीन ने कहा कि वे तो पक्के अवसरवादी है, और इसके लिये देश भर में उन्हें ख्याति मिल चुकी है। इस पर काफी तू-तू, मैं-मैं हुई।

"२७ मई १९५२ को उत्तर प्रदेश के मन्त्रियों और उप-मन्त्रियों के (वेतन तथा भत्तों के) विधेयक पर वाद-विवाद के समय श्री देवकी नन्दन विभव ने अपने भाषण में कहा—अध्यक्ष महोदय, मैं यह कह रहा था कि कहां तक रचनात्मक कार्य की प्रगति है। एक डिप्टी मिनिस्टर के लिये यातायात के लिये १५० रुपये रखा गया है। आपकी तरफ से यानी विरोधी दल की तरफ से यह आता है कि उनको माननीय मुख्य मंत्री अपनी कार दे दें। यह कैसे संभव हो सकता है जब कि एक वक्त दोनों ही को जाना होगा तब क्या उपमंत्री जब तक लौट नहीं आयेंगे तब तक माननीय मुख्य मंत्री जी बैठे रहेंगे?

मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि आप जो रचनात्मक कार्य की बात कहते हैं, विरोधी पक्ष के अधिकारों की बात कहते हैं, तो यदि आप उनका उपयोग करना चाहते हैं तो कृपा करके ऐसे तर्कों को भवन में पेश न करें। मैं अपील करता हूँ कि अगर आप वास्तव में ऐसा कहते हैं, मुझे तो इस में संदेह है कि आप विरोधी दल के नेता के रूप में वैधानिक तरीके से हैं भी या नहीं।

श्री राजनारायण—प्रमुख महोदय, मैं निहायत अदब के साथ यह अपील करना चाहता हुँ कि इस सदन में इस तरह के उद्‌गार रखना उचित नहीं है। यदि किसी शख्स को भ्रम हो कि मैं विरोधी दल का नेता वैधानिक रूप से हूँ या नहीं, तो उन्हें या किसी भी सदस्य को विधान भवन में आने से पहले पढ़ लेना चाहिये उस बोर्ड को जो कि सदन के पास ही लगा हुआ है। मैं आपसे अपील करना चाहता हूँ कि यह प्रमुख महोदय का अपमान है। इस तरह के उद्‌गार सदन में करने से स्पीकर महोदय का अपमान होता है।

माननीय अध्यक्ष—आप अपने शब्दों में विरोधी दल के नेता के ऊपर कोई आक्षेप न करें।

श्री देवकी नन्दन विभव—जी नहीं। मेरी भावना यह है कि मैंने अभी तक

विरोधी दल के नेता के ऊपर कोई आक्षेप नहीं किया है। विरोधी दल के नेता—जो मैं यह कहूंगा कि मैं इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हूं·········

अध्यक्ष—"माननीय सदस्य को यह मालूम होना चाहिये कि जब अध्यक्ष ने उनको विरोधी दल का नेता मान लिया तो उसको न मानना सदन का अपमान करना है। इसलिये आप अपने शब्दों को वापस ले लें।"

किसी व्यक्ति पर व्यक्तिगत आक्षेप असंसदीय माना जाता है। किन्तु दल या संस्था के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। कोई व्यक्ति सदन में किसी भी दल या व्यक्ति की आलोचना कर सकता है, उस पर आक्षेप कर सकता है। १० जुलाई १९५२ को उत्तर प्रदेशीय विधान सभा में आय-व्यय पर भाषण देते हुए गृह मंत्री श्री सम्पूर्णानन्द ने जब यह कहा कि—

"मैं नहीं समझता कि सोशलिस्ट पार्टी आज इतनी नीचे गिर गई है।"

इस पर आपत्ति करते हुए श्री रामनारायण त्रिपाठी ने एक विधान का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहा,—

"मेरा आक्षेप यह है कि 'सोशलिस्ट पार्टी नीचे गिर गई है' ये शब्द संसदीय नहीं हैं।"

अध्यक्ष ने कहा—

"यह संसदीय है। आप भी कांग्रेस के बारे में ऐसी बहुत सी बातें कहते हैं। किसी व्यक्ति के लिये ऐसा नहीं कहा गया है।"

संसदीय व्यवहार के अनुसार सदन में किसी दूसरे सदस्य के विरुद्ध व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किये जा सकते हैं। बार-बार 'आप" का प्रयोग भी असंसदीय समझा जाता है। उत्तर-प्रदेश विधान-सभा की ८-७-५२ की कार्यवाही उदारण स्वरूप प्रस्तुत की जाती है। अपने भाषण में श्री रामसुन्दर पाण्डेय (समाजवादी) ने कहा—

"मैं आप से सच कहता हूँ कि माननीय मंत्री उन स्कूलों पर गये नहीं हैं क्योंकि अगर गये होते तो ऐसी बातें जो बजट में कही गई हैं नहीं कही गयी होतीं। हजारों स्कूल राजकीय पाठशालायें खुली हैं वहां पर बच्चों के बैठने के लिये टाट नहीं है, कुर्सियां नहीं हैं। पेड़ों के नीचे बरसात, गर्मी और जाड़ा में कितनी मुसीबतों से पढ़ते हैं। आप कहते है कि हमारे यहां पढ़ाई लिखाई का बहुत इन्तजाम है तो यही आदर्श इन्तजाम है। हायर सेकेंडरी स्कूल के बारे में

कहना चाहता हूँ। हायर सेकेन्डरी स्कूल जो सूबों में खुले हुये है उसमें आप की कोई बहादुरी नहीं है। जनता को आजादी मिली। आजादी मिलने के बाद जनता में एक भावना पैसा हुई है, उनमें उत्साह की लहर आयी और वह शिक्षा पर पैसा खर्च कर रही है। आप कितना पैसा उसमें दे रहे हैं यह मैं जानना चाहता हूँ। आप का तो उसमें पैसा बहुत कम लगा हुआ है और इसलिये मैं कहता हूँ कि आप का जो बजट है वह शिक्षा को बढ़ाने वाला बजट नहीं है। वह तो बजट ऐसा है कि जो स्थिति पढ़ने लिखने की है वह कायम रहे। हारिजन और पिछड़ी जातियों के लिये बहुत कहा जाता है। मैंने आज सवेरे अखबार में पढ़ा कि दिल्ली प्रांतीय सरकार के मुख्य मंत्री ने यह घोषणा की है कि दिल्ली राज्य के जितने भी परिगणित जाति के विद्यार्थी हैं उनको हायर सेकेण्डरी स्कूल तक की मुफ्त शिक्षा दी जायगी। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती अगर हमारे मुख्य मंत्री जी भी इस तरह की घोषणा करते।"

एक सदस्य—"ऐसा नहीं है।"

श्री राम सुन्दर पाण्डेय—"अभी आप अखबार पढ़ें।"

"तो अगर हमारे प्रान्त के मुख्य मंत्री यह घोषणा करते कि गांव के रहने वाले हरिजनों को हायर सेकेण्डरी तक मुफ्त पढ़ायी होगी तो मैं कुछ समझता कि हमारी सरकार पिछड़ी हुई जातियों के लिये एक कदम बढ़ा रही है। लेकिन मैं जानता हूँ कि नोटिसें बांटी गई हैं। मैं आप से कहना चाहता हूँ कि आज ही मेरे पास एक रजिस्ट्री चिट्ठी आयी हुई है जिसमें एक शख्स ने लिखा है कि मैं हाई स्कूल तक किसी तरह से पढ़ा हूँ। मेरे घर में ६ आदमी खाने पीने वाले हैं इसलिये मैं आगे पढ़ नहीं सकता हूँ। मेरी मदद की जाय। श्रीमान् इस प्रांत में लाखों करोड़ों आदमी पिछड़ी जाति के मौजूद है जो पढ़ना लिखना चाहते हैं लेकिन यह सरकार उनकी मदद नहीं कर रही है। फिर भी आप चाहते हैं कि आप का देश उन्नतिशील हो और आप अपना वक्षस्थल ऊंचा करके रहें तो इसके लिये आप को मुबारकबाद नहीं दिया जा सकता है। गांव की रहने वाली जो जनता है, जो भूखी नंगी जनता है, वह शिक्षा के ऊपर आप को मुबारकबाद देने के लिपे तैयार नहीं है।"

अध्यक्ष—"माननीय सदस्य 'आप आप' कह कर बात कर रहे हैं। हर वाक्य म आप शब्द कई दफा आ जाता है।"

इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करने पर अध्यक्ष सदस्यों को अपने शब्द वापस लेने का आदेश देता है। १४ नवम्बर १९५२ का लोकसभा में भारतीय तटकर पर हुए वाद-विवाद के सिलसिले में श्री कृष्णमाचारी ने एक कर्मचारी का नाम लेकर कहा कि बड़ी मुश्किल से ऐसा योग्य और निष्पक्ष व्यक्ति मिला है। इस पर विरोध पक्ष के सदस्य श्री शकर सखाराम मोरे ने पूछा कि उनकी क्या योग्यता है? श्री कृष्णमाचारी ने कहा कि ये आपसे अधिक योग्य हैं। इस बात पर कुछ देर तक दोनों में नोक-झोंक हो गई। श्री मोरे ने कहा, "हो सकता है कि यह मुझसे योग्य हों पर इसका तो यह अर्थ नहीं हो सकता कि वे इस पद के योग्य हैं।

श्री कृष्णमाचारी—योग्यता का निर्णय करना हम लोगों का काम है जो इस समय सत्तारूढ़ हैं।

श्री मोरे—ऐसे व्यंग का हम कहीं अधिक व्यंग द्वारा उत्तर दे सकते हैं।

सभाध्यक्ष पारस्कार—इस तरह की बातचीत करना मंत्री के लिये कहां तक ठीक है मैं नहीं समझता।

श्री कृष्णमाचारी—मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ।

कुछ सदस्य—क्षमा मांग ली अब बात खत्म हो गयी।

श्री मोरे—हां, क्षमा मांग ली बात खत्म।

श्री कृष्णमाचारी—क्षमा मांगने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

ब्रिटिश लोकसभा में ३ दिसम्बर १९५२ को प्रधान मंत्री चर्चिल और मजदूर दलीय सदस्य विलियम रौस में इसी तरह की एक झड़प हो गई। चर्चिल ने मजदूर दलीय सरकार के भूतपूर्व प्रतिरक्षा मंत्री इमानुएल शिनवेल पर अदेश-भक्ति का आरोप लगाया।

श्री चर्चिल ने हो-हल्ले का विरोध किया और उपाध्यक्ष सर चार्ल्स मैकऐण्ड्रयू से पूछा कि क्या इस प्रकार बो-बो करना उचित है। सर चार्ल्स इसका उत्तर देने के लिए खड़े हुए ही थे कि मजदूर दल के एक सदस्य श्री विलियम रौस ने खड़े होकर कहा कि 'एक बत्तख से बो-बो के सिवाय और कहा ही क्या जा सकता है।" इस पर मजदूर दलीय सदस्यों में खूब

कह-कहा हुआ। श्री रौस ने अंग्रेज़ी के 'बू' और बो' शब्दों का चमत्कारिक प्रयोग किया था। उपाध्यक्ष ने श्री रौस को अपने शब्द लौटाने या सभा से चले जाने को कहा। कह-कहा समाप्त होने पर श्री चर्चिल ने कहा कि मुझे आप बत्तख कहें या और कुछ मैं परवाह नहीं करता। इस पर श्री रौस के सदन से चले जाने की मांग पर जोर नहीं दिया गया।

कभी-कभी गरमागरम बहस इतना उग्र रूप धारण कर लेती है कि सदस्य एक दूसरे के प्रति अभद्र शब्दों और अशिष्ट भाषा का व्यवहार करने में भी नहीं चूकते। ऐसी स्थिति में अध्यक्ष के लिये शांति कायम रख सकना प्रायः असम्भव हो जाता है। अध्यक्ष के लिये झगड़ालू सदस्यों को सदन से बाहर करने या बैठक को स्थगित करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह जाता है। *

राष्ट्रपति और राज्यपाल उप-राज्यपाल, राजप्रमुख तथा उप-राजप्रमुख दलगत राजनीति से पृथक समझे जाते हैं, इसलिये संसद् और विधान मण्डलों में उनकी आलोचना अवैधानिक समझी जाती है। १३ मई १९५२ को मद्रास विधान परिषद में मुख्य मत्री श्री राजगोपालाचारी ने संयुक्त जन-तांत्रिक मोर्चे के नेता श्री टी० प्रकाशम के विरुद्ध उनके ६ मई के दिन विधान मण्डल में राज्यपाल के भाषण के औचित्य के सम्बन्ध में अशिष्टता पूर्वक पूछे गये प्रश्न पर प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव के उपस्थित होते ही श्री प्रकाशम ने कानूनी आपत्ति उठाते हुए कहा कि परिषद को प्रस्ताव पर विचार करने का अधिकार नहीं है, दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में ही उस पर विचार

* ४ दिसम्बर १९५२ को इटली की संसद में सदस्यों का वाद-विवाद जो निर्वाचन की प्रणाली पर हो रहा था झगड़े के रूप में बदल गया। सरकारी पक्ष और विरोधी पक्ष दोनों ओर से इतनी उत्तजना पैदा हो गई कि अध्यक्ष का अनुशासन कायम रखना तो दूर रहा सदस्य इतने उछृङ्खल हो उठे कि उनमें आपस में जूता चलने लगा। सदन के प्रहरी ने बीच में पड़कर झगड़ा शांत करना चाहा, किन्तु उसकी भी खोपड़ी फूट गई और तत्काल चिकित्सालय जाने की नौबत आयी। इस हो-हल्ले में सभा भंग हो गई।

किया जा सकता है क्योंकि प्रस्ताव संयुक्त बैठक की घटना से संबन्धित है। आपत्ति के उत्तर में मुख्य मंत्री ने संविधान के अनुच्छेद १६४ का उल्लेख किया और कहा कि विधान सभा और विधान परिषद दोनों को अपने सदस्यों के दुराचरण पर विचार करने का अधिकार है। उन्होंने कहा कि यदि मैं सदन के बाहर भी उन सुविधाओं का दुरुपयोग करूं तो भी मैं सदन के समक्ष उत्तरदायी हूँ। अध्यक्ष ने मुख्य मंत्री के तर्क को स्वीकार करते हुए प्रस्ताव पर विचार करने की व्यवस्था दी। सदन ने श्री प्रकाशम द्वारा अशिष्टता पूर्वक प्रश्न पूछने के लिये उन्हें कड़ी चेतावनी दी।

२७ नवम्बर १६५२ को पंजाब विधान सभा में भाषण देते हुए चौधरी श्रीचन्द्र ने राज्य-पाल की आलोचना करते हुए कहा कि जिन व्यक्तियों को उन्होंने विधान परिषद में नामजद किया है उनमें कुछ तो ऐसे हैं जिन्हें बोलना भी नहीं आता। उपाध्यक्ष ने उन्हें व्यक्तिगत आक्षेप करने से मना किया। किन्तु जब श्री अक्षर सिंह ने पुनः इसी प्रकार की आलोचना राज्य-पाल की की तो उपाध्यक्ष को उन्हें अपने स्थान पर बैठ जाने का आदेश देना पड़ा।

सदस्यों को सदन में सबसे अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिये कि वे शिष्ट भाषा का प्रयोग करें*। इसलिये अशिष्ट भाषा को असंसदीय भाषा कहते हैं। असंससीय भाषा का प्रयोग सदन की प्रतिष्ठा को कम करता है। सदस्यों में शिष्टाचार का अभाव देखकर मद्रास विधान सभा के अध्यक्ष श्री पिल्लई ने तो सभासदों को एक बार (१० जुलाई १६५२ को) यह पार-

* कभी-कभी साधारण सी बातें भी असाधारण ढंग से व्यक्त किये जाने के कारण अशिष्टता की द्योतक होती हैं। हैदराबाद विधान सभा की एक उल्लेखनीय घटना इसका एक प्रमाण है। हैदराबाद विधान सभा में ५ दिसम्बर १९५२ को एक महिला अपना भाषण देने के लिये तीन बार खड़ी हुई, किन्तु उसे बोलने का अवसर प्राप्त न हो सका। अन्त में रुष्ट होकर उसने अध्यक्ष से कहा—"आप मेरी तरफ देखते ही नहीं। जरा मेरी तरफ भी देखिये।"

उक्त महिला का उक्त वाक्य अध्यक्ष को बहुत खटका और उन्होंने कहा कि "माननीया सदस्या को इस प्रकार असंसदीय प्रकार से नहीं कहना चाहिये।"

मर्श दिया कि वे अपने दल के सदस्य को 'माननीय-मित्र' और विरोधी दल के लिये सदस्य को 'माननीय महाशय' शब्द का प्रयोग करें। जिस प्रकार की भाषा का संसद् में प्रयोग होता है जन-साधारण भी सभा-सम्मेलनों में उसी को अपनाते है इसलिये ससद और विधान-मंडल के सदस्यों को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सदन में वे जो कुछ बोलते या कहते हैं उसका प्रभाव सदन (या उस सभा-भवन) तक ही सीमित नहीं रहता वरन् सारे देश में पड़ता है। किन्तु यह एक खेदजनक बात है कि जनता के कुछ प्रतिनिधि अपने कृत्यों और वाणी द्वारा दिन प्रतिदिन संसदीय प्रतिष्ठा को खो रहे हैं।

पश्चिमी बंगाल विधान सभा के सदस्य श्री मनोरंजन हाजरा ने २३ जुलाई १६५२ को भूतपूर्व गृह-मंत्री स्वर्गीय किरण शंकर राय के विरुद्ध अपशब्द का प्रयोग करके अपनी सभा सदन की प्रतिष्ठा को धक्का लगाया, इसमें कोई सन्देह नहीं। उनका यह व्यवहार और भी अधिक अशिष्ट रहा जब कि अध्यक्ष ने उन्हें अपने शब्द वापस लेने का आदेश दिया और कहा कि या तो अपने शब्द वापस लें अथवा सदन के बाहर चले जायं, किन्तु श्री हाजरा ने क्षमा-याचना करने की अपेक्षा सदन-त्याग करना उपयुक्त समझा।

राज्यों के विधान मण्डलों में असंसदीय भाषा के प्रयोग के सैकड़ों उदाहरण है, किन्तु संसद् में भी यह अनुभव किया जा रहा है कि उत्तरोत्तर पुरानी परम्पराओं का त्याग किया जा रहा है जिससे सदन की प्रतिष्ठा न गिर रही है। न सरकारी पक्ष ही सदन की प्रतिष्ठा और सम्मान का पूरा-पूरा ध्यान रखता है और न विरोधी दल वाले ही अपनी कोई जिम्मेदारी अनुभव करते हैं। ६ दिसम्बर १९५२ को श्रीमती रेणुका चक्रवर्ती द्वारा प्रस्तुत किये गये एक कार्य-स्थगन प्रस्ताव का विरोध करते हुए पुनर्वास मंत्री श्री अजीत प्रसाद जैन ने जब श्रीमती चक्रवर्ती पर कटाक्ष करते हुए कहा कि यह प्रस्ताव तो विज्ञापन करने के उद्देश्य से रखा गया है, उपाध्यक्ष श्री आयंगर को उन्हें चेतावनी देते हुए कहना पड़ा कि—"माननीय मंत्री को यह कहने का अधिकार नहीं है कि विज्ञापन करने के उद्देश्य से कार्यस्थगन प्रस्ताव उपस्थित किया गया।"

१८ जुलाई १६५२ को लोकसभा में हुई घटना यह सिद्ध करती है कि हमारा संसदीय स्तर किस प्रकार गिरता जा रहा है। उस दिन निवारक निरोध विधेयक पर वाद-विवाद में जिस समय डाक्टर जय सूर्य अपने भाषण में राजाओं तथा विभिन्न दलों की कड़ी आलोचना कर रहे थे, स्वतंत्र सदस्य श्री वीर स्वामी कुछ कहने के लिए खड़े हुए किन्तु कांग्रेसी बेंचों से 'बैठ जाओ' और 'शान्ति शांति' का शोर हुआ और उन्हें अपने स्थान पर बैठ जाना पड़ा। इस पर श्री नम्बियार ने पूछा—"क्या यही शांति है ?" आज (२२-७-५२) का प्रतिनिधि इस घटना का उल्लेख करता हुआ लिखता है— "इसपर अध्यक्ष महोदयने व्यवस्था दी कि अब यदि कोई खड़ा होगा तो मैं उसे बाहर जानेके लिए कहूँगा। यहांपर हम सार्वजनिक सभाओं में भाषण सुननेके लिए नहीं आये हैं जिसमें वक्ताओंकी बीचमें टोकाटोकी की जाय। यहां पर हमें विचार करना है और मन्त्री महोदय अथवा कोई भी सदस्य हो, जब बोल रहा हो उसका भाषण बिना रोक-टोकके सुनना चाहिए। मैं यह नहीं चाहता कि वक्ताओंके भाषणोंपर टीका भी साथ-साथ चलती रहे। यदि कोई यह करना चाहता है तो मैं उसे कहूँगा कि वह सभा भवन से अनुपस्थित रहे।' उसी समय श्री नम्बियार खड़े हुए तो अध्यक्ष महोदयने कहा कि 'यदि अगली बार आपने हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया तो मुझे आपको बाहर जाने के लिए कहना पड़ेगा।'

श्री मोरे ने इसपर प्रश्न पूछा कि क्या संसदमें प्रश्न करनेकी अनुमति नहीं है। अध्यक्षने कहा कि अनुमति तो है पर एकाध प्रश्नके लिए ही अनुमति दी जा सकती ह। जो निजी प्रकार हो। पर किसी वक्ता से इस प्रकारके प्रश्न नहीं किये जा सकते कि वह बोल ही नहीं सके। श्री मोरे ने इसपर कहा कि मेरा मत आप से भिन्न है। तो अध्यक्ष महोदयने आदेश दिया कि वह अध्यक्ष के निर्णय का विरोध नहीं कर सकते। उन्हें वह स्वीकार करना चाहिए। इसपर श्री मोरेने प्रत्युत्तर दिया कि वह जो ठीक समझते हैं उसे वह करेंगे और उसका स्वाभाविक परिणाम भुगतनेके लिए तैयार हैं। जिसका अध्यक्षने उत्तर दिया कि तब आप जा सकते हैं। इसपर श्रीमोरे ने सभात्याग कर दिया।

इस समय सभाभवनका वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध हो चुका था। श्री नम्बियारने कहा कि यदि आप उनको भेजना चाहते हैं तो आपको हम सबको बाहर भेजना होगा। इसी बीच श्री वीरस्वामी खड़े हुए तो अध्यक्षने कहा कि आपको बाहर जाना होगा। श्री नम्बियार उसको सहन नहीं कर सके और बोल पड़े कि आप इस प्रकार एक-एकको बाहर भेजना चाहते हैं। अध्यक्षने उसका उत्तर दिया कि यदि कोई सदस्य इस प्रकार व्यवहार करेगा तो उसको बाहर जाना पड़ेगा।

श्री हीरेन्द्र मुखर्जी ने कहा कि इस समय उत्तेजना बढ़ चुकी है। इसका प्रारम्भ दूसरे पक्षकी ओरसे हुआ। कांग्रेस सदस्यों ने इसका तीव्र विरोध किया तब प्रोफेसर मुखर्जी ने फिर कहा कि यदि आपका आदेश दोनों पक्षोंपर समान रूपसे लागू हो तभी हम उसपर ठण्डे दिल से विचार कर सकते हैं। इसपर अध्यक्षने कहा कि मेरा वक्तव्य दोनों पक्षोंपर समान रूप से लागू होता है और उसमें मन्त्रियोंको भी नहीं छोड़ा जायगा। उन्होंने यह भी कहा कि मैंने श्री नम्बियार, श्री मोरे और श्री वीरस्वामी को बार-बार उठते हुए और बीच में टोकाटोकी करते हुए देखा है। इसीलिए यह कहा है।

श्री हीरेन्द्र मुखर्जीने अध्यक्ष महोदय से यह भी जानना चाहा कि वह श्री मोरेको जो कि सभात्याग कर चुके थे, यह जाकर कह दें कि आपने जो व्यवस्था दी है वह दोनों पक्षोंके लिए समान रूप से लागू होती है। उनका ऐसा विश्वास था कि श्री मोरे व्यवस्थाको एकांगी समझकर उसके विरोधमें चले गये। परन्तु अध्यक्षने यह बात नापसन्द की कि कोई इस प्रकार अर्थ निकाला जाय कि पहले वे एक पक्ष में थे और बाद में निष्पक्ष हो गये। उन्होंने कहा कि यदि आपने यह स्पष्ट कर दिया तो श्री मोरेको बुला सकते हैं।

इस बीच अध्यक्षने विरोधी पक्ष का नाम लिया तो श्री मुखर्जी ने कहा कि बारबार विरोधी पक्षका नाम लिया जा रहा है। इसलिए जहांतक साम्यवादियों का सम्बन्ध है हम लोगोंको कुछ समयके लिए सदनसे बाहर होना पड़ेगा। उधर श्री हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय तथा कुछ अन्य सदस्य अपने अपने स्थान

से उठकर जा चुके थे और पीछे चिल्ला रहे थे "निकल आओ ! निकल आओ !" । तब अध्यक्ष ने कहा कि मेरा तात्पर्य पूरा साम्यवादी दल से नहीं, परन्तु श्री मोरे, श्रीनम्बियार तथा श्री वीरस्वामी आदि कुछ सदस्यों से था।

श्री नम्बियारने इसका विरोध किया और कहा कि यहां मेरा नाम लेना आपत्तिजनक है तथा अन्याय है। अध्यक्षने "अन्याय" शब्दपर आपत्ति की और उनसे मांग की कि वे उसको वापस ले लें। परन्तु उन्होंने वापस लेना स्वीकार नहीं किया। इसपर अध्यक्षने कहा कि वह बाहर निकल जायें। उन्होंने बाहर जानेसे भी इनकार किया। तब कहा गया कि मार्शल से कहना पड़ेगा। मार्शलको सम्भवतः पहला अवसर था जब कि किसी सदस्यको बल-प्रयोग द्वारा निकालनेको कहा गया हो। मार्शल आये और उन्होंने नम्बियार को सीटसे उठाया और घसीटकर ले चले, क्योंकि नम्बियार प्रतिरोध कर रहे थे। फिर भी श्री नम्बिरयार अपनी पिछली सीटपर जा बैठे। जहांसे उनको निकालना आसान नहीं था और मार्शल बाहर की तरफ खड़े थे।

इस अवसरपर श्री मुखर्जी ने नम्बियार महोदय को कई बार समझाया कि वे "अन्याय" शब्दको वापस ले लें। परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरूने भी खड़े होकर इस बात पर दुःख प्रकट किया कि अध्यक्षका आदेश नहीं माना जा रहा है। उन्होंने कहा कि यह हो सकता है कि आपने कोई गलत निर्णय दिया हो। परन्तु हमारा कर्तव्य है कि गलत निर्णयको भी स्वीकार करें। अन्यथा इस सदनकी कार्रवाई नहीं चल सकती। उन्होंने यह भी प्रस्ताव किया कि सदनके इस अपमान को विशेषाधिकार समिति के सुपुर्द किया जाय और यदि आवश्यकता हो तो उस सदस्य को कुछ समयके लिए सदस्यतासे वंचित कर दिया जाय।

इसके बाद अध्यक्ष महोदय भी कुछ शांत दिखायी पड़े और उन्होंने कहा कि मैं वंचित करनेका अधिकार रखते हुए भी प्रयोग करना नहीं चाहूँगा। क्योंकि मेरा विश्वास है कि श्री नम्बियार ने जो कुछ किया है, क्रोध में आकर किया है। यदि वे अपने शब्द वापस ले लें तो मुझे उनके यहां रहने पर

आपत्ति न होगी। परन्तु श्री नम्बियार ने शब्द वापस लेनेके स्थानपर बाहर जाना उचित समझा और वे चले गये।

एक घन्टेके बाद श्री नम्बियार और मोरे के अतिरिक्त साम्यवादी सदस्य फिर वापस आ गये।

यह घटना संसद्के इतिहासकी पहली ही घटना है, परन्तु यह आकस्मिक नहीं है—इस अर्थ में कि विरोधी पक्षमें इस प्रकारका विरोध धीरे-धीरे प्रबल होता जा रहा था और एकाध अवसर पर श्री नम्बियार कह भी चुके थे कि यदि किसीको निकाला गया तो उस समय क्या करना चाहिये यह हम जानते हैं।

संसद् में प्रयुक्त होने वाली भाषा कौन संसदीय हो सकती है, कौन नहीं, इसके लिये कोई कड़ा नियम नहीं बनाया जा सकता। शब्दों का जिस रूप में प्रयोग किया जायगा उसी रूप में उनका अर्थ लगाया जाता है। उसका जो भावार्थ अध्यक्ष करे वही मान्य होता है।*

*श्री राजनारायण—उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह अर्ज करना चाहता हूँ कि समय का विभाजन श्री मंगला प्रसाद, लीडर आफ दि अपोजीशन, और खेर साहब के सामने निश्चित हुआ था। तो क्या आप या ट्रेजरी बेंचेज की तरफ से कोई सदस्य परिवर्तन करना चाहते हैं? मुझे निहायत अदब से अर्ज करना है कि आपकी तरफ से लाइट जल जाती है और उसके बाद भी दस मिनट तक मंत्री जी बोलते रहते हैं तब तो कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती है और हमारे उमाशंकर जी ने जब बोलना आरम्भ किया तो "पेट में लगे चूहे कूदने" और उनको तीन मिनट भी बोलने नहीं दिया जाता है।

श्री भगवती प्रसाद शुक्ल (प्रतापगढ़)—मैं प्वाइन्ट आफ आर्डर (विधान सभा का प्रश्न) प्रस्तुत करना चाहता हूं। अभी विरोधी दल के नेता जो शब्द प्रयोग में लाये हैं उसके संबंध में प्वाइन्ट आफ आर्डर प्रस्तुत करना चाहता हूं। यदि आज्ञा दें तो मैं प्रस्तुत करूं।

उपाध्यक्ष—हाँ, आप (प्रस्तुत) कर सकते हैं।

श्री भगवती प्रसाद शुक्ल (प्रतापगढ़)—मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि विरोधी दल के नेता ने यहाँ के सदस्यों को 'चूहा' कहा है। यह शब्द पार्लियामेंटरी है या नहीं, इस पर मैं आपका निर्णय चाहता हूँ।

अध्यक्ष की घण्टी—

सदन में जिस विषय का जितना महत्व होता है उसी के अनुसार सदस्यों को भाषण देने का समय मिलता है। प्राय: दस-पन्द्रह मिनट से अधिक समय नहीं मिल पाता। जब निर्धारित समय में से केवल चार मिनट शेष रहते हैं तब अध्यक्ष की घंटी बजती है जो इस बात की सूचक होती है कि वक्ता को अपना शेष भाषण चार मिनट में समाप्त कर देना चाहिये। दो मिनट बाद पुन: घण्टी बजती है जो यह संकेत करती है कि वह अपने भाषण का उपसंहार

श्री राजनारायण—माननीय उपाध्यक्ष महोदय, कर्णदोष है। उसको दूर करने के लिये मैंने कहा है। "पेट में लगे चूहे कूदने" हिन्दी का यह मुहाविरा है, अनपार्लियामेंटरी नहीं है।

वित्त मंत्री (श्री हाफ़िज मुहम्मद इब्राहीम)—मैं जनाब की तवज्जह दिलाता हूँ कि जिन अल्फाज को अभी राजनारायण साहब ने इरशाद फरमाया है वे कभी भी इस ऐवान के शायानेशान नहीं हो सकते। कभी किसी मेम्बर को इस किस्म के अल्फाज किसी दूसरे मेम्बर के लिये इस्तेमाल करने का हक इस मोहज्जब दुनियाँ में हासिल नहीं है। यकीनन ये अल्फाज अनपार्लियामेंटरी हैं। मैं बहुत से अल्फाज सुनता रहता हूँ और उन पर खामोश रहता हूँ। कभी कोई दखल नहीं देता। एक साहब ने प्वाइन्ट उठा दिया है तो मैंने जनाब की जरूर तवज्जह दिला दी कि यह प्वाइन्ट ऐसा है जिस पर खास तवज्जुह की जरूरत है। मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि जो बहस होती है उसका स्टैंडर्ड गिरता जा रहा है।

श्री राजनारायण—आदरणीय उपाध्यक्ष महोदय, मैं पुन: निवेदन करता हूँ और माननीय मंत्री जी से अनुरोध करता हूँ कि मैंने कर्णदोष शब्द का प्रयोग किया। कर्णदोष के क्या मानी होते हैं कृपा करके वे समझ लें। मैं फिर कहता हूँ कि कर्णदोष अनपार्लियामेंटरी नहीं है।

श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहीम—उन्होंने कहा कि 'लगे चूहे कूदने छाती पर'। ये शब्द कोई भी शरीफ आदमी इस्तेमाल नहीं कर सकता।

उपाध्यक्ष—मैं समझता हूँ कि यह मुहाविरा है। अनपार्लियामेंटरी नहीं है। लेकिन जहां तक हो सके माननीय सदस्य ऐसे शब्द प्रयोग न करें तो अच्छा है। मैं यह भी समझता हूं कि अब यह बहस समाप्त कर दी जाय, क्योंकि अनुदान का समय समाप्त हो चुका है। (उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाही, १७ जुलाई, १९५२)

कर दे। अन्तिम घण्टी के बजने पर सदस्य को अपने स्थान पर बैठ जाना होता है। वक्ता के अनुरोध करने पर यदि संभव होता है तो अध्यक्ष एक-दो मिनट का अतिरिक्त समय दे देता है। अध्यक्ष की घण्टी सदन का समय बचाने के लिये बहुत आवश्यक होती है। उत्तर प्रदेश में अध्यक्ष की घण्टी के स्थान पर लाल रोशनी का प्रयोग होता है जो अध्यक्ष के निकट ही होती है, और जब किसी सदस्य के भाषण देने का समय समाप्त हो जाता है तब यह बत्ती जल उठती है। † अन्य व्यवस्थापिकाओं में अभी यह व्यवस्था नहीं है।

† अध्यक्ष—इसके पश्चात् मैं माननीय सदस्यों को एक बात और बताना चाहता हूँ। यहां यह प्रथा रही है कि जब समय निर्धारित होता है तो इसलिये कि भाषण खूबसूरती के साथ समाप्त हो जाय माननीय वक्ता को दो मिनट पहले संकेत कर दिया जाता है। अध्यक्ष कह देता है कि अब दो मिनट बाकी रहे हैं। इस तरह से कहने से शब्द से शब्द कटता है और वक्ता की विचारधारा और भाषण की श्रृंखला टूटती है। इसलिये मेरे हृदय में यह महसूस हुआ कि माननीय सदस्य जो भाषण देने में तल्लीन रहते हैं उनकी विचारधारा न टूटे और उनके हृदय में ठेस न पहुँचे, क्योंकि उसका प्रतिबिम्ब कुछ मुझ पर भी पड़ता है। जो मनोविज्ञान के जानने वाले हैं वे इसे अच्छी तरह से समझ सकते हैं। अगर शब्दों से नहीं, किसी दूसरे मार्ग से आंखों के द्वारा, रोशनी से, यह समय समाप्ति का संकेत मिल जाता है तो श्रृंखला नहीं टूटती। माननीय सदस्य अपना भाषण जारी रख सकते हैं। एक तो बात उसमें यह है। दूसरी बात यह है जिसे सब लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि जो शब्द जाता है उसकी जाने की गति एक सेकेंड में ११०० फीट है और रोशनी १ सेकेंड में १ लाख ८६ हजार मील जाती है। इसलिये मैं समझता हूं कि रोशनी से ९ लाख गुना समय बच जाता है। इन दोनों कारणों से मैंने यह उचित समझा कि जिस प्रकार रेडियो का भाषण करते समय रोशनी लगा दी जाती है, उसी प्रकार यहां दो बल्ब लगा दिये जांय जिससे माननीय सदस्यों को सूचना मिल जाय कि उनका समय अब समाप्त होने वाला है। इससे यह भी होगा कि माननीय सदस्य अगर थोड़ा सा प्रयत्न करेंगे तो वे समय के नियंत्रण में भाषण समाप्त करने की शैली प्राप्त कर लेंगे और अपने समय की स्वयं रक्षा कर सकेंगे और यह हैबिट फार्म करने का तरीका भी एक अच्छा तरीका होगा। माननीय सदस्य यह भी जानते हैं कि इस भवन को बाहर से बहुत से लोग देखने आते हैं। वे भी यह महसूस कर सकेंगे कि माननीय सदस्य अपनी जिम्मेदारी स्वयं महसूस करते हैं। इसके लिये मैंने जो उपाय किया

भाषण देते समय प्रत्येक सदस्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सदन का समय बहुत कीमती होता है। लोक सभा में जो कार्यवाही होती है उस पर प्रति मिनट अस्सी रुपये व्यय होते हैं। वह सब कर-दाता की जेब से जाता है। अनावश्यक रूप से ्म्बे भाषण देकर अथवा अन्य प्रकार से सदन का समय नष्ट करके वे परोक्ष रूप से जनता की गाढ़ी कमाई का पैसा ठगते हैं। इसलिये देशभक्ति और जनता की सेवा को ध्यान में रखते हुए सदन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग होना चाहिये।

———

है: वह भी मैं आप लोगों को बता देना चाहता हूँ जिससे माननीय सदस्य यह समझ लें कि दो मिनट पहले किस तरह की लाल रोशनी होगी। यह रोशनी दो मिनट तक रहेगी और जैसे ही यह रोशनी खत्म हो, माननीय सदस्य बैठ जायं। अब वाद-विवाद जारी होता है। (उत्तर प्रदेश विधान सभा—८-७-५२)

प्रश्नोत्तर

ब्रिटिश संसदीय प्रक्रिया के संबन्ध में यह उल्लेख किया गया है कि प्रश्नोत्तर काल के समय अध्यक्ष की अनुमति द्वारा नये सदस्य को शपथ-ग्रहण कराने के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं किया जाता। प्रक्रिया के अन्य नियमों की भांति हमारे यहां प्रश्न पूछने के सम्बन्ध में भी लगभग वही नियम प्रचलित हैं जो ब्रिटिश संसद् में हैं। प्रश्नोत्तर काल की प्रक्रिया के सम्बन्ध में रेडलिक लिखता है कि प्रश्न करने का उद्देश्य सरकार की सार्वजनिक कार्य संबन्धी योजनाओं और उसके उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त कराना है।* ब्रिटिश संसद् में प्रश्न पूछने की परम्परा पिछली शताब्दि (१८३५) से आरंभ हुई। किन्तु १८४६ से प्रश्नों को संसदीय कार्यों में विशेष महत्व दिया जाने लगा। नित्य एक प्रश्न पूछने की परम्परा स्थापित कर दी गई। † ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया यह संख्या भी बढ़ती गई, और शताब्दि का अन्त होते-होते नित्य चालीस प्रश्न तक पूछे जाने लगे। इस प्रकार अनिर्यमित रूप से पूछे जाने वाले प्रश्नों की बढ़ती हुई संख्या को निश्चित करने के उद्देश्य से संसद् में यह तय हुआ कि एक दिन में आठ प्रश्न तक पूछे जा सकते हैं। किन्तु इसमें भी सदन का बहुत सा मूल्यवान समय केवल

* "The chief object which they serve is the explanation to the public of the meaning of political events, and it is permissible to frame questions so as to draw from the Government statements of their intentions or plans as to particular matters of public concern."

—Redlich : ibid, p. 241-42

† "The growth in the number of questions in the House is entirely of recent origin. In the 'sixties and early 'seventies the questions rarely exceeded a dozen, and when they reached twenty the number was quite phenomenal. Writing on 7th April 1879 I find that I used these words: 'Probably never were so many questions put in the House as this afternoon. There were twenty-eight on the paper and these were supplemented by twelve or fifteen more."

—W. Jeans : Parliamentary Reminiscences, p. 135.

प्रश्नोत्तर में ही व्यतीत हो जाता था इसलिये उस संख्या को भी घटा कर चार कर दिया गया, जो इस समय केवल तीन ही है।

ब्रिटिश लोकसभा में सोमवार, मंगलवार, बुधवार और वृहस्पतिवार को प्रश्नोत्तर काल के कार्यक्रम की सूची में प्रथम स्थान प्राप्त रहता है। निर्धारित क्रम के अनुसार मन्त्रियों को सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। प्रश्नोत्तर काल की अवधि पतालीस से लेकर साठ मिनटों तक की होती है। मन्त्रिगण स्वविवेक के अनुसार प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार कर सकते हैं। पर पर्याप्त और अच्छे कारणों के बिना प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार करना किसी मंत्री की प्रतिष्ठा के लिये हानिकारक होगा। मन्त्रिगण प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार, औचित्य के साथ तभी कर सकते हैं, जब वे कह सकें कि अमुक प्रश्न का उत्तर देना सार्वजनिक हित में नहीं है।

दर्शकों के दृष्टिकोण से प्रश्नोत्तर काल संसद् के साधारण कार्य दिवस का सबसे अधिक रुचिप्रद और मनोरंजक समय होता है। चर्चिल के भाषण या अन्य किसी उल्लेखनीय संसद् सदस्य के भाषण अधिक स्थिर रुचि प्रदान करने वाले अवसर होते हैं। पर ये अवसर रोज कहां आते हैं। हां प्रश्न रोज पूछे जाते हैं। प्रश्नोत्तरकाल मंत्रियों और अप्रमुख सदस्यों के बीच सूझबूझ, तत्क्षण निरन्तर करने वाली बातें कहने की योग्यता और चुनौती और प्रति चुनौती के सजीव अवसर प्रदान करते हैं।

पर प्रश्नोत्तर काल केवल सजीवता के अवसर प्रदान करने वाले नहीं होते; गम्भीरता का पुट भी देते हैं। इससे प्रयोजन है उन अवसरों से जब दो पक्षों के प्रमुख सदस्य एक सरकारी पक्ष और दूसरा वह जो वैकल्पिक सरकार समझा जाता है—वाद-विवाद के उस सीमित और रिवाजबद्ध रूप में आपस में भिड़ते हैं। जो संसद् की कार्य-प्रणाली ने प्रश्न और उत्तर के लिए स्वीकार किया है।

एक नियम जो दृढ़तापूर्वक क्रियान्वित किया जाता है यह है कि प्रश्न और उत्तर की प्रणाली को वाद-विवाद में न परिणत होने दिया जाय। प्रश्न पूछने का उद्देश्य काफी स्पष्ट समझा गया है। "सूचना पाने के लिये

या कार्यवाही का आग्रह करने के लिये।" प्रश्न पूछते समय सदस्य को यह ध्यान रखना चाहिये कि भाषण न देने लग जाये। जैसा कि श्री चर्चिल ने एक बार कहा था, सदस्य को चाहिये कि "अपने विचार प्रश्नवाचक रूप में प्रस्तुत करे।" और ऐसा बहुत कम होता है कि विचार प्रकट करने में उसे अधिक ढील और स्वतन्त्रता मिलती हो।

संसद् सदस्यों को अपनी चतुरता और सूझबूझ दिखाने का अवसर पूरक प्रश्नों में प्राप्त होता है। किसी भी सदस्य को अधिकार है कि उस प्रसंग को जो किसी सदस्य के प्रश्न के कारण छिड़ा है और जिसका उत्तर सरकार के प्रतिनिधि ने दिया है वहां समाप्त न होने दे: उस पर पूरक प्रश्न पूछ डाले। मन्त्रियों के लिए यह कठिन परीक्षा का समय होता है। प्रश्न का प्रवाह चलने लगता है, उन्हें दिखाना पड़ता है कि वे केवल मोटी मोटी बातें ही नहीं जानते हैं, पर उन्हें अपने विभागों के कार्य का विस्तार में पता है।

कभी कभी यह सुनने में आता है कि ऐसी बारीकियों के बारे में संसद में प्रश्न पूछने की अनुमति देने से प्रश्न तो प्रशासन की छोटी-छोटी बात के बारे में हो सकते हैं—सरकारी कार्यालयों को आवश्यकता से अधिक बड़े स्तर पर रखना पड़ता है। कारण, मन्त्रियों से छोटी से छोटी बातें जब पूछी जा सकती हैं—तब निस्सन्देह पूरे पूरे रिकार्ड रखना आवश्यक होगा।

एक बार जब कोई प्रश्न अंकित कर लिया जाता है तब उसका उत्तर शीघ्र प्राप्त करने के लिये सरकारी विभाग के पास विशेष व्यवस्था है। यदि किसी सदस्य को प्राप्त उत्तर से संतोष नहीं होता तो वह विषय को फिर से उठाने की सूचना दे सकता है।

सरकारी सदस्य और गैर सरकारी सदस्य मानते हैं कि कार्यपालिका पर जनतान्त्रिक नियंत्रण का अत्यन्त बहु-मूल्य साधन संसद् है। संसदीय सवालों की यह प्रथा है कि मंत्रियों को उस समय उपस्थित रहना चाहिये जब उनसे प्रश्न पूछे जाते हैं। उन्हें अपने प्रशासन का बचाव स्वयं करना चाहिये। सदन में आने से पहले मन्त्रिगण यह भलीभांति निश्चित कर चुके होंगे कि वे जो उत्तर देने जा रहे हैं वह ठीक है अथवा यह कि वे अमुक प्रश्न का अमुक उत्तर क्यों दे रहे हैं।

सरकार भी इस कार्यप्रणाली का उपयोग करती है। किसी मंत्री का किसी सदस्य से, सरकारी अथवा दूसरे पक्ष वाले से, किसी प्रश्न को लिखने के लिये कहना, ताकि ऐसी सूचना जिसे पाने का संसद और सर्व साधारण को अधिकार है अत्यन्त अधिकार-पूर्ण रूप से प्रकाशित की जा सके, साधारण काम है। प्रश्न साधारणतया लिख लिये जाते हैं। विशेष परिस्थितियों में प्रश्न पूछे जा सकते हैं और उनके उत्तर बहुत अल्प नोटिस पर प्राप्त किये जा सकते हैं।

वैधानिक प्रश्न और संसद् के रिवाज के नियमों की लम्बी सूची हुआ करती है। प्रश्न पूछने में सदस्यों को इनका ध्यान रखना होता है। पर ये नियम मुख्यतः नकारात्मक होते हैं, ऐसा न करना चाहिये, वैसा न करना चाहिये, बताते हैं। मुख्य बात वह जो नकारात्मक नहीं है, यह है कि मन्त्रियों से समय समय पर उनके प्रशासन के विषय में प्रश्न पूछा जा सकता है; उत्तर देना उनका कर्तव्य होता है।

संसद् और विधान-मण्डल की बैठक का प्रत्येक दिन प्रश्न के घण्टे से आरम्भ होता है*। प्रश्नोत्तर नित्य के कार्यक्रम के पहले घण्टे में होते हैं। जिस सदस्य को प्रश्न पूछना होता है वह उसकी सूचना लिखित रूप से सदन के सचिव के पास दस दिन पूर्व दे देता है†। जिन प्रश्नों को रखने की अध्यक्ष स्वीकृति देता है उन्हें एक सूचना के साथ नत्थी कर लिया जाता है।

प्रश्न तीन प्रकार के होते हैं। एक अल्प सूचित प्रश्न होते हैं जो सार्वजनिक महत्व के विषयों में जानकारी प्राप्त करने के लिये पूछे जाते हैं।

---

* राज्य-परिषद् में पहले सप्ताह में केवल दो दिन (मंगलवार और बुधवार) प्रश्नोत्तर के लिये निश्चित रहते थे। किन्तु सदन की नियम बनाने वाली समिति की सिफारिश पर अब सप्ताह में चार दिन (सोमवार, मंगलवार, बुधवार और बृहस्पतिवार) प्रश्नोत्तर के लिये निश्चित किये गये हैं।

† उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, हिमाचल प्रदेश, विंध्य प्रदेश, आसाम, मैसूर आदि विधान सभाओं में १५ दिन, पश्चिमी बंगाल में १२ दिन और मद्रास विधान सभा में ७ दिन अग्रिम सूचना देने का उपबन्ध है।

ऐसे प्रश्न तात्कालिक घटना के सम्बन्ध में पूछे जाते हैं और उनका उत्तर तीन दिन के भीतर सम्बन्धित मंत्री को देना होता है। दूसरे तारांकित प्रश्न होते हैं जिनमें प्रश्न के ऊपर तारांकित चिन्ह अंकित होता है। तारांकित प्रश्न का यह अभिप्राय होता है कि प्रश्नकर्ता उसका मौखिक उत्तर चाहता है। तीसरे अतारांकित प्रश्न होते हैं जिन्हें प्रश्नों की एक सूची में सम्मिलित कर लिया जाता है और उनका लिखित उत्तर मिलता है। कुछ प्रश्न ऐसे भी होते हैं जो एक सदस्य दूसरे सदस्य (जो मंत्री न भी हों) से पूछता है। ऐसे प्रश्न विधेयक सम्बन्धी होते हैं।

प्रश्न पूछनेवाले सदस्य को अपने प्रश्न के साथ यह स्पष्ट बतलाना चाहिये कि किस विभाग के मंत्री से उसके प्रश्न का सम्बन्ध है। यदि भूल से कोई प्रश्न ऐसे मत्री से पूछा जाय जिसका उस विभाग से सम्बन्ध नहीं तो वह प्रश्न सम्बन्धित मंत्री के पास भेज दिया जाता है। ऐसी स्थिति में उसमें कुछ विलम्ब होने की सम्भावना होती है। जिस दिन मंत्री से उत्तर की अपेक्षा की जाती हो उसके कम से कम पांच दिन पूर्व सचिव प्रश्न को मंत्री के पास भेज देता है। यदि मंत्री को कम से कम पांच दिन पूर्व सूचना नहीं मिलती तो वह उस प्रश्न को अन्य प्रश्नों की सूची से पृथक करने की अध्यक्ष को सम्मति दे सकता है। जिन प्रश्नों की पहले से सूचना न दी गई हो मंत्री उसका उत्तर देने से इन्कार कर सकता है। कोई सदस्य यदि उत्तर से सन्तुष्ट न हो, अथवा उसका अधिक स्पष्टीकरण कराना चाहे तो उस प्रश्न से सम्बद्ध दूसरा प्रश्न पूछ सकता है। उसे पूरक प्रश्न कहते हैं*। यदि पूरक प्रश्न मूल प्रश्न से असम्बद्ध पाया गया तो अध्यक्ष उसे अस्वीकार कर सकता है। जिस मंत्री से प्रश्न पूछा जा रहा हो वह भी असम्बद्ध पूरक प्रश्न को यह कह कर कि इसके लिये पृथक सूचना की आवश्यकता है,

* "Supplementary questions are subject to the same rules of order as the original 'notice' questions. They must be framed, as questions and not statements."

—Eric Taylor : The House of Commons at work, p. 106

उत्तर देने से इन्कार कर सकता है* । किन्तु मूल प्रश्न से सम्बद्ध जितने भी पूरक प्रश्न पूछे जायंगे उसे उन सबका उत्तर देना आवश्यक होता है। लोकसभा में उद्योग तथा वाणिज्य मंत्रालय के एक भूतपूर्व सचिव द्वारा साइकिलों के लाइसेंस सम्बन्धी एक मामले में कथित गोलमाल किये जाने के विषय में पूछे गये प्रश्न और पूरक प्रश्नों के उप-मंत्री श्री दातार ने टालमटोल के उत्तर दिये जिस पर उपाध्यक्ष श्री आयंगर ने मंत्रियों को चेतावनी दी कि वे सम्बद्ध पूरक प्रश्नों की कल्पना करके उनके उत्तर के लिये तैयार रहा करें। इस पर गृह-मंत्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू ने कहा कि सदस्यगण असम्बद्ध प्रश्न पूछ बैठते हैं जिनका तत्काल उत्तर देना असम्भव हो जाता है। तब उपाध्यक्ष ने कहा कि क्या सम्बद्ध है और क्या असम्बद्ध, यह बताना मंत्री का काम नहीं, उसके लिये अध्यक्ष मौजूद है।

---

* तारांकित प्रश्न—

श्री रामनारायण त्रिपाठी—क्या यह सही है कि जिलाधीश, फैजाबाद की प्रार्थना पर जन-निर्माण विभाग के एक्जीक्यूटिव इंजीनीयर, फैजाबाद, ने इस सड़क के निर्माण के बारे में एक रिपोर्ट दी थी जिसमें यह बतलाया गया है कि सड़क के लिये ठेकेदार ने जो कंकड़ जमा किया है, वह निम्नकोटि का है, अतः ठेकेदार को ४० प्रतिशत कम करके दाम दिया जाय?

श्री मोहन लाल गौतम—जी हां।

राजा वीरेन्द्र शाह—क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि क्या सरकार ने म्युनिसिपल बोर्डों और जिला बोर्डों को 'एड' देने के लिये कमेटी बनाई है?

श्री मोहनलाल गौतम—इस सवाल का संबंध इससे नहीं है। इसके लिये नोटिस की जरूरत है।

* श्री हरिश्चन्द्र वाजपेयी (जिला लखनऊ)—क्या सरकार बताने की कृपा करेगी कि भारत सरकार से उत्तर प्रदेशीय सरकार को कितनी खाद्य सहायता मिलती थी और उस सहायता के बन्द हो जाने से हमारे प्रदेश की खाद्य समस्या पर क्या प्रभाव पड़ा है?

श्री बनारसी दास—भारत सरकार से उत्तर प्रदेशीय सरकार को आवश्यकतानुसार खाद्य सहायता मिलती रही है। औसतन २,५०,००० टन गल्ले की सालाना आवश्यकता रही है। अब भी जितने खाद्यान्न की आवश्यकता होगी प्रदेशीय सरकार भारत सरकार से ले सकेगी।

१० जुलाई १६५२ को उत्तर प्रदेश विधानसभा में अध्यक्ष श्री खेर ने भी यह व्यवस्था दी कि सरकार के सम्बन्ध में कोई सूचना देते समय मंत्री "शायद" या 'सम्भवत:" का प्रयोग नहीं कर सकता। उसे स्पष्ट उत्तर देना पड़ेगा अथवा कहना होगा कि उसे उस बात की जानकारी नहीं है। किसी प्रश्न या उस पर दिये गये उत्तर के सम्बन्ध में कोई वाद-विवाद करने की अनुमति नहीं दी जाती‡। कोई सदस्य एक दिन में तीन से अधिक तारांकित प्रश्न नहीं पूछ सकता। उत्तर प्रदेश और विंध्य प्रदेश की विधान सभाओं को छोड़कर अन्य राज्यों की विधान सभाओं में पांच प्रश्न तक पूछे जा सकते हैं। संसद् तथा विधान मण्डलों में प्रश्नों को स्वीकार करने के लिये कुछ नियम अपनाये गये हैं जो निम्नलिखित हैं—

उसमें कोई ऐसा नाम अथवा कथन प्रविष्ट नहीं होगा जो प्रश्न को बोधगम्य बनाने के लिए नितान्त आवश्यक न हो;

यदि उसमें स्वयं उस सदस्य का कथन हो, तो वह सदस्य उक्त कथन की यथार्थता के लिए स्वयं को उत्तरदायी बना लेगा;

उसमें तर्क, निष्कर्ष, व्यंगात्मक वाक्य अथवा मानहानिकारक कथन नहीं होगे;

श्री श्रीचन्द (जिला मुजफ्फरनगर)—क्या माननीय मंत्री जी यह बतलाने की कृपा करेंगे कि उत्तर प्रदेश के अन्न की उपज यहां के निवासियों के लिये पर्याप्त नहीं होती है?

श्री चन्द्र भानु गुप्त—हां, इतने वक्त तो ऐसा है।

श्री सीताराम शुक्ल (जिला बस्ती)—क्या माननीय मंत्री जी यह बतलाने की कृपा करेंगे कि पश्चिमी जिलों में कितना गल्ला पैदा हुआ और कितना खर्चा हुआ?

श्री चन्द्र भानु गुप्त—इसके लिये नोटिस की आवश्यकता है।

(उत्तर प्रदेश विधान सभा, २३—७—५२)

‡ "Questions should not be argumentative, but be so framed as merely to elicit the information asked for."

—Anson : Law and Custom of the Constitution, p. 268

उसमें मत प्रकट किये जाने या किसी वैधानिक प्रश्न या किसी कल्पित समस्या के हल की मांग नहीं की जायगी;

उसमें शासकीय अथवा सार्वजनिक स्थिति से सम्बन्धित होने के अतिरिक्त किसी व्यक्ति के चरित्र अथवा आचरण के सम्बन्ध में नहीं पूछा जायगा ;

वह अत्यधिक लम्बा नहीं होगा,

वह उस विषय से सम्बन्धित नहीं होगा जो मुख्यतः शासनसे सम्बन्धित न हो ;

वह किसी ऐसे व्यक्ति के चरित्र अथवा आचरण पर आक्षेप नहीं करेगा जिसके आचरण पर केवल स्वतत्र प्रस्ताव द्वाराही आपत्ति की जा सकती है ;

उसमें कोई ऐसा प्रश्न नहीं उठाया जायगा जो किसी प्रश्न के उत्तर की सीमा के भीतर विचार्य्य होने के लिए अत्यधिक बड़ा हो ;

तुच्छ बातों की जानकारी नहीं पूछेगा ;

साधारणतः विगत इतिहासों की बातों पर उसके द्वारा जानकारी नहीं पूछी जायगी ;

उसके द्वारा कोई ऐसी जानकारी नहीं चाही जायगी जो कि प्राप्य लेख्यों में अथवा साधारण निर्देश ग्रंथों में दी हुई हो;

उसके द्वारा कोई ऐसे विषय उपस्थित नहीं किये जायंगे जो उन संस्थाओं अथवा व्यक्तियों के नियंत्रण में हों जो मूलतः शासन के प्रति उत्तरदायी न हों;

उसके द्वारा किसी ऐसे मामले की जानकारी नहीं चाही जायगी जो किसी ऐसे न्यायालय के विचाराधीन हो जिसका विचार-क्षेत्र समस्त राज्य में या उसके किसी भाग में हो;

वह किन्हीं ऐसे मामले से सम्बन्धित नहीं होगा जिससे किसी मंत्री का शासकीय सम्बन्ध न हो ;

उसके द्वारा व्यक्तियों के हितों की आलोचना नहीं की जायगी ;

यदि कोई सदस्य प्रश्न पूछने की सूचना देने के पश्चात् उस समय सदन में उपस्थित नहीं रहता है जब उसके प्रश्न का उत्तर दिये जाने की बारी आती है, वह अपने बदले किसी अन्य सदस्य को प्रश्न पूछने का अधिकार देता है। किन्तु उसके सदन में रहते हुए यदि अध्यक्ष द्वारा उसके प्रश्न की घोषणा होने पर वह खड़ा नहीं होता है तो उसका प्रश्न सदन की दैनिक कार्यवाही में अंकित नहीं किया जाता। फरवरी सन् १९२८ में संयुक्त प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौन्सिल में इसी प्रकार की एक घटना हो गई। सदस्य सदन में उपस्थित होते हुए भी उस समय खड़ा नहीं हुआ जब सभापति ने उसके प्रश्न की घोषणा की। सदस्य के इस अशिष्ट व्यवहार के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए सभापतिने कहा कि जो सदस्य यह चाहते हुए भी कि उनका प्रश्न सदन की कार्यवाही में अंकित हो जाय, किन्तु स्वयं उसको प्रस्तुत नहीं करना चाहते, उन्हें ऐसे समय सदन से बाहर चला जाना चाहिए और प्रश्नोत्तर काल के पश्चात् पुनः सदन में लौट आना चाहिए। किन्तु यदि वे प्रश्न को पूछना ही नहीं चाहते तो उन्हें वैसे बतलाना चाहिए ताकि उनका प्रश्नोत्तर सदन की कार्यवाहियों में अंकित न हो।*

जिन प्रश्नों का उत्तर सार्वजनिक हित की दृष्टि से देना उचित नहीं उनके लिए किसी मंत्री को बाध्य नहीं किया जा सकता†। किन्तु अन्य किसी भी प्रकार के प्रश्न और उससे सम्बन्धित पूछे गये अनुपूरक प्रश्न का उत्तर

* ". . . . those members who do not want to put their questions and yet wish them go down into the proceedings, should as a matter of grace and dignity withdraw from the Hall at question time and come again. But if they do not want to put the question at all, they should say so, in which case those questions and answers will not form part of the proceedings,"

U. P. Legislative Council Proceedings, Vol. XXXVII p. 618

† Chamier : Parliamentary Procedure in India, p. 70

देना आवश्यक होता है। यदि यह पाया जाय कि अमुक मंत्री जानबूझकर किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देना चहता है तो विधान का प्रश्न उपस्थित करके* अथवा कार्य स्थगत प्रस्ताव प्रस्तुत करके† उस विषय पर स्पष्टीकरण करा सकता है।

६ दिसम्बर १६५२ को उत्तर प्रदेश विधान सभा में श्री गेंदा सिंह (समाजवादी) ने यह शिकायत करते हुए कि अल्पसूचित प्रश्नों के उत्तर महीनों तक नहीं मिलता है जब कि नियमानुसार तीन दिन के भीतर वह मिल जाना चाहिये, विशेषाधिकार का प्रश्न उपस्थित किया। उन्होंने कहा कि नियमों का उल्लंघन विशेषाधिकार का अपहरण है। इस पर अध्यक्ष ने कहा कि "विशेषाधिकार का उल्लंघन मंत्री ने किया, इसलिये उसे नोटिस मिलना चाहिये था। चूंकि वह नहीं मिला इसलिये यह प्रश्न अनियमित है। किन्तु प्रश्नों के उत्तर देर में मिलते हैं, और नियमों का उल्लंघन होता है, इसलिये इसपर विचार हो सकता है। इस देरी का कारण मेरे और मंत्रियों के सचिवालय हैं।" सरकार की ओर से सफाई देते हुए श्री हाफिज इब्राहीम ने आश्वासन दिया कि सरकार का सदस्य सदन व उसके सदस्यों के विशेषाधिकार की रक्षा अपना कर्तव्य मानता है। विशेषाधिकार के प्रश्न को अनियमित घोषित करते हुए अध्यक्ष ने कहा कि—

> "मेरे और सरकार के आश्वासन सदन को मिल चुके हैं कि उत्तरों में देर नहीं होगी। नियमों का पालन सब चाहते हैं, किन्तु नियमों पर अधिक श्रद्धा भी नहीं जा सकता। यदि श्री गेंदा सिंह विशेषाधिकार का प्रश्न फिर उठाना चाहें तो नियमानुसार मंत्रियों को इसकी सूचना दें।"

व्यवस्थापकों को प्रायः प्रश्न पूछने का शौक होता है। जब तब कोई न कोई प्रश्न पूछ ही लेते हैं। जिन प्रश्नोंका पूछना सर्वथा अनावश्यक होता है अथवा जिन प्रश्नों को सार्वजनिक हित की दृष्टि से पूछना उचित नहीं, उन्हें भी

---

* U. P. Legislative Council Poceedings. Vol. XLI. P. 456.

† Gupta: Constitutional Principles and Constitution, pp. 192 197.

पूछा जाता है। जिन साधारण बातों की जानकारी अधिकारियों से प्राप्त हो सकती है उन्हें भी सदन में रखा जाता है। इससे सदन का समय नष्ट होता है। सदस्यों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे प्रश्न करते समय भाषण न देने लग जायं। ७ दिसम्बर १९५२ को लोकसभा में प्रश्नोत्तर के समय उपाध्यक्ष श्री अनन्तशयनम आयंगर ने एक सदस्य से कहा—

"आपका प्रश्न इतना लम्बा-चौड़ा है कि उसके अन्त में पहुँचते. पहुँचते प्रारंभ भूल जाता है।"

एक अन्य सदस्य से उन्हें कहना पड़ा कि

"आप प्रश्न नहीं पूछ रहे हैं स्वयं सूचना दे रहे हैं।"

जो प्रश्न संसद के विषय से बाहर और विधान-मण्डल के क्षेत्र के होते हैं उनके सम्बन्ध में उत्तर नहीं दिया जाता। उसी प्रकार जो प्रश्न केन्द्रीय विषयों से सम्बन्धित होते हैं विधान-मण्डल में उनका पस्तुत किया जाना उचित नहीं।

प्रसंगवश यहां पर यह भी बतला देना आवश्यक है कि अल्प सूचना वाले प्रश्नों का इस कारण कभी कम महत्व नहीं समझना चाहिये कि चूंकि अल्प सूचना वाले प्रश्न का तीन दिन के भीतर उत्तर देने का नियम है इसलिये शायद पूरी सूचना देनी आपेक्षित न हो। संबन्धित मंत्री को उस विषय के पूरक प्रश्नों की कल्पना करके पहले से तैयार रहना चाहिये। अल्प सूचना वाले प्रश्न का वही महत्व होता है जो अन्य प्रश्नों का होता है। २ जून १९५२ को लोकसभा में डाक्टर रामसुभग सिंह के एक अल्प सूचना वाले प्रश्न के उत्तर में दिल्ली में होने वाले अन्तर्साम्प्रदायिक विवाह पर गृह-मंत्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू को एक लिखित वक्तव्य देना पड़ा और उससे सम्बन्धित सब पूरक प्रश्नों का उत्तर देना पड़ा।

११ दिसम्बर १९५२ को मद्रास विधान सभा में एक शिकायत की गई कि गत अप्रैल में पूछे गये प्रश्न का उत्तर मंत्रियों ने अभी तक नहीं दिया है। इसके उत्तर में मुख्य मंत्री श्री राजगोपालाचारी ने कहा कि सरकारी मुख्य कार्यालय में उपलब्ध सूचनायें तो शीघ्र ही सदस्यों को दे दी जाती हैं; आंकड़े सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर कई जिलों से जुटाना पड़ता है जिसमें देर हो जाती है।

प्रस्ताव और संकल्प

मैनुअल को उद्धृत करते हुए रेडलिक लिखता है कि बहुत से व्यक्तियों की सभा द्वारा सामूहिक रूप से किये गये सर्वसम्मत निर्णय संसदीय कार्य-प्रणाली का निर्माण करते हैं। प्रस्ताव और संकल्प संसदीय कार्य-प्रणाली के दो बुनियादी भाग हैं।* किसी भी विषयपर लोकसभा या लोकसभाकी समिति का निर्णय लेने के लिए एक सदस्य उसे प्रस्ताव के रूप में रखता है, अध्यक्ष द्वारा प्रश्न पूछे जाने से 'हां' या 'ना' का उत्तर मिलने से उसपर निर्णय मिल जाता है।† मे का भी यही कथन है।‡

प्रस्ताव का एक प्रस्तावक होता है और एक या एकाधिक समर्थक। बिना समर्थन के प्रस्ताव नियमित और वैधानिक होते हुए भी स्वीकार नहीं किया जा सकता और न उसका कहीं लेखा-जोखा होता है।§ अपवादस्वरूप ऐसे प्रस्ताव इस श्रेणि में नहीं आते जो औपचारिक ढंग के होते हैं। कुछ प्रस्ताव बिना पूर्व सूचना के रखे जाते हैं जिनपर तत्काल निर्णय होता है। कुछ परिस्थितियों को छोड़कर

* Redlich : ibid, p 215

†"A matter requiring the decision of the House or of a Committee, is decided by means of a question put from the Chair on a motion proposed by a member."

—(Manual, p. 96)

‡"Every matter is determined in both Houses upon questions put by the Speaker upon a motion made by a member. and resolved in the affirmative or negative, as the case may be."

—May : ibid, 13th ed. p. 247.

§Campion : Introduction to the Procedure of the House of Commons, p. 144.

सामान्यतः प्रस्ताव लिखित रूप से प्रस्तुत किये जाते हैं। मंत्रियों के अतिरिक्त कोई दूसरा सदस्य अन्य व्यक्ति के नामपर प्रस्ताव नहीं प्रस्तुत कर सकता।*

संसद् एवं विधान-मण्डल की प्रक्रिया नियमावली में सार्वजनिक हित की बातोंपर वाद-विवाद के लिए प्रस्तुत किये गये प्रस्तावों के सम्बन्ध में लिखा है कि संविधान अथवा प्रक्रिया नियमावली में, अन्यथा निर्दिष्ट होने की दशा के अतिरिक्त, व्यापक सार्वजनिक हित के किसी भी विषय पर वाद-विवाद नहीं चालित किया जायगा जब तक कि तत्सम्बन्धी नियमों के अनुसार संकल्प न प्रस्तुत किया गया हो, सिवाय इसके कि ऐसा प्रस्तावअध्यक्ष की अनुमति से लाया गया हो। यदि अध्यक्ष प्रस्ताव को स्वीकार कर ले तो वह सदन के नेता के परामर्श से उस पर वाद-विवाद के लिए एक या एकाधिक दिन निश्चित कर सकता है।

बिना पूर्व सूचना दिये सभा की कार्यवाही को स्थगित करने; सभा की बैठक के बीच में किसी समय बाहरी लोगों को सदन के किसी भाग से हटाने, स्थायी समिति का चुनाव करने, विधेयक, संकल्प प्रस्ताव या संशोधन वापस लेने, बधाई, धन्यवाद या शोक प्रकट करने, वाद-विवाद बन्द करने, संशोधन पर संशोधन रखने, विशेषाधिकार का दुरुपयोग करने के विषय तात्कालिक महत्व के समझे जाते हैं और इस लिए उनके सम्बन्ध में प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए पूर्व सूचना की आवश्यकता नहीं होती।

संकल्प—

संसद् में जब कोई प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है उसे संकल्प कहते हैं। संकल्प से अभिप्राय सभा के उद्देश्य से होता है†। संकल्प

* A motion which requires notice can only be moved by the member in whose name the notice stands. Also a motion standing in the name of a Minister may be moved by his colleague. for one Minister can always represent another."

—Campion : ibid, p. 144.

†May : ibid, p. 257.

विवादास्पद नहीं होना चाहिये। उसमें स्पष्ट रूप से केवल उन्हीं बातों का उल्लेख होना चाहिए जो सभा के निर्णय के लिये प्रस्तुत करना आवश्यक हों।

कोई सदस्य जब किसी संकल्प को प्रस्तुत करना चाहता है उसकी सूचना उस अधिवेशन के कम से कम १५ दिन पूर्व सदन के सचिव को देता है। इस सूचना के साथ वह संकल्प की एक प्रति भी संलग्न करके देता है किन्तु अध्यक्ष सम्बन्धित मंत्री की सम्मति लेकर इससे कम अवधि की सूचना पर भी किसी संकल्प को कार्य-सूची में स्थान दे सकता है। व्यावहारिक रूप से यह पाया गया है कि प्रायः इसका लाभ सरकारी संकल्पों को होता है।

चूंकि संकल्प सभा के मत की घोषणा के रूप में होता है इसलिये केवल उन्हीं विषयों के संकल्प प्रस्तावित किये जाने चाहिये जो सार्वजनिक हित के किसी मामले से सम्बन्धित हों। ऐसे संकल्प जिनमें निम्नलिखित नियमों का पालन किया गया हो स्वीकार नहीं किये जाते :—

संकल्प स्पष्ट और संक्षिप्त रूप में व्यक्त किया गया हो ;

उसके द्वारा मुख्यतः एक ही निश्चित वस्तु-स्थिति का विवेचन हो ;

उसमें तर्क, निष्कर्ष, व्यंगात्मक वाक्य, दोषारोपण अथवा मान-हानिकारक कथन नहीं हो सकते ;

उसमें किसी व्यक्ति के आचरण या चरित्र के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं किया जा सकता। किन्तु वह उल्लेख उसके सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित आचारों और शासकीय कार्यों के सम्बन्ध में हो सकता है।

ऐसे किसी विषय में संकल्प नहीं प्रस्तुत किया जा सकता जो न्यायालय में विचाराधीन हो।

किसी भी संकल्प या उसके किसी भाग को जो प्रक्रिया नियमावली के विरुद्ध समझा जाय अध्यक्ष अस्वीकार कर सकता है। उसका निर्णय अन्तिम समझा जाता है।

सन् १६२४ में यू० पी० लेजिस्लेटिव कौंसिल में एक सदस्य ने सभापति के इस प्रकार के एक निर्णय से असहमत होकर पूछा कि क्या ब्रिटिश

लोकसभा की भांति यहां भी सदस्य सभापति के निर्णय पर वाद-विवाद कर सकते हैं ? सभापति ने व्यवस्था दी कि सभापति के निर्णय पर वाद-विवाद करने का यह अर्थ होगा कि सभापति है ही नहीं।*

जिस सदस्य के नाम पर संकल्प कार्य-सूची में चढ़ा होता है, नाम पुकारे जाने पर वह या तो संकल्प को वापस लेने की घोषणा करता है अथवा संकल्प का प्रस्ताव औपचारिक ढंग से पढ़कर उसपर अपना वक्तव्य आरम्भ करता है। किन्तु अध्यक्ष की अनुमति से संकल्प का प्रस्तावक दूसरे सदस्य को, जिसके नाम पर उसी प्रकार का संकल्प कार्य-सूची में अंकित हो, अपनी ओर से उसे प्रस्तावित करने की अनुमति दे सकता है, और इस प्रकार जिस सदस्य को उसका अधिकार मिले वही संकल्प रख सकता है। यदि वह सदस्य नाम पुकारे जाने पर अनुपस्थित हो, तो कोई अन्य सदस्य, जिसको उसने अपनी ओर से लिखित अधिकार दिया हो, अध्यक्ष की अनुमति से उसके नाम पर लिखा हुआ संकल्प प्रस्तुत कर सकता है। किन्तु यदि किसी अन्य व्यक्ति को इस प्रकार का अधिकार न दिया गया तो संकल्प वापस लिया गया समझा जाता है।

संकल्प प्रस्तुत करने वाले प्रस्तावक या उस विभाग से सम्बन्धित मंत्री को छोड़कर जिन्हें ३० मिनट या अध्यक्ष की अनुमति हो तो उससे भी अधिक समय मिल सकता है, अन्य सदस्यों को उस पर बोलने का केवल पन्द्रह मिनट का समय मिलता है। वाद-विवाद केवल उसी विषय के अन्दर हो सकता है। विषयान्तर होने पर अध्यक्ष भाषण पर प्रतिबन्ध लगा देता है। उस पर संशोधन प्रस्तुत किये जा सकते हैं। किन्तु संशोधन दो बातों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये। एक तो वह किसी भी रूप में स्थायी आदेशों के प्रतिकूल न हो, और दूसरे संकल्प सम्बन्धी नियमों के अनुसार हो। जिस दिन संशोधन प्रस्तुत किया जाना हो उसके एक दिन पूर्व यदि उसकी सूचना न दी गई तो कोई भी सदस्य उस संशोधन के प्रस्तुत किये जाने के सम्बन्ध में आपत्ति उठा सकता है। किन्तु यदि अध्यक्ष उक्त संशोधन

* U. P. Legislative Council Proceedings, Vol. XX, p. 241-244.

के प्रस्तुत किये जाने की अनुमति न दे तो ऐसी आपत्ति मान्य होगी। यदि समय हो तो सदन का सचिव उन संशोधनों की सूचियां, जिनकी सूचनायें प्राप्त हो चुकी हैं, समय-समय पर सदस्यों को दे सकता है। बिना सभा की अनुमति के संकल्प अथवा उस पर प्रस्तुत किये गये संशोधन वापस नहीं किये जा सकते और न तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पर अध्यक्ष की अनुमति के बिना वाद-विवाद हो सकता है। यदि कोई सकल्प स्वीकार कर लिया जाय और उस पर वाद-विवाद न हो तो यह समझा जाता है कि वह वापस कर लिया गया है।

ऐसे संकल्प पर, जिसमें कई प्रश्न सन्निहित हों, वाद-विवाद हो चुकने पर अध्यक्ष यदि आवश्यक समझे तो उसे विभाजित करके प्रत्येक प्रश्न पर पृथक रूप से मत ले सकता है। जब कोई संकल्प प्रस्तावित किया गया हो और उसके उपरान्त सदन में मत प्राप्त करने के लिये प्रस्तुत किया गया हो अथवा वापस लिया गया हो तो ऐसा कोई भी संकल्प या उस पर प्रस्तुत किया गया संशोधन जो वस्तुतः वही प्रश्न उपस्थित करता हो, एक वर्ष के भीतर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

सभा द्वारा स्वीकृत हो जाने के पश्चात् प्रत्येक संकल्प की एक प्रति सम्बन्धित मन्त्री के पास भेज दी जाती है।

———

कार्य-स्थगन प्रस्ताव

जब कभी अकस्मात् कोई अत्यधिक सार्वजनिक महत्व का विषय सामने आ जाता है तब सदस्य सभा की कार्यवाही को स्थगित कराने और उस विषय का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अध्यक्ष से आज्ञा प्राप्त करता है। कार्य-स्थगन प्रस्ताव की एक एक प्रतिलिपि अध्यक्ष, सचिव और सम्बन्धित मंत्री को जिस दिन उस पर वाद-विवाद कराने की इच्छा हो उस दिन सदन की बैठक से पूर्व प्रस्तुत की जाती है।

कार्य-स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने की स्वीकृति मिल जाने के पश्चात् उस दिन, जिस दिन प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाना हो, प्रश्नोत्तर-काल समाप्त हो जाने के पश्चात् और कार्यक्रम आरंभ होने के पूर्व, अध्यक्ष कार्य-स्थगन प्रस्ताव उपस्थित करने वाले सदस्य का नाम पुकारता है। यदि इसके विरुद्ध कोई सदस्य आपत्ति करे तो अध्यक्ष प्रस्ताव के समर्थकों को अपने स्थान पर खड़ा होने को कहता है। यदि कम से कम २५ सदस्य खड़े हो जाते हैं तो अध्यक्ष उन्हें प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति दे देता है। इससे कम संख्या होने पर अनुमति नहीं दी जाती।

कार्य-स्थगन प्रस्ताव शाम को चार बजे प्रस्तुत किया जाता है। सभा के काम-काज को देखते हुए अध्यक्ष उससे भी पूर्व उसे रखने की अनुमति प्रदान कर सकता है। सामान्यतः ऐसे प्रस्ताव पर डेढ़ घंटे तक वाद-विवाद की अनुमति मिलती है और यदि अध्यक्ष ऐसा अनुभव करता है कि उस पर काफी वाद-विवाद हो चुका है, शाम को साढ़े छः बजे अध्यक्ष उस पर वाद-विवाद समाप्त करा सकता है।

कार्य-स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये निम्नलिखित बातों का पालन करना आवश्यक है :—

एक ही बैठक में एक से अधिक इस प्रकार के प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किये जा सकते; *

---

*"When a motion is made for the adjournment of a debate, or that the chairman of a committee do report progress, or do leave the chair

एक ही प्रस्ताव में एक से अधिक मामलों पर वाद-विवाद नहीं हो सकता ।

वह प्रस्ताव हाल ही में घटित किसी निर्दिष्ट मामले तक सीमित रहना चाहिये ।

प्रस्ताव में विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उपस्थित किया जाना चाहिये;

प्रस्ताव द्वारा किसी ऐसे मामले पर वाद-विवाद पुनः चालू नहीं होना चाहिये जिस पर उसी अधिवेशन में वाद-विवाद हो चुका हो;

प्रस्ताव द्वारा ऐसे किसी मामले की पहले से ही कल्पना नहीं की जानी चाहिये जो विचार के लिये पूर्व निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार नियत हो चुका हो या जिसके सम्बन्ध में प्रस्ताव की सूचना पहले ही दी जा चुकी हो;

प्रस्ताव ऐसे किसी मामले के सम्बन्ध में नहीं रखा जा सकता जो कि राज्य के किसी भाग में विचाराधिकार रखने वाले किसी न्यायलय के विचाराधीन हो ।

कार्य-स्थगन प्रस्ताव संसदीय व्यवहार में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है । वह अधिकांशतः अल्प संख्यक दल द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । और अध्यक्ष भी काफी उदारता पूर्वक उस पर वाद-विवाद करने की अनुमति देता है । इस प्रकार के प्रस्ताव का उद्देश्य सरकार की नीति की आलोचना और उसकी निन्दा करना होता है । ऐसी स्थिति में यदि वह स्वीकार हो जाता है तो सरकार को त्याग-पत्र भी देना पड़ सकता है । इसलिये कार्य-स्थगन के प्रस्ताव का

---

the debate thereupon shall be confined to the matter of such motion ; and no member, having moved or seconded any such motion, shall be entitled to move, or second, any similar motion during the same debate".

—Standing Order 22.

महत्व काफी अधिक होता है। इसलिये सदस्यों को केवल महत्वपूर्ण विषयों को लेकर ही कार्य-स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करना चाहिये।

संसद् तथा विधान मण्डलों में कुछ समय से कार्य-स्थगन के प्रस्ताव प्रस्तुत करने की संख्या इतनी बढ़ गई है कि उसका धीरे-धीरे महत्व घटता जा रहा है। प्रस्ताव रखने से पूर्व सदस्य प्रायः उसके औचित्य की जांच पड़ताल किये बिना उसे प्रस्तुत कर देते हैं। वह किसी न किसी आधार पर अस्वीकृत हो जाता है और सदन का समय व्यर्थ नष्ट होता है। गत १० अक्टूबर १६५२ को उत्तर प्रदेशीय विधान सभा के अध्यक्ष श्री ए० जी० खेरने समाजवादी सदस्य श्री मलखान सिंह द्वारा प्रस्तुत किये गये कार्य-स्थगन प्रस्ताव को, जिसमें उन्होंने बुलन्द शहर सत्याग्रह के बन्दी श्री ईश्वरी सिंह के मेरठ जेल में अनशन से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के लिये प्रार्थना की थी, अस्वीकार कर दिया।

श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहीम ने प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा कि चूंकि श्री ईश्वरी सिंह का अनशन "आत्म शुद्धि के लिये एक सप्ताह का उपवास" है जो कल समाप्त हो जायगा, इसलिये उक्त प्रस्ताव का कोई महत्व नहीं है। श्री इब्राहीम के तर्क को स्वीकार करते हुए अध्यक्ष ने यह कह कर कि कार्य-स्थगन प्रस्ताव "नितान्त आवश्यक नहीं" है इसलिये अस्वीकार किया जाता है। इसी विधान सभा में २८ अगस्त १६५२ को श्री मदन मोहन उपाध्याय ने काशी में विद्यार्थियों पर हुई पुलिस की मारपीट के विरोध में एक कार्य-स्थगन प्रस्ताव उपस्थित किया। अध्यक्ष ने प्रस्ताव रखने की स्वीकृत देते हुए कहा कि २४ अगस्त को काशी में हुई दुर्घटना निश्चित भी है और महत्वपूर्ण भी; किन्तु उन्होंने प्रस्ताव को तत्काल रखे जाने की आवश्यकता पर सन्देह करते हुए कहा कि पहले श्री उपाध्याय इसका स्पष्टीकरण करें। श्री उपाध्याय ने उस पर प्रकाश डाला। गृह-मंत्री श्री सम्पूर्णानन्द ने प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि मार-पीट के कारणों की जांच की जा रही है, और स्थिति बिल्कुल ठीक है, इसलिए प्रस्ताव अनावश्यक है। उनके उत्तर में श्री उपाध्याय ने पुनः कहा कि काशी-कांड का

प्रभाव अन्य स्थानों पर भी पड़ रहा है, जिसका प्रमाण कल लखनऊ में घटित एक घटना है, इसलिए इस प्रश्न पर तत्काल विचार किया जाना चाहिए। अध्यक्ष ने श्री उपाध्याय के पक्ष में अपना निर्णय देते हुए कहा कि यह प्रश्न तत्काल विचार करने योग्य है, इसलिए इसको लेने के लिए सदन का कार्य स्थगित किया जाता है। मत-दान किये जाने पर प्रस्ताव के पक्ष में केवल ३१ मत आये, जब कि नियमानुसार कम से कम ३६ मत (जो कुल सदस्य-संख्या का बारहवां भाग होता है) आना आवश्यक था। प्रस्ताव गिर गया।

नियमानुसार किसी विषय पर जिसके सम्बन्ध में सदन में भली-भांति विचार हो चुका हो, कार्य-स्थगन प्रस्ताव के रूप में उसको पुनः सदन के समक्ष लाना अनियमित है और इससे सभा का समय व्यर्थ में नष्ट होता है। १० सितम्बर १९५२ को क्रान्तिकारी समाजवादी दल के श्री झारखण्डे राय के (जो अब साम्यवादी दल में मिल गये हैं) कार्य-स्थगन प्रस्ताव पूर्वी जिलों की भुखमरी से संबन्धित श्री जे० सी० कुमारप्पा के वक्तव्य से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के लिये रखा गया। प्रस्ताव में कहा गया था कि श्री कुमारप्पा का वक्तव्य उस सरकारी वक्तव्य की चुनौती है जिसमें उसने कहा था कि राज्य में कोई भुखमरी नहीं है। प्रस्ताव को अस्वीकृत करते हुए अध्यक्ष ने कहा कि इस विषय पर विधान सभा ने हाल में पूरे एक दिन तक विचार किया है। इस लिये अब इसका दुबारा विचार के लिये प्रस्तुत किया जाना नियम विरुद्ध है।

जैसा कि प्रक्रिया नियमावली में बतलाया गया है कार्य-स्थगन प्रस्ताव "ऐसे किसी मामले के सम्बन्ध में नहीं रखा जा सकता जो कि राज्य के किसी भाग में विचाराधिकार रखने वाले किसी न्यायालय के विचाराधीन हो,"* ऐसे

---

* १४ नवम्बर १९५२ को लोकसभा में अध्यक्ष श्री मावलंकर ने काश्मीर के सदर-ए-रियासत के चुनाव पर वाद-विवाद के लिये प्रस्तुत कार्य-स्थगन प्रस्ताव को अनियमित घोषित करते हुए कहा कि यह संविधान की व्याख्या का प्रश्न है जिसका निर्णय उच्चतम न्यायालय में हो सकता है।

विषयों को प्रस्तुत करके सदन का समय नष्ट किया जाता है। लोक सभा में १४ नवम्बर १९५२ को साम्यवादी दल के उप-नेता श्री हीरेन मुकर्जी के एक कार्य-स्थगन प्रस्ताव को अध्यक्ष ने अस्वीकृत कर दिया जिसमें उन्होंने त्रिपुरा राज्य स्थित अगरतल्ला नगर के चारों ओर लगाई गई धारा १४४ पर वाद-विवाद करने की मांग की थी। अध्यक्ष ने कहा कि इस औचित्य का निर्णय न्यायालय में होगा इस लिये इसे यहां नहीं प्रस्तुत किया जा सकता।

संसद में उन विषयों पर कार्य-स्थगन प्रस्ताव रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती जो राज्य सरकार से सम्बन्धित होते हैं*। उसी प्रकार जो विषय केन्द्र के आधीन होते हैं उन पर विधान-मण्डल में कार्य-स्थगन का प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता। †

सदन की प्रतिष्ठा और परम्परा की रक्षा की जिम्मेदारी जितनी सरकार की होती है उतनी ही विरोधी दल की भी होनी चाहिये, तब ही संसदीय

* ९ दिसम्बर १९५२ को लोकसभा के उपाध्यक्ष ने श्री नम्बयार के उस कार्य-स्थगन प्रस्ताव को, जिसमें उन्होंने तामिल में आये तूफान के विषय में विचार करने की अनुमति मांगी थी, अस्वीकृत कर दिया। प्रस्ताव का विरोध करते हुए स्वराष्ट्र विभाग के उप-मन्त्री श्री दातार ने कहा कि मद्रास सरकार तथा अन्य राज्य संस्थायें पीड़ितों की सहायता के लिये यथासंभव उपाय कर रही हैं। उपाध्यक्ष ने प्रस्ताव को अस्वीकृत करते हुए कहा कि यह विषय राज्य सरकार का है इसलिये लोकसभा में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

† ११ दिसम्बर १९५२ को हैदराबाद विधान-सभा में जनवादी लोकतंत्रीय मोर्चे के सदस्य श्री एस० रामनाथन ने एक कार्य-स्थगन प्रस्ताव रखा जिसमें कहा गया कि श्री पोट्टी श्रीरामुलू का अनशन हैदराबाद की और विशेषकर तेलंगाना की जनता के लिये, जो विशाल आंध्र का एक अंग होगी, अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है, अतः सदन को उस पर विचार-विनिमय करने का अवसर दिया जाय। अध्यक्ष श्री काशीनाथ राव वैद्य ने प्रस्ताव को अनियमित घोषित करते हुए कहा कि इस प्रश्न का हैदराबाद सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं है और इस विषय को लेकर लोकसभा तथा मद्रास विधान-सभा में जो कार्य-स्थगन के प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये थे उनके लिये भी अनुमति नहीं दी गई।

व्यवस्था कायम रह सकती है, अन्यथा नहीं। यदि विरोधी पक्ष औचित्यानौचित्य का विचार किये बिना सदा सरकार को बदनाम करने तथा उसे नीचा दिखाने की नीयत से संसद में काम करेगा और सरकार सदन में अपना बहुमत होने के कारण सदा विरोधी पक्ष की उपेक्षा करती रहेगी तो न संसदीय प्रणाली ही पनप सकेगी और न लोकतंत्र ही जीवित रह पायेगा। इसलिये दोनों को एक दूसरे को समझने की आवश्यकता है। किन्तु तथ्य इसके विपरीत है। कार्य-स्थगन प्रस्तावों के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं उन्हें देखकर यह तो सहज ही कहा जा सकता है कि प्रस्तावकों और समर्थकों ने संसदीय नियमों को भुलाकर साधारण विवेक से भी काम नहीं किया। बहुत कम ऐसा हुआ है जब कि सरकार के साथ उनकी शक्ति परीक्षा हुई हो। अधिकांशतः वे अध्यक्ष द्वारा अनियमित घोषित होने के कारण समाप्त हुए। भारत के संसदीय इतिहास में सर्वाधिक विवादास्पद स्थगन-प्रस्ताव १० दिसम्बर १९५२ को लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया जिसमें फ्रैंकफर्ट (जर्मनी) के एक पत्र में प्रकाशित उस कथित समाचार की टिप्पणी के आधार पर विरोध किया गया कि भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू रानी एलिजाबेथ के राज्याभिषेक समारोह के अवसर पर भारत के प्रतिनिधि के रूप में उसके प्रति निष्ठा की शपथ लेंगे। अमेरिकन उच्चायोग द्वारा प्रकाशित उक्त जर्मन पत्र में जिस शब्द का प्रयोग किया गया उसका अर्थ शपथ लेना नहीं बल्कि सम्मान प्रकट करना होता है। प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डया ने उसका गलत अर्थ लगाकर जो समाचार प्रसारित किया वह भारत के पत्रों में भी प्रकाशित हुआ। उसपर तो विरोधी पक्ष के लोगों ने कार्य-स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये अध्यक्ष की अनुमति लेनी चाही किन्तु अध्यक्ष ने उसे अस्वीकार करके मामला वहीं पर समाप्त कर दिया था। किन्तु दिल्ली के एक समाचारपत्र "दिल्ली एक्प्रेस" ने प्रस्ताव के उपस्थित होने से पूर्व ९ दिसम्बर को उसे प्रकाशित कर दिया। उसके अगले ही दिन (१० दिसम्बर को) श्रीमती सुचेता कृपलानी ने उपाध्यक्ष श्री अनन्तशयनम आयंगर से पूछा कि क्या उन्होंने "दिल्ली एक्सप्रेस" में प्रकाशित उस समाचार को देखा है जिसमें ९ दिसम्बर को उनको

(उपाध्यक्ष) दिये गये कार्य-स्थगन प्रस्ताव का समाचार प्रकाशित हुआ है। उक्त समाचार यह था कि संसद के सदस्य इस बात का विरोध कर रहे हैं कि नेहरू जी महारानी एलिजाबेथ के राज्याभिषेक के अवसर पर उनके पति शपथ ग्रहण करेंगे और यह कि सदस्यों ने इस पर वादविवाद करने के लिये कार्य-स्थगन प्रस्ताव उपस्थित किया है। सदन में प्रजा समाजवादी दल की नेत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी ने पूछा कि आखिर यह समाचार आज प्रकाशित कैसे हुआ जब कि मैंने इसकी सूचना उपाध्यक्ष के कार्यालय में कल प्रस्तुत की। उपाध्यक्ष ने लोकसभा के नेता श्री नेहरू को स्थिति का स्पष्टीकरण करने के लिये कहा। नेहरू जी ने कहा कि मैं चाहता हूँ कि न केवल उपाध्यक्ष के कार्यालय की, जिस पर समाचार प्रकाशित कराने का सन्देह प्रकट किया जा रहा है, जाँच की जाय बल्कि सदस्यों के बारे में भी जांच हो, क्योंकि संभव है कि कार्यालय से न निकलकर प्रस्ताव उपस्थित करनेवाले सदस्यों के द्वारा ही पत्र-प्रतिनिधि को मालूम हुआ हो। कार्य-स्थगन प्रस्ताव के अनौचित्य का उल्लेख करते हुए प्रधान मंत्री ने प्रस्ताविका की आलोचना की और कहा कि यह विचित्र बात है कि सदस्या ने कार्य-स्थगन प्रस्ताव उपस्थित कर दिया। मुझसे क्यों नहीं पूछ लिया कि सच बात क्या है ? मुझसे कोई भी सदस्य मिल सकता है और स्थिति स्पष्ट करा सकता है। मैं इसे एकदम अनुत्तरदायी कदम समझता हूँ। कार्य-स्थगन प्रस्ताव मामूली कदम नहीं है। इसके लिये सतर्कता से काम लेना चाहिये था। उनके भाषण के बीच-बीच में विरोधी पक्ष वाले भी कुछ-न-कुछ बोलते जाते थे। कार्य-स्थगन प्रस्ताव की आलोचना करते हुए उपाध्यक्ष ने भी कहा कि बहुत विशेष एवं महत्वपूर्ण विषय पर ही कार्य-स्थगन प्रस्ताव उपस्थित किया जाना चाहिये। सदस्य गण इसके लिये अल्पसूचित प्रश्न या दीर्घकालिक प्रश्न पूछने जैसे मार्ग अपना सकते हैं। उन्होंने कार्य-स्थगन प्रस्ताव पर वाद-विवाद करने की अनुमति नहीं दी।

कभी-कभी अपवादस्वरूप कार्य-स्थगन प्रस्ताव स्वीकृत भी हो जाते हैं। ६ मई १९५२ को पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य-संघ विधान सभा में

सरदार बसवा सिंह (साम्यवादी) ने एक कार्य-स्थगन प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा कि संगरूर जिले के पटवारी श्री अमृत सिंह को राजप्रमुख ने बिना कुछ कारण बताये तथा सफाई का अवसर दिये बिना ही अपदस्थ कर दिया, यह राजप्रमुख द्वारा अपने अधिकारों का दुरुपयोग है। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

ऐसे विषय पर कार्य-स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जिस पर कि सदन में पहले ही कोई प्रस्ताव या संकल्प प्रस्तुत किया गया हो। २२ फरवरी १९२९ को यू. पी. लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभापति ने किसी शहर में एक विजली की कम्पनी को बिजली दिलाने के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये कार्य-स्थगन प्रस्ताव को लेना अस्वीकार कर दिया क्योंकि उसी विषय पर सदन में पहले से एक संकल्प प्रस्तुत किया जा चुका था जिस पर वाद-विवाद होने ही वाला था। किन्तु, उन्होंने कहा, यदि संकल्प सदन में विचाराधीन हो सका तब यह देखा जायगा कि प्रस्तुत प्रस्ताव लिया जा सकता है या नहीं।* ऐसे विषय पर भी प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता जो सम्बन्धित सरकार के क्षेत्र से बाहर हो तथा जिस पर कि संकल्प प्रस्तुत किया जाना अवैधानिक या अनियमित हो।† भारत सरकार द्वारा कौंन्सल के एक सदस्य की गिरफ्तारी के विरुद्ध २२ मार्च १९२९ को कौंसिल की बैठक में एक सदस्य ने उस पर विचार करनेके लिए कार्य-स्थगन का प्रस्ताव रखा। सभापति ने प्रस्ताव रखने की अनुमति भी दे दी, किन्तु गवर्नर द्वारा इस आधार पर कि गिरफ्तारी

* U. P, Legislative Council Proceedings, Vol, XLII, —p. 222,

† ५ मार्च १९२९ को कलकत्ते में महात्मा गांधी की गिरफ्तारी पर यू. पी. लेजिस्लेटिव कौंसिल में ६ मार्च को एक प्रस्ताव रखा गया जिसमें महात्माजी की गिरफ्तारी पर उत्पन्न स्थिति पर विचार करने का उल्लेख किया गया। अध्यक्ष ने यह कह कर कि इस प्रश्नका यू. पी. सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं है, तथा यह न्यायपायिका से सम्बन्धित होने के कारण इसपर संकल्प नहीं प्रस्तुत किया जा सकता इसलिए इसपर प्रस्ताव भी नहीं रख सकते, उसे अस्वीकृत कर दिया।

केन्द्रीय सरकार के आदेशों के अनुसार हुई है, कार्य-स्थगन का प्रस्ताव अनियमित घोषित कर दिया गया* । ब्रिटिश लोकसभा में कार्य-स्थगन का ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं स्वीकार किया जाता जिसका प्रशासन से या प्रशासन सम्बंधी कानून से कोई सम्बन्ध न हो† ।

यदि किसी कार्य-स्थगन प्रस्ताव के सम्बन्ध में अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता अध्यक्ष अनुभव करे तो वह उसे किसी अन्य तिथि के लिए स्थगित भी कर सकता है‡ ।

---

* U. P. Legislative Council Proceedings ibid, p. 1339-40

† May : ibid, p. 248.

‡ विधान सभा में श्री झारखण्डे राय (साम्यवादी) ने एक कार्य-स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा—कि बस्ती जिला के ११०० पटवारियों ने हड़ताल की है जिसके कि राज्य के अन्य भागों में भी फैलने की आशंका है । प्रस्ताव का विरोध माल मंत्री श्री चरण सिंह और उपनेता हाफिज मुहम्मद इब्राहीम ने किया और बताया कि यह मामला न तो स्पष्ट है और न विशेष सार्वजनिक महत्व का ही । अध्यक्ष ने, जब तक दोनों पक्षों से और अधिक स्पष्टीकरण न मिल जाय, इसे अगली बैठक तक के लिये स्थगित कर दिया ।

अविश्वास के प्रस्ताव की प्रक्रिया

अविश्वास के प्रस्ताव दो प्रकार के होते हैं—एक वह जो लोक सभा और विधान सभा में अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के विरुद्ध तथा राज्य-परिषद और विधान-परिषद् में सभापति या उपसभापति के विरुद्ध रखा जाता है, और दूसरा वह जो मंत्रि-परिषद के विरुद्ध होता है। दोनों प्रकार के प्रस्तावों के कारण भिन्न होते हैं। उन्हें सदन में प्रस्तुत करने और उन पर विवाद की प्रक्रिया भी भिन्न होती है। अध्यक्ष या सभापति के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव उसके पक्षपात-पूर्ण व्यवहार के कारण अथवा सदस्यों का उसकी कार्य-कुशलता में सन्देह होने पर प्रस्तुत किया जाता है; मंत्रि-परिषद के विरुद्ध अयोग्यता, भ्रष्टाचार अथवा उसकी नीति देश के लिए हानिकारक सिद्ध होने के कारण अविश्वास का प्रस्ताव रखा जाता है।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में संविधान में लिखा है—

"लोक सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के रूप में पद धारण करने वाला सदस्य लोक सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा अपने पद से हटाया जा सकेगा।" "कोई संकल्प तब तक प्रस्तावित न किया जायगा जब तक कि उस संकल्प के प्रस्तावित करने के अभिप्राय की कम से कम चौदह दिन की सूचना न दे दी गई हो"*

तथा **"लोक-सभा की किसी बैठक में, जब अध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब अध्यक्ष, अथवा जब उपाध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब उपाध्यक्ष, उपस्थित रहने पर भी, पीठासीन न होगा तथा अनुच्छेद ९५ के खण्ड [२] के उपबन्ध उसी रूप में ऐसी प्रत्येक बैठक के सम्बन्ध में लागू होंगे जिसमें कि वे उस बैठक**

---

* अनु० ९४ (ग)

के सम्बन्ध में लागू होते हैं जिससे कि यथास्थिति अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अनुपस्थित है"

अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष को अपदस्थ करने के संकल्प की सूचना जब प्रस्तुत हो जाती है तब अध्यक्ष उसे सभा में पढ़कर सुनाता है और उन सदस्यों से जो संकल्प प्रस्तुत करने के पक्ष में हों अपने स्थान पर खड़े होने को कहता है। यदि कम से कम तीस सदस्य खड़े हो गये तो अविश्वास का प्रस्ताव रखने की अनुमति दी जाती है। उसके दस दिन बाद, जब भी सुविधाजनक हो, प्रस्ताव पर विचार होता है।

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या सभापति के विरुद्ध प्राय: अविश्वास का प्रस्ताव नहीं रखा जाता। कम से कम भारत की संसदीय व्यवस्था में तो यह नहीं पाया गया है। अध्यक्ष के विरुद्ध जब किसी सदस्य को असन्तोष होता है, और प्रायः विरोधी दल के सदस्यों को ही असन्तोष होता है, वह अधिक से अधिक यह कह कर कि मेरे साथ न्याय नहीं हुआ है सदन से बाहर चला जाता है। पटियाला संघ की विधान सभा के कांग्रेस दल ने, जिसका पहले से यह इरादा था कि विधान सभा के अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाय, विधानसभा की बैठकसे एक दिन पूर्व (२१ दिसम्बर १९५२ को) प्रस्तावित अविश्वास के प्रस्ताव को प्रस्तुत न करने का निर्णय किया। पटि-याला राज्य संघ विधान सभा में संयुक्त मोर्चे के ३०, कांग्रेस दल के २४ और साम्यवादी दल के ३ सदस्य हैं। एक अध्यक्ष है और दो स्थानों का चुनाव अदालत ने रिक्त घोषित किया है। इस राज्य में अध्यक्ष के पद को भी राज-नीतिक दलदल में घसीटने का प्रयत्न किया जा रहा है। यदि यह परम्परा चल पड़ी तो इसका घातक प्रभाव न केवल पटियाला राज्य-संघ पर पड़ेगा बल्कि अन्य राज्य विधान सभाओं पर भी पड़ सकता है।

दूसरे प्रकार का अविश्वास का प्रस्ताव, जैसा कि मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ, मंत्रि-परिषद के सम्बन्ध में होता है। इस पर मैं कार्यपालिका

---

† अनु० ९६

सम्बन्धी अध्याय में लिख चुका हूँ। यहां पर प्रक्रिया सम्बन्धी बातों का उल्लेख करना आवश्यक है।

मंत्रि-परिषद में अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाला सदस्य अध्यक्ष से प्रश्नोत्तर काल के पश्चात् सदन की अन्य कार्यवाही आरंभ होने से पूर्व अनुमति प्राप्त कर लेता है। यह सूचना लिख कर सभा के सचिव के पास प्रस्तुत की जाती है।

यदि प्रस्ताव अनियमित नहीं है और उसे प्रस्तुत करने के लिये अध्यक्ष की स्वीकृति प्राप्त हो गई है तो अनुमति मांगे गये दिन से कम से कम दस दिन बाद जब भी अध्यक्ष उचित समझे प्रस्ताव को विचारार्थ लिया जाता है। अविश्वास का प्रस्ताव रखने की अनुमति केवल तभी मिल सकती है जब अध्यक्ष को यह विश्वास हो कि वह विधिवत रखा जा रहा है और उसे सदन में यथेष्ट समर्थन प्राप्त है। इसके लिये वह प्रस्ताव को सदन के समक्ष पढ़कर सुनाता है और उन सदस्यों से अपने स्थान पर खड़े होने को कहता है जो अविश्वास का प्रस्ताव रखने के पक्ष में हों। यदि कम से कम ३० सदस्य इस पक्ष में हों कि मंत्रि-परिषद के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाय तो प्रस्ताव पर विचार करने की तिथि निश्चत होती है। यदि तीस से कम सदस्य खड़े हुए तो प्रस्ताव पर विचार करने की अनुमति नहीं दी जाती।

जिस दिन अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत होता है। सर्व प्रथम प्रस्तावक और उसके समर्थक प्रस्ताव रखने के औचित्य पर प्रकाश डालते हैं। उसके पश्चात् मंत्रि-परिषद की ओर से प्रधान मंत्री उत्तर देता है और सबसे बाद में सदन में प्रस्ताव पर मत-दान होता है। बहुसंख्यक सदस्यों का अविश्वास के प्रस्ताव के पक्ष में मत देने का परिणाम यह होता है कि मंत्रि-परिषद को तत्काल त्याग-पत्र देना पड़ता है। राष्ट्रपति विरोधी दल के नेता को मंत्रि-परिषद की सूची प्रस्तुत करने को कहता है और यथाशीघ्र नया मंत्रि-परिषद शपथ-ग्रहण करता है।

मंत्रि-परिषद के किसी एक सदस्य के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकार होने पर भी समूचे मंत्रि-परिषद को पदत्याग करना आवश्यक होता है

क्योंकि समूचे मंत्रि-परिषद की संयुक्त जिम्मेदारी समझी जाती है। १९३५ के विधान में किसी एक मंत्री के विरुद्ध रखे गये प्रस्ताव के लिये केवल वही मंत्री जवाब देह होता था और प्रस्ताव स्वीकृत होने की अवस्था में उसी को त्याग-पत्र देना पड़ता था। किन्तु यह दोषपूर्ण नियम था। मंत्रि-परिषद की संयुक्त जिम्मेदारी का अर्थ ही यह होता है कि प्रत्येक मंत्री के भले-बुरे कामों के लिये समूचा मंत्रि-परिषद जिम्मेदार होता है; तब अविश्वास का प्रस्ताव किसी एक मंत्री के विरुद्ध ठीक नहीं होता। किसी एक मंत्री के विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव का अभिप्राय भी समूचे मंत्रि-परिषद पर किया गया अविश्वास समझा जाता है। संविधान में स्पष्ट लिखा है कि "मंत्रि-परिषद लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगा।" *

यदि मंत्रि-परिषद की ओर से प्रस्तुत किया गया महत्वपूर्ण विधेयक बहुमत से अस्वीकृत हो जाय तो उसे त्याग-पत्र देना पड़ सकता है। उसी प्रकार यदि मंत्रि-परिषद किसी अ-लोक-विधेयक के विरुद्ध हो और वह बहुमत द्वारा स्वीकृत हो जाय तो यह मंत्रि-परिषद पर विश्वास का प्रस्ताव समझा जाता है। किसी मंत्री के वेतन में कटौती का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर भी यह समझा जाता है कि मंत्रि-परिषद पर सभा के बहुसंख्यक सदस्यों का विश्वास नहीं है और उसे त्याग-पत्र देना पड़ सकता है†। कार्य-स्थगन का प्रस्ताव भी कुछ अवस्थाओं में मंत्रि-परिषद पर विश्वास का प्रस्ताव समझा जाता है।

जून १९५२ में मद्रास राज्य में अरुप्पुकोट्टई संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र से कांग्रेसी उम्मीदवार के हार जाने पर इस प्रश्न को मुख्य मंत्री ने एक प्रकार से अपनी सरकार में विश्वास का प्रश्न बना लिया था। उन्होंने विश्वास का

* अनु० ७४ (१)

† ३० जून १९५२ को ब्रिटिश लोक सभा में मजदूर दल ने खाद्य-मंत्री मेजर लायड जार्ज के वेतन में ५ पौंड कटौती की प्रस्ताव रखकर सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रकट किया गया। इस पर जब मत-दान हुआ तब प्रस्ताव के पक्ष में २७४ मत आये और उसके विरुद्ध ३०१। प्रस्ताव गिर गया।

प्रस्ताव विधान सभा में रखा और सदस्यों ने ४६ मतों के बहुमत से उनके मंत्रि-मण्डल में विश्वास प्रकट किया।

अविश्वास के प्रस्ताव की परम्परा कब और कैसे स्थापित हुई इसका ऐतिहासिक विवेचन यहां पर अनावश्यक है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सन् १७४२ में प्रधान मंत्री राबर्ट वालपोल के ब्रिटिश लोकसभा में पराजित हो जाने पर उसने मंत्रि-परिषद सहित तत्काल त्याग-पत्र दे दिया था, तब से संसदीय क्षेत्र में इस परम्परा का मान बढ़ता गया।

अविश्वास का प्रस्ताव सदन में सरकारी पक्ष और विरोधी पक्ष की शक्ति का निर्णायक होता है। जब तक सरकारी दल सदन में बहुमत में है तब तक विरोधी पक्ष के लोग अविश्वास का प्रस्ताव करना बहुत आवश्यक नहीं समझते। ऐसी स्थिति में, जब कि विरोध में एकाधिक दल हों और वे सब मिलाकर सरकारी दल से संख्या में अधिक हों तो सरकार को सदा भय बना रहता है कि विरोधी पक्ष के लोग किसी समय उसे अपदस्थ करने के लिये मिल सकते हैं। कुछ राज्यों, जैसे मद्रास, त्रावणकोर-कोचीन, हैदराबाद, राजस्थान और पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य-संघ में एकाधिक बार अविश्वास के प्रस्ताव रखने की नौबत आ चुकी है।

राजस्थान और त्रावणकोर-कोचीन में अविश्वास के प्रस्ताव और उनके परिणामों का मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ। पिछले दिनों (१६ दिसम्बर १६५२ को) हैदराबाद विधान सभा के मंत्रि-परिषद के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव ७४ मतों के विरुद्ध ६५ मतों से गिर गया। एक ही नहीं, तीन-तीन प्रस्ताव सरकार के विरुद्ध रखे गये और उनपर तीन दिन तक वाद-विवाद हुआ। अन्यत्र, जिन राज्यों में विरोधी दलों ने सरकार की स्थिति जरा भी कमजोर देखी, वे अविश्वास के प्रस्ताव का अमोघ अस्त्र प्रयोग में लाने से न चूके। इस प्रक्रिया के आरंभ से अन्त तक कितना धन समय और श्रम व्यय होता है इसका यदि हमारे व्यवस्थापक विचार करें और उससे जो फल प्राप्त होता है उसका लेखा-जोखा करें तो यह स्वीकार करेंगे कि अविश्वास का प्रस्ताव, जो स्वीकृत भी न हो सका, एक घाटे का सौदा है और

करदाता को अनावश्यक व्यय के भार से दबा देना है। अक्टूबर १९५२ में राजस्थान विधान सभा की बैठक केवल विरोधी पक्ष द्वारा प्रस्तुत अविश्वास के प्रस्ताव पर विचार करने के लिये बुलाई गई थी। उस सम्बन्ध में सदस्यों का मार्ग-व्यय मिला कर बाइस हजार रुपया व्यय हुआ। २३ दिसम्बर को पटियाला राज्य-संघ की बैठक बुलाने में जो रुपया खर्च हुआ वह कम नहीं था। कहां से वह सब खर्च हुआ? बिना सोचे समझे प्रस्तुत किया गया अविश्वास का प्रस्ताव न केवल अविवेकपूर्ण है वरन् एक प्रकार से अपने अधिकारों का दुरुपयोग और लोकतंत्र तथा संसदीय व्यवस्था का उपहास करना है।

विधि-निर्माण की प्रक्रिया

संसदीय प्रक्रिया के सम्बन्ध में यह लिखा जा चुका है कि साधारणतः लोगों का यह विश्वास है कि संसद का काम विधान निर्माण का है। किन्तु वस्तुतः उसके दो और काम होते हैं जिनमें एक, जिसका कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, प्रश्न या प्रस्ताव के द्वारा अथवा कार्य-स्थगन प्रस्ताव से सरकार की आलोचना करके उस पर नियंत्रण रखना है; और दूसरा वित्तीय विषयों में निर्णय करना है। इसमें सन्देह नहीं कि पहले ब्रिटिश संसद का काम केवल विधि निर्माण का होता था*। कालान्तर में उसका प्रभाव बढ़ने लगा और क्षेत्र विस्तृत होता गया।

यहां पर विधि-निर्माण की प्रक्रिया का उल्लेख किया जाता है।

विधि निर्माण के सम्बन्ध में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि कोई भी विधेयक तब तक अधिनियम नहीं हो सकता जब तक कि संसद (लोकसभा और राज्य-परिषद) द्वारा तीन बार स्वीकृत होने के पश्चात् उसपर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर न हो जायँ। विधि-निर्माण में विधेयक का सर्वाधिक महत्व होता है। मंत्री के अतिरिक्त जो सदस्य विधेयक प्रस्तुत करता है वह पहले उसकी सूचना संसदीय सचिव को देता है और उसके साथ उस विधेयक की एक प्रति, उसके कारणों तथा उद्देश्यों के पूर्ण विवरण सहित संलग्न करके प्रस्तुत करता है। यदि विधेयक इस प्रकार का है कि बिना राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के उसे प्रस्तुत नहीं किया जा सकता तो प्रस्तावक उसके साथ एक प्रमाण-पत्र संलग्न करके प्रस्तुत करता है। उसके साथ प्रमाण-पत्र दिये बिना सूचना भी वैध नहीं समझी जाती। जब तक अध्यक्ष अन्यथा प्रतिबन्ध न करे विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति के लिये प्रस्ताव की सूचना की अवधि एक मास होती है।

सरकारी विधेयक सम्बन्धित मंत्री द्वारा सदन में प्रस्तुत किये जाते हैं। उनके निर्माता सरकार के विशेषज्ञ कर्मचारी होते हैं। ब्रिटिश सचिवालय में

---

*"The chief function of Parliament is to make statutes".
—Maitland.

काम करनेवाले विधान विशेषज्ञों के सम्बन्ध में लोकसभा के अध्यक्ष के सलाहकार सर सेसिल कार का कहना है कि श्वेतप्रसाद के वे सबसे प्रमुख व्यक्ति होते हैं। वे सर्वाधिक परिश्रमी और मंजे हुए होते हैं। स्वयं राजनीति से पृथक रहते हुए भी वे राजनीतिक गतिविधियों से पूर्णतः अवगत रहते हैं। प्रत्येक विख्यात मंत्री के सम्बन्ध में, उसके गुण-दोषों को जानते हुए भी, वे उसका कभी किसी से उल्लेख नहीं करते। उनका कानून का ज्ञान बहुत व्यापक और सही होता है। उनकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है*। सरकारी विधेयक तैयार करने और उसके प्रस्तुत किये जाने की प्रक्रिया यह है कि जिस विभाग से सम्बन्धित विधेयक हो उस विभाग का मंत्री विधेयक की मोटी रूप-रेखा तैयार कर मंत्रि-परिषद् के सम्मुख रखता है। मंत्रि-परिषद् औपचारिक ढंग से उसके आधार मूल सिद्धान्तों को स्वीकार कर उसे बाकायदा कानूनी रूप देने के लिये उस विभाग के विशेषज्ञों के पास भेजता है जहां विधेयक की धारायें और उप-धारायें तैयार की जाती हैं। बहुत सतर्कता से प्रत्येक वाक्य और शब्द को रखा जाता है जिससे फिर कोई वैधानिक कठिनाई न पैदा हो। उसके पश्चात् संसद में प्रस्तुत करने से पूर्व मंत्रि-परिषद् उस पर अन्तिम स्वीकृति देता है।

विधेयक दो प्रकार के होते हैं—एक 'लोक विधेयक' (Public Bill) और दूसरा 'अ-लोक विधेयक' (Private Bill)। जिस विधेयक का सम्बन्ध सार्वजनिक हित से हो उसे लोक विधेयक कहते हैं और जिसका

*"One might fairly say of these draftsmen that they are, in fact and of necessity, the key men of Whitehall, the hardest-worked, the most severely tried. Having no politics themselves, they have to know . . . every move in the political game. They could—but you may be sure they will not—tell you the truth about many a famouse Minister, his strength and his weakness. . . . Their knowladge of law must be extensive and accurate. Their responsibility is grave."

—Sir Cecil Carr : Concerning English Administrative Law, p. 171

सम्बन्ध किसी विशेष स्थान से हो उसे अ-लोक विधेयक कहते हैं। जमींदारी विनाश करने, सिनेमाघरों में धूम्रपान पर प्रतिबन्ध लगाने निर्वाचनाधिकार में परिवर्तन करने आदि विषय लोक-विधेयक के अन्तर्गत आते हैं। किसी स्थान विशेष पर सड़क या रेल की लाईन बनाने अथवा किसी नगरपालिका या शिक्षण संस्था को कर्ज देने आदि के संबंध में जो विधेयक प्रस्तुत किया जाता है उसे अ-लोक-विधेयक कहते हैं। इसके अतिरिक्त जिस लोक -विधेयक को मंत्रि-परिषद की ओर से प्रस्तुत किया जाता है उसे सरकारी विधेयक कहते हैं। सभी धन विधेयक सरकारी होते हैं। जिस लोक-विधेयक का राजस्व से सम्बन्ध नहीं होता वह संसद् के किसी भी सदस्य द्वारा, जो मंत्रि-परिषद में नहीं है प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार के विधेयक को अ-लोक-विधेयक कहते हैं। राजस्व-विधेयक को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के विधेयक संसद् के दोनों सदनों में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। राजस्व विधेयक केवल लोकसभा में प्रस्तुत होते हैं।

यदि किसी विधेयक के प्रस्तुत किये जाने की अनुमति के प्रस्ताव का विरोध हो तो अध्यक्ष आवश्यक होने पर प्रस्तावक और उसके विरोधी को संक्षेप में अपने मन्तव्य का स्पष्टीकरण करने को कह सकता है। फिर अधिक वाद-विवाद के बिना प्रश्न रखा जाता है। किन्तु यदि विरोध इस आधार पर हो कि विधेयक के द्वारा ऐसा विधान प्रस्तुत किया जा रहा है जो संसद् के क्षेत्र से बाहर है तो अध्यक्ष उस पर पूरा वाद-विवाद करने की अनुमति दे सकता है।

प्रथम वाचन—

सूचना देने के पश्चात् निर्धारित तिथि पर विधेयक सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। उस समय बिना वाद-विवाद के ही प्रस्ताव को विचार करने के लिये स्वीकार कर लिया जाता है। इसे प्रथम वाचन कहते हैं।

विधेयक प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् यथाशीघ्र उसे प्रकाशित किया जाता है*।

---

* May : ibid, p. 352,

किसी विधेयक को प्रस्तुत करते समय, या बाद में किसी भी समय, प्रस्तावक अपने विधेयक के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्तावों में कोई एक प्रस्ताव कर सकता है :

(१) यह कि उसको सभा द्वारा या तो उसी समय विचारार्थ लिया जाय या किसी ऐसे आगामी दिन लिया जाय जो उसी समय निर्दिष्ट कर दिया गया हो ; या

(२) यह कि उसको एक प्रवर समिति को सौंप दिया जाय ; या

(३) यह कि उस पर सम्मति जानने के लिये उसे प्रसारित किया जाय।

किन्तु ऐसा कोई प्रस्ताव उस समय तक नहीं किया जा सकता जब तक कि उक्त विधेयक की प्रति सदस्यों के पास न पहुंचा दी जाय। यदि प्रस्ताव किये जाने से दो दिन पूर्व विधेयक की प्रति सदस्यों में वितरित न की गई तो कोई भी सदस्य प्रस्ताव पर आपत्ति कर सकता है और यदि अध्यक्ष प्रस्ताव को रखने की अनुमति न दे तो ऐसी आपत्ति मान्य समझी जाती है।

विधेयक का प्रथम वाचन उसे पढ़ने के बाद ही समाप्त हो जाता है। उसके बाद उसे प्रकाशनार्थ भेज दिया जाता है। किन्तु विधेयक प्रस्तुत करने वाले सदस्य को जो कि उसका संरक्षक माना जाता है, बाद की सभी कार्यवाहियों में औपचारिक ढंग से प्रस्तुत रहना होता है *।

द्वितीय वाचन—

मे के शब्दों को उद्धृत करते हुए रेडलिक लिखता है कि सबसे महत्वपूर्ण सीढ़ी जिससे होकर विधेयक गुजरता है द्वितीय वाचन है†।

---

* Redlich : ibid, Vol. III, P. 85.

† "The second reading is the most important stage through which the bill is required to pass; for its whole principle is then at issue, and is affirmed or denied by a vote of the House, though it is not regular on this occasion to discuss, in detail, its several clauses."

—May. ibid, P. 365.

उसके पश्चात विधेयक के सिद्धान्त और उसके व्यापक आदेशों पर वाद-विवाद होता है। किन्तु जितना कि उसके स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक हो उससे अधिक ब्यौरेवार वाद-विवाद नही किया जा सकता। इस स्थिति पर विधेयक में कोई संशोधन प्रस्तावित नहीं किया जाता। किन्तु यदि विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य यह प्रस्ताव करे कि उसका विधेयक विचारार्थ लिया जाय तो कोई भी सदस्य संशोधन के रूप में यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को प्रवर समिति को सौंप दिया जाय या ऐसे दिनांक तक सम्मति जानने के लिए उसे प्रसारित किया जाय जो उक्त प्रस्ताव में निर्दिष्ट हो। यदि विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य यह प्रस्ताव करे कि उसका विधेयक प्रवर समिति को सौंपा जाय, तो कोई भी सदस्य संशोधन के रूप में यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को ऐसे दिनांक तक सम्मति जानने के लिए प्रसारित किया जाय जो प्रस्ताव में निर्दिष्ट हो।

विधेयक पर मत जानने के लिए रखा गया प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के पश्चात् विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य यदि वह आगेकी कार्यवाही करना चाहे यह प्रस्ताव करता है कि उक्त बिधेयक एक प्रवर समित को सौंप दिया जाय। किन्तु यदि अध्यक्ष यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है कि बिधेयक विचारार्थ लिया जाय, तो वह प्रवर समिति को नहीं सौंपा जाता।

ऐसा प्रस्ताव, कि विधेयक विचारार्थ लिया जाय, विधेयक प्रस्तुत करने वाले सदस्य के अतिरिक्त अन्य कोई ससस्य नहीं कर सकता, और ऐसा कोई भी प्रस्ताव कि विधेयक प्रवर समिति को सौंपा जाय या उस पर सम्मति जानने के लिये उसे प्रसारित किया जाय, विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य नहीं कर सकता। किन्तु यदि प्रस्ताव विधेयक प्रस्तुत करने वाले सदस्व के प्रस्ताव के संशोधन के रूप में हो तो अन्य कोई भी सदस्य प्रस्तुत कर सकता है।

द्वितीय वाचन में विधेयक की धाराओं पर पृथक-पृथक रूप से विचार होता है, उस पर संशोवन रखा जाता है और विरोध होता है।

यदि विरोधी पक्ष सरकारी पक्ष के साथ अपनी शक्ति की परीक्षा करना चाहे तो उसके लिये द्वितीय वाचन ही उपयुक्त अवसर

है। ऐसे अवसर पर यदि सरकारी पक्ष की हार हो जाती है तो मंत्रि-परिषद को त्याग-पत्र देना पड़ता है*।

द्वितीय वाचन के पश्तात् विधेयक समिति के सिपुर्द होता है। समिति, अपनी नियुक्ति के पश्तात् समय समय पर बैठक करती है और सभा द्वारा नियत समय के भीतर वह विधेयक पर अपनी रिपोर्ट संलग्न करके प्रस्तुत करती है। समिति का कोई सदस्य यदि बहुमत से सहमत नहीं है तो असहमति का प्रथक विवरण भी संलग्न करके प्रस्तुत करता है। एक या एकाधिक सदस्य उस पर अपनी अल्पमत रिपोर्ट भी प्रस्तुत कर सकते हैं।

समिति द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत होने के पश्चात् विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य प्रस्ताव करता है कि विधेयक पर प्रवर समिति द्वारा की गई रिपोर्ट के रूप में विचार किया जाय। समिति की रिपोर्ट सहित विधयक पर विचार करने के लिये उसे सभा में प्रस्तुत करने से दो दिन पूर्व सदस्यों में वितरित किया जाता है। यदि वह सदस्यों को कम से कम दो दिन पूर्व प्राप्त न हो तो सदस्य उस पर वाद-विवाद करने पर आपत्ति उठा सकते हैं। यदि अध्यक्ष रिपोर्ट को विचारार्थ लिये जाने की अनुमति न दे तो ऐसी आपत्ति मान्य होगी। यदि विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य यह प्रस्ताव करे कि विधेयक विचारार्थ स्वीकार कर लिया जाय तो कोई भी सदस्य संशोधन के रूप में यह

*प्रसंगवश यहां पर यह बतलाना आवश्यक है कि सभी अवस्थाओं में मंत्रि-परिषद् को त्याग-पत्र देना आवश्यक नहीं समझा जाता। ११ नवम्बर १९५२ को काश्मीर विधान सभा ने अपने द्वितीय अधिवेशन में वित्त मंत्री श्री जी० एल० डोगरा के एक सरकारी विधेयक को, जिसमें उन्होंने राज्य के उप-मंत्रियों को वेतन तथा भता देने की व्यवस्था का प्रस्ताव किया था, अस्वीकार कर दिया। विधेयक में सिफारिश की गई थी कि उप-मंत्रियों को ८०० रुपये मासिक वेतन, मुफ्त कार और २०० रुपये मासिक भत्ता स्वीकार किया जाय। सभा ने विकास मंत्री श्री एस० एल० शराफ का एक दूसरा प्रस्ताव, जिसमें उन कर्मचारियों को क्षति-पूर्ति की सिफारिश की गई थी जो सरकारी नौकरियों अथवा व्यक्तिगत कारखानों में काम करते समय घायलहो जाते हैं, तत्काल लेना अस्वीकार करके उसे भविष्य के लिये स्थगित कर दिया गया।

प्रस्ताव कर सकता है कि वह विधेयक पुनः प्रवर समिति को सौंपा जाय या सम्मति जानने के लिये उसे प्रसारित या पुनः प्रसारित किया जाय।

विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर कोई भी सदस्य उस विधेयक में संशोधन का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है। सभा की अनुमति से संशोधन वापस भी लिया जा सकता है। जब तक यह प्रस्ताव कि "विधेयक विचारार्थ लिया जाय" स्वीकृत नहीं होता तब तक विधेयक 'रिपोर्ट स्टेज' से होकर गुजरा हुआ नहीं माना जाता। 'रिपोर्ट स्टेज' के पश्चात् वह तृतीय वाचन के लिये तैयार होता है।

तृतीय वाचन—

विधेयक के तृतीय वाचन को प्रायः औपचारिक ढंग से स्वीकार कर लिया जाता है। यदि आवश्यक समझा गया तो यत्र-तत्र शाब्दिक संशोधन कर लिये जाते हैं और उन्हें प्रायः बिना विरोध के स्वीकार कर लिया जाता है। किन्तु कभी-कभी विरोध भी हो जाता है। * यदि धाराओं के सम्बन्ध में कोई विशेष संशोधन किया गया तो विधेयक का पुनः समिति में जाना आवश्यक होता है। लोक सभा में तृतीय वाचन समाप्त होने के पश्चात् उसका कार्य समाप्त हो गया समझा जाता है और विधेयक राज्य-परिषद् में भेज दिया जाता है। इस संबन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि किसी भी वाचन के समय अध्यक्ष की अनुमति से विधेयक पर वाद-विवाद को स्थगित किया जा सकता है। राज्य-परिषद् में दो बार उसका वाचन होता है। धन-विधेयक को छोड़कर अन्य सब विधेयकों के लिये दोनों सदनों की सहमति होनी आवश्यक है। दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत हो जाने पर विधेयक अधिनियम बन जाता है।

---

* अगस्त १९५२ में निरोधात्मक नजरबन्दी (संशोधन) विधेयक का तीसरे वाचन में भी कड़ा विरोध किया गया। सदन में इतनी अधिक गरमागरम बहस हुई कि विरोधी दल के सदस्यों ने दो बार दलगत रूप से तथा एक बार व्यक्तिगत रूप से सभा त्याग किया। तृतीय वाचन के पश्चात् मत-दान होने पर ६१ के विरुद्ध २९६ मतों से विधेयक स्वीकृत हो गया।

धन-विधेयक—

संविधान में धन-विधेयक सम्बन्धी विशेष प्रक्रिया निम्न प्रकार से दी गई है—

"राज्य-परिषद् में धन-विधेयक पुनः स्थापित न किया जायगा।

"लोक-सभा से पारित हो जाने के पश्चात्, धन-विधेयक, राज्य-परिषद् को, उसकी सिफारिशों के लिये पहुँचाया जायगा तथा राज्य-परिषद् विधेयक की प्राप्ति की तारीख से चौदह दिन की कालावधि के भीतर, उसे अपनी सिफारिशों सहित लोक-सभा को लौटा देगी तथा ऐसा होने पर लोक-सभा राज्य-परिषद् की सिफारिशों में से सबको या किसी को स्वीकार कर सकेगी।

"यदि राज्य-परिषद् की सिफारिशों में से किसी को लोक-सभा स्वीकार कर लेती है तो धन-विधेयक राज्य-परिषद् द्वारा सिफारिश किये गये और लोक-सभा द्वारा स्वीकृत हुये संशोधनों सहित दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जायगा।

"यदि राज्य-परिषद् की सिफारिशों में से किसी को भी लोक-सभा स्वीकार नहीं करती है तो धन-विधेयक, राज्य-परिषद् द्वारा सिफारिश किये गये संशोधनों में से किसी के स्वीकृत हुये बिना भी, उसी रूप में दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जायगा जिसमें कि वह लोक-सभा द्वारा पारित किया गया था।

"यदि लोक-सभा द्वारा पारित होने पर राज्य-परिषद् को उसकी सिफारिशों के लिये पहुँचाया गया धन-विधेयक उक्त चौदह दिन की कालावधि के भीतर लोक-सभा को लौटाया नहीं जाता तो उक्त कालावधि की समाप्ति पर वह दोनों सदनों द्वारा उस रूप में पारित समझा जायगा जिसमें लोक-सभा ने उसे पारित किया था।"❀

धन-विधेयक की परिभाषा संविधान में इस प्रकार लिखी है कि—कोई विधेयक धन-विधेयक समझा जायेगा यदि उसमें निम्नलिखित विषयों में से सब अथवा किसी से सम्बन्ध रखनेवाले उपबन्ध अन्तर्विष्ट हैं, अर्थात्—

"(क) किसी कर का आरोपण, उत्सादन, परिहार, बदलना या विनियमन;

"(ख) भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने का, अथवा कोई प्रत्याभूति देने

❀ अनु० १०९

का, अथवा भारत सरकार द्वारा लिये गये अथवा लिये जाने वाले किन्हीं वित्तीय आभारों से सम्बद्ध विधि में संशोधन करने, या विनियमन;

"(ग) भारत की संचित-निधि अथवा आकस्मिकता-निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना;

"(घ) भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग;

"(ङ) किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारतीय व्यय घोषित करना अथवा ऐसे किसी व्यय की राशि को बढ़ाना;

"(च) भारत की संचित निधि के या भारत के लोक-लेखे के मध्ये धन प्राप्त करना अथवा ऐसे धन की अभिरक्षा या निकासी करना अथवा संघ या राज्य के लेखाओं का लेखा-परीक्षण; अथवा

"(छ) उपखंड [क] से [च] तक में उल्लिखित विषयों में से किसी का आनुषंगिक कोई विषय।

"(२) कोई विधेयक केवल इस कारण से धन-विधेयक न समझा जायेगा कि वह जुर्मानों या अन्य अर्थ-दण्डों के आरोपण का, अथवा अनुज्ञप्तियों के लिये फीसों की, अथवा की हुई सेवाओं के लिये फीसों की, अभियाचना का या देने का, उपबन्ध करता है, अथवा इस कारण से कि वह किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिये किसी कर के आरोपण, उत्सादन, परिहार, बदलने या विनियमन का उपबन्ध करता है।

"(३) यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन-विधेयक है या नहीं तो उस पर लोक-सभा के अध्यक्ष का विनिश्चय अन्तिम होगा।

"(४) अनुच्छेद १०९ के अधीन जब धन-विधेयक राज्य-परिषद् को भेजा जाता है तथा जब वह अनुच्छेद १११ के अधीन अनुमति के लिये राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित किया जाता है तब प्रत्येक धन-विधेयक पर लोक-सभा के अध्यक्ष के हस्ताक्षर सहित यह प्रमाण अंकित रहेगा कि वह धन-विधेयक है।"*

अ-लोक-विधेयक—

अ-लोक-विधेयक को गैर सरकारी बिल भी कहा जाता है। लोक-विधेयकों के लिये तिथि निश्चित रहती है। किन्तु चूँकि प्रायः लोक-विधेयकों में

* अनु० ११०

इतना अधिक समय व्यय हो जाता है कि जो समय अ-लोक विधेयकों के लिये निश्चित होता है वह भी लोक-विधेयकों के लिये ले लिया जाता है और अ-लोक विधेयकों के लिये समय निकालना कठिन हो जाता है, इसलिये उनमें लगभग सभी बिना प्रस्तुत हुए ही समाप्त हो जाते हैं। भाग्य-पत्रक (Lot) के द्वारा दर्जनों विधेयकों में से दो-चार चुने जाते हैं। उनमें भी मुश्किल से एक-दो विधेयक किसी अधिवेशन में पास हो पाते हैं। भाग्य-पत्र के अनुसार सूचना-पत्र पर जिस विधेयक को प्रथम स्थान प्राप्त होता है उसका प्रस्तावक निश्चित तिथि पर सदन में उसे पढ़ता है। इसे प्रथम वाचन कहते हैं। तब द्वितीय वाचन के लिये भी तिथि निश्चित होती है। द्वितीय वाचन के पश्चात् विधेयक किसी स्थायी समिति को भेज दिया जाता है।

इस सम्बन्ध में जिन्हें किसी विशेष अधिकार की आवश्यकता होती है सदन के नाम सम्बोधित करके एक प्रार्थना-पत्र सचिव के पास प्रस्तुत करते हैं जिसके साथ उसका प्रारूप भी संलग्न होता है। उसके सम्बन्ध में पहले एक सार्वजनिक सूचना भी प्रेषित की जाती है ताकि जो भी उस विधेयक से प्रभावित होते हों वे पूर्णतः अवगत हो जायँ।

अध्यक्ष अ-लोक विधेयक पर विचार करनेके लिये पांच व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त करता है। समिति के सदस्यों में से एक व्यक्ति उसका सभापति होता है। यदि उपाध्यक्ष भी समिति का एक सदस्य है तो वही उसका सभापति होता है। उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में समिति अपने में से किसी अन्य को सभापति चुनती है। यदि वह कार्य कर सकने में असमर्थ है तो अध्यक्ष उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को सभापति नियुक्त करता है। समिति निश्चित समय में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है जिसमें इस बात का विवरण रहता है कि वह नियमानुकूल है या नहीं तथा उसे प्रसारित करने का निर्देश दिया गया है या नहीं। समिति की रिपोर्ट प्रायः स्वीकृत हो जाती है, यद्यपि सभा को उसे अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार होता है।

ब्रिटिश संसद में अ-लोक विधेयक प्रस्तुत करने की परम्परा अब धीरे-धीरे समाप्त हो रही है।

गिलोटिन—

ऐसी स्थिति में, जब कि एक ओर सरकारी विधेयक, जो सार्वजनिक महत्व का होता है शीघ्रातिशीघ्र स्वीकृत कराना आवश्यक हो और दूसरी ओर विरोधी पक्ष द्वारा उसमें बिलम्ब किया जा रहा हो, तब अध्यक्ष को अपने विशेषाधिकारों के द्वारा बिना वाद-विवाद के उसे पारित कराना होता है। ऐसे अवसर पर जिस शस्त्र का वह प्रयोग करता है उसे 'गिलोटिन' कहते हैं। गिलोटिन शब्द का मूल सम्बन्ध फ्रान्सीसी राज्य-क्रान्ति से है। देश-द्रोहियों का सर धड़ से अलग करके प्राणदण्ड देने की एक विशेष विधि को गिलोटिन कहते थे। फांसी पाने वाला अपनी गर्दन को लोहे की छड़ पर रखता था और ऊपर से एक भारी अर्ध-चन्द्राकार कटार धीरे-धीरे नीचे आकर उसके गले को धड़ से अलग कर देती थी। कालान्तर में इस शब्द का प्रयोग भाव रूप में भी किया जाने लगा। संसदीय भाषा में इसका अर्थ यह है कि अनावश्यक लम्बी बहस को कम करने के लिए अध्यक्ष उस विषय के पक्ष और विपक्ष मे मतगणना करा कर उसकी भाग्य का निर्णय कर देता है।

संसदीय प्रक्रिया में गिलोटिन का व्यवहार पिछली शताब्दि के उत्तरार्ध में ब्रिटिश लोक सभा में पहले-पहल किया गया जब कि आयरिश दल की गतिरोधक नीति के फलस्वरूप सभा की कार्यवाही अनावश्यक रूप से लम्बी होती जाती थी और उसे रोकने के लिये कुछ उपाय आवश्यक था। गिलोटिन का प्रयोग करने से पूर्व सन् १८८१ में सभा की कार्यवाही स्थगित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत करने को परम्परा स्थापित की गई, जिसके अनुसार कोई भी सदस्य प्रस्ताव करके सभा की स्वीकृति से सदन की कार्यवाही बन्द करा सकता था। किन्तु थोड़े ही समय के पश्चात् गिलोटिन का प्रयोग करना भी आवश्यक हो गया।* गिलोटिन का प्रयोग यद्यपि कुछ लेखकों के मतानुसार तानाशाही है,

---

*"The new rule, called for shortness the urgency rule, reads as follows :—

"that if upon notice given a motion be made by a minister of the Crown that the state of public business is urgent, upon which motion

तथापि ऐसे अवसर पर जब कि आवश्यक विधेयक को शीघ्रताशीघ्र पास कराना आवश्यक होता है, इस शस्त्र का प्रयोग अनुचित नहीं समझा जा सकता। गिलोटिन के द्वारा, चाहे विधेयक पर तनिक भी वाद-विवाद न हुआ हो * मतगणना कराकर सदन द्वारा उसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली जाती है।

---

such minister shall declare in his place that any bill, motion or other question then before the House is urgent, and that it is of importance to the public interest that the same should be proceeded without delay, the Speaker shall forthwith put the question, no debate, amendment, or, adjournment being allowed. . . . ."

—Redlich : ibid, Vol. I, p. 164

* उत्तर प्रदेश विधान-परिषद में माल मंत्री श्री चरण सिंह द्वारा प्रस्तुत उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि रक्षा सम्बन्धी अधिनियम नियत समय पर पारित न होने के कारण २४ सितम्बर १९५२ को सभापति श्री चन्द्रभाल ने 'गिलोटिन' का प्रयोग करके बिना वाद-विवाद के मत लेकर उसे पारित करा दिया।

वित्तीय प्रक्रिया

ब्रिटिश संसद् को 'जननी-संसद्' कहा जाता है। जिसकी संसदीय प्रक्रिया को भारत ने ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। निस्सन्देह वित्तीय प्रक्रिया उसका एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण अंग है। वित्तीय प्रक्रिया जितनी महत्वपूर्ण है उतना ही यह देखा गया है कि अधिकांश सभासद न तो इसकी जानकारी रखते हैं और न उन्हें इसमें कोई दिलचस्पी होती है। किसी भी आय-व्ययक या अनुदान पर 'हां' या 'नहीं' कहने के अतिरिक्त उन्हें उसकी प्रक्रिया संबन्धी बातों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता, यद्यपि सभा की अधिकांश कार्यवाही, जिसमें वे भाग लेते हैं, वित्तीय प्रक्रिया से सम्बन्धित होती है। आय-व्ययक पर नियंत्रण लोक-सभा के अधिकार-क्षेत्र की चीज है। ब्रिटेन में शताब्दियों के संघर्ष के फलस्वरूप लोक सभा को यह अधिकार प्राप्त हो सका*।

आधुनिक शब्द वित्त विधेयक (Finance Bill) का प्रथम प्रयोग ब्रिटेन में १८९४ से हुआ। उससे पूर्व उस वार्षिक वित्त को, जिसमें वर्ष के तमाम करों और राजस्व सम्बन्धी आय-व्ययक का उल्लेख होता था 'कस्टम्स ऐण्ड ईनलैन्ड रेवेन्यू बिल' (Customs and Inland Revenue Bill) कहते थे, उसी वर्ष से उसे वित्त विधेयक कहने लगे। इस विधेयक का एक महत्व और है कि 'इससे पूर्व राष्ट्रीय ऋण के, जो एक पृथक विषय होता था, घटाने के उपायों को भी सरकार अपने वार्षिक वित्त विधेयक में सम्मिलित करने लगी†। तब से ब्रिटिश लोक-सभा ने अर्थ-सम्बन्धी समस्त

* "At length, when the commons had increased in political influence, and the subsidies voted by them had become the principal source of national revenue, they gradually assumed their present position in regard to taxation and supply, and included the Lords as well as themselves in their grants."

—May : ibid, p. 470.

† Redlich : ibid, Vol. III p 118

अधिकारों का अपने हाथ में ले लिया। उसे अब अधिकार प्राप्त है कि वह निर्णय करे राष्ट्रीय आय किस प्रकार बढ़ाई जाय और उसे विभिन्न मदों पर किस प्रकार व्यय किया जाय❀।

हमारे संविधान में लिखा है :—

"(१) प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे में संसद के दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति भारत सरकार की उस वर्ष के लिये प्राक्कलित प्राप्तियों और व्यय का विवरण रखवायेगा जिसे इस संविधान के इस भाग में 'वार्षिक वित्त-विवरण' नाम से निर्दिष्ट किया गया है।

"(२) वार्षिक वित्त विवरण में दिये हुए व्यय की प्राक्कलनों में—

(क) जो व्यय इस संविधान में भारत की संचित निधि पर पारित व्यय के रूप में वर्णित है उसकी पूर्ति के लिये अपेक्षित राशियां; तथा

(ख) भारत की संचित निधि से किये जाने वाले अन्य प्रस्थापित व्यय की पूर्ति के लिये अपेक्षित राशियां पृथक दिखाई जायंगी तथा राजस्व-लेखे पर होने वाले व्यय का अन्य व्यय से भेद किया जायगा।

"३—निम्न व्यय भारत की संचित निधि पर पारित व्यय होगा—

(क)—राष्ट्रपति की उपलब्धियां और भत्ते तथा उसके पद से सम्बद्ध अन्य व्यय ;

(ख) राज्य-परिषद् के सभापति और उप-सभापति तथा लोक-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते;

(ग) ऐसे ऋण-भार जिनका दायित्व भारत सरकार पर है, जिनके अन्तर्गत ब्याज, निक्षेप-निधि-भार और मोचन-भार तथा उधार लेने और ऋण-सेवा और ऋण-मोचन सम्बन्धी अन्य व्यय भी हैं,

(घ) १ उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को, या उनके बारे में दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति-वेतन;

(२) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को, या उनके बारे में, दिये जाने वाले निवृत्ति-वेतन;

❀ "Both income and expenditure are therefore completely and exclusively in the hands of the House of Commons."

—Redlich, ibid, p. 120.

३—जो उच्च न्यायालय भारत राज्य-क्षेत्र में के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है अथवा जो प्रथम अनुसूची के भाग (क) में उल्लिखित राज्य के तत्साथी प्रान्त के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में इस संविधान के प्रारंभ से पूर्व किसी भी समय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता था उसके न्यायाधीशों को, या उनके बारे में दिये जाने वाले निवृत्ति-वेतन ;

ङ—भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के, या उनके बारे में, दिये जाने वाले वेतन, भत्ते तथा निवृत्ति-वतन ;

च—किसी न्यायालय या मध्यस्थ न्यायाधिकरण के निर्णय, आज्ञाप्ति या पंचाट के भुगतान के लिये अपेक्षित कोई राशियां;

छ—इस संविधान द्वारा, अथवा संसद् से विधि द्वारा, इस प्रकार पारित घोषित किया गया कोई अन्य व्यय।" ❀

इस वार्षिक वित्त विवरण में सभी मदों का समावेश किया गया है। इसके साथ-साथ संविधान में यह भी उपबन्ध किया गया है कि ऐसा विधेयक "राज्य-परिषद में पुनः स्थापित न किया जायगा।"†

रेडलिक के कथनानुसार संसदीय वित्त के समूचे इतिहास की यह मुख्य विशेषता है कि वित्तीय मदें, जो पहले स्थायी होता थीं, प्रति वर्ष संसद द्वारा स्वीकृत कराई जाने लगीं।‡ मंत्रि-परिषद की ओर से वित्त मंत्री प्रत्येक वर्ष आय-व्ययक का "अनुमान" संसद् के सम्मुख रखता है। "अनुमान" से यह तात्पर्य होता है कि आगामी वर्ष के लिये जितने वित्त की आवश्यकता होती है वित्त मंत्री उसके अनुमान की एक रूप-रेखा सदन के सम्मुख प्रस्तुत करता है। वह सचिवालय में तैयार होती है। प्रत्येक मंत्रालय एक पत्रक पर अपने अनुमानित व्यय का कुल हिसाब देता है। उसके पश्चात् विभिन्न विभाग के

❀ अनु० ११२

† अनु० ११७

‡ "The chief feature in the whole history of parliamentary finance has been the gradual trenching of the annual element upon the permanent......"

Redlich : ibid, p. 161

सचिवों की संयुक्त बैठक होती है और वे मिलजुल कर मत-भेदों का, यदि कोई हों तो, निराकरण करते हैं। वित्त सचिव का यह कर्तव्य है कि वह सब विभागों द्वारा दिये गये वर्ष के अनुमान को आय के अनुकूल निश्चित करे। वह यह भी निश्चय करता है कि कौन-सा नया कर लगाना वांछनीय है और पहले से चला आ रहा कौन सा कर हटाना चाहिये। उसके पश्चात् मंत्रि-परिषद् योजना पर विचार करता है। मंत्रि-परिषद् की ओर से वित्त-विधेयक को लोक-सभा के सम्मुख वित्त मंत्री ही प्रस्तुत करता है।

जिस दिन आय-व्ययक सदन में प्रस्तुत किया जाता है उसी दिन पहले से उसकी दो-दो प्रतियां सब सदस्यों को उनकी मेज पर रख दी जाती हैं। आय-व्ययक प्रस्तुत कर वित्त मंत्री उस पर संक्षिप्त भाषण करता है। उस दिन और कोई कार्यवाही नहीं होती।

प्रत्येक मंत्रालय के लिये प्रस्तावित अनुदान को सम्बन्धित मंत्री प्रस्तुत करता है। किन्तु कुछ मंत्रालयों के लिये संयुक्त मांग रखी जाती है। ऐसे व्यय के सम्बन्ध में, जिसका विशेष विभागों के अधीन सुविधापूर्वक वर्गीकरण नहीं हो सकता संयुक्त मांग की जाती है। सम्बन्धित मंत्री अपने मंत्रालय के प्रत्येक अनुदान को मदों में विभक्त करके ब्योरेवार उनका विवरण देता है।

उसके पश्चात् अध्यक्ष सदन के नेता की सम्मति से आय-व्ययक पर व्यापक वाद-विवाद की तिथि निश्चित करता है। एक या एकाधिक दिन तक उस पर वाद-विवाद होता है जिसमें सभी दलों और विचारों के सदस्य समूचे आय-व्ययक पर अपने विचार प्रकट करते हैं। वाद-विवाद की समाप्ति पर वित्त मंत्री उसका उत्तर देता है। समयाभाव के कारण अथवा वाद-विवाद में अवाञ्छनीय रूप से व्यय होनेवाले समय को रोकने के लिये अध्यक्ष वाद-विवाद के लिये समय निश्चित करता है।

सदन के नेता से परामर्श करके अध्यक्ष अनुदानों की मांगों पर वाद-विवाद तथा मत-दान के लिये उतना ही समय देता है जितना कि सार्वजनिक हित की दृष्टि से आवश्यक हो। इन नियत दिनों में किसी भी

दिन अध्यक्ष की अनुमति के बिना कोई भी अन्य कार्य सायंकाल ५ बजे से पूर्व नहीं लिया जाता। प्रश्नोत्तर-काल का एक घंटा इससे पृथक होता है। नियत किये गये दिनों में से अन्तिम दिन सायंकाल ५ बजे अध्यक्ष अनुदान की मांगों से सम्बन्धित समस्त शेष मामलों के निराकरण के लिये पृथक-पृथक रूप से प्रश्न रखता है। उस पर न तो कोई विलम्बकारी प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है, न किसी अन्य प्रकार की बाधा ही उपस्थित की जा सकती है। ऐसे अवसर पर कोई कटौती का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति भी नहीं दी जाती है। जब एक ही मांग से सम्बन्धित अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत होते हैं तब उन पर उसी क्रम से वाद-विवाद होता है जिस क्रम से वे शीर्षक, जिनसे वे सम्बन्धित हैं, आय-व्ययक में प्रस्तुत किये होते हैं।

आय-व्ययक निश्चित रूप से दो या उससे अधिक भागों में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक भाग पर इस प्रकार विचार किया जाता है जैसे समूचे आय-व्ययक पर होता है।

सरकारी पक्ष और विरोधी पक्ष में इस स्थिति पर खूब वाद-विवाद और तू-तू मैं-मैं होती है। विरोधी पक्ष के लिये अपनी शक्ति की परीक्षा करने का बड़ा उत्तम अवसर होता है। अनुदान पर मत-दान कराने के अतिरिक्त वे प्रायः कटौती का प्रस्ताव भी प्रस्तुत कर देते हैं। यह कटौती सरकार के साथ शक्ति परीक्षा करने के अतिरिक्त सरकार के प्रति अविश्वास के प्रस्ताव का भी सूचक होता है। कटौती का प्रस्ताव सरकारी मदों में कटौती की मांग करने से भी हो सकता है और सम्बन्धित मंत्री के वेतन में कटौती करके भी।*

* ३० जून १९५२ को मजदूर दल ने ब्रिटिश लोक सभा में खाद्य-मंत्री मेजर लायड जार्ज के वेतन में पांच पौंड कटौती का प्रस्ताव रखा जो २७ मतों की कमी से रह गया। (अनुदार दल को ३०१ और मजदूर दल को २७४ मत प्राप्त हुए।)

उसका स्वीकृत हो जाने का अर्थ मंत्रि-परिषद का त्याग-पत्र देना होता है। *

अनुदान में कटौती का प्रस्ताव रखने के लिये जिस दिन उस पर विचार हो उससे से कम से कम एक दिन पूर्व सूचना देनी आवश्यक है। एक दिन पूर्व सूचना दिये बिना कोई भी सदस्य ऐसे प्रस्ताव के प्रस्तुत किये जाने पर आपत्ति उठा सकता है। किन्तु विशेष स्थिति में अध्यक्ष की अनुमति से बिना एक दिन पूर्व सूचना दिये भी इस प्रकार का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है।

लेखानुदान—

लेखानुदान के प्रस्ताव में सम्पूर्ण अपेक्षित धन-राशि का वर्णन किया जाता है और उस प्रस्ताव के साथ संलग्न परिशिष्ट में मन्त्रालय के प्रत्येक विभाग के लिये आवश्यक विभिन्न राशियों का, या ऐसे व्यय की मदों का, जिससे वह धन-राशि बनती है, वर्णन होता है। वित्तीय वर्ष का भी, जिसमें वह धन व्यय करना आवश्यक होता है, उसमें उल्लेख रहता। † कोई सदस्य चाहे तो समूचे अनुदान में की गई मांग अथवा उसके किसी भाग पर संशोधन प्रस्तुत कर सकता है। प्रस्ताव पर व्यापक रूप से वाद-विवाद होता है। किन्तु अनुदान के ब्यौरे पर उससे अधिक वाद-विवाद नहीं हो सकता जो सामान्य बातों का उल्लेख करने के लिये आवश्यक हो। अन्य विषयों में लेखानुदान का भी उसी प्रकार व्यवहार होता है जिस प्रकार अनुदान का मूल रूप से होता है।

---

*१७ जुलाई १९५२ को लेखा शीर्षक असाधारण व्यय पर उत्तर-प्रदेश विधान सभा में श्री गेंदा सिंह (समाजवादी) का एक रुपये का कटौती का प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

† "......As every grant of supply is limited to the service of the financial year for which it is made, the grant lapses, if it has not been utilized before the 31st March ; and, under the provisions of the Exchequer and Audit Departments Act, 1866, all unexpended sums in the hands of the departments are surrendered to the exchequer."

—May : ibid, pp. 448-49.

पूरक,† अपर, अतिरिक्त तथा अपवाद अनुदान और प्रत्यानुदान आवश्यक परिवर्तन के साथ, जैसा कि अध्यक्ष स्वीकार करे, उसी प्रक्रिया के द्वारा नियमित किये जा सकते हैं जिस प्रक्रिया के द्वारा अनुदानों की सामान्य मांगें नियमित होती हैं।

विनियोग विधेयक—

संविधान के नियमों के अनुसार विनियोग विधेयक के सम्बन्ध में वही प्रक्रिया होती है जो साधारणत: अन्य विधेयकों के लिये निश्चित होता है‡। विनियोग विधेयक के सदन में प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् सभा द्वारा उक्त विधेयक की स्वीकृति के लिये एक दिन, या आवश्यक हो तो, एक से अधिक दिन संयुक्त रूप से या पृथक-पृथक रूप से निश्चित किया जाता है। अध्यक्ष उसके अन्तिम दिन शाम को पांच बजे मे बचे हुए विषयों को निपटाने के लिये उनके महत्वों के अनुसार अन्य प्रश्नों को प्रस्तुत करता है। और उन पर

---

† हमारे यहां पूरक अनुदान प्रस्तुत करने की परम्परा ही चल पड़ी है। ब्रिटेन में पूरक अनुदान हर साल नहीं प्रस्तुत किया जाता। इस सम्बन्ध में विहार सरकार द्वारा स्थापित जांच समिति की रिपोर्ट, जो १२ अप्रैल १९५१ को अर्थमन्त्री डा० अनुग्रह नारायण सिंह के सभापतित्व में संघटित की गई थी विचारणीय है। उक्त समिति ने जून १९५२ में अपनी ८७ पृष्ठ की लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ पूरक अनुदान के सम्बन्ध में यह सुझाव दिया है कि इसे विशेष अवस्थाओं में ही प्रस्तुत किया जाना जाहिये। हर साल पूरक अनुदान प्रस्तुत करने की प्रथा का कारण समिति ने यह बतलाया है कि वित्त मौलिक रूप से तैयार नहीं किया जाता वरन् उसे एक संग्रह का स्वरूप दे दिया जाता है। यदि वित्त को मौलिक रूप से तैयार किया जाय तो पूरक अनुदान की आवश्यकता न रहेगी।

‡ "The passing of the Appropriation Bill takes place ordinarily, but not necessasily, on the day appointed for the prorogation of Parliament."

—May : ibid, p. 501

भाषणों के लिये समय की सीमायें भी निश्चित कर सकता है। ये नियम धन-विधेयक के द्वारा भी लागू हो सकते हैं। धन-विधेयक का उल्लेख विधि निर्माण की प्रक्रिया में किया जा चुका है।

नये करों को धन-विधेयक के अनुसार लागू किया जाता है। लोकसभा में इन विधेयकों के पारित हो जाने के पश्चात् अन्य विधेयकों की तरह इन्हें भी राज्य-परिषद में भेज दिया जाता है। किन्तु वित्त विधेयक पर राज्य-परिषद का नियन्त्रण नहीं होता। राज्य-परिषद में वित्त-विधेयक को भेजने की कारवाई केवल औपचारिक है। हां राज्य-परिषद अपनी कुछ सिफारिशें पूर्ण विधेयक पर (उसके अशों पर नहीं) कर सकता है, जो केवल सुझाव का महत्व रखती हैं। इन अधिनियमों के द्वारा करों के लगाने तथा सरकारी विभागों के व्यय—दोनों कार्य के लिये—अधिकार प्राप्त होता है।

प्राक्कलन समिति—

लोकसभा का प्रथम अधिवेशन प्रारम्भ होने के शीघ्र बाद ही राष्ट्रीय हिसाब की जांच-पड़ताल आदि के सम्बन्ध में एक समिति का निर्माण होता है। समिति उन हिसाबों की जांच करती है जिनमें शासन का व्यय चलाने के लिये सभा द्वारा स्वीकृत धन-राशियों का विनियोग बतलाया गया हो तथा अन्य ऐसे हिसाबों की जांच भी, जिन्हें वह उचित समझे, कर सकती है। इस समिति में अधिक से अधिक पन्द्रह सदस्य हो सकते हैं। उनका चुनाव संसद द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। इसकी गणपूर्ति के लिए चार की संख्या निश्चित होती है। समिति के सदस्यों में से एक को अध्यक्ष उसका सभापति नियुक्त करता है। सभापति द्वारा कार्य न कर सकने की स्थिति में अध्यक्ष उसके स्थान पर अन्य व्यक्ति को सभापति नियुक्त करता है। समिति की किसी बैठक में यदि सभापति अनुपस्थित रहता है तो समिति अपने में से एक व्यक्ति को उस बैठक के लिए सभापति चुनती है। समिति के सदस्यों में बराबर मत होने की स्थिति में सभापति का दूसरा मत निर्णायक होता है।

भारत सरकार के विनियोग हिसाब और उन पर नियंत्रक महालेखा-परीक्षक की रिपोर्ट की जांच पड़ताल करते समय प्राक्कलन समिति इस बात की परीक्षा करती है कि क्या प्रत्येक वर्ष के संसदीय अनुदान और पूरक अनुदान, जिसकी संसद् द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है, ठीक तरह से व्यय हुआ है या नहीं।*

---

* "The function of this committee is to ascertain that the parliamentary grants for each financial year, including supplementary grants, have been applied to the objects which Parliament prescribed."

—May : ibid, p. 503.

विशेषाधिकार *

व्यवस्थापिका सभा के सदस्य के कुछ विशेष अधिकार होते हैं जो कि जन-साधारण के अधिकारों से भिन्न होते हैं। संविधान में इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

"(१) इस संविधान के उपबन्धों के तथा संसद् की प्रक्रिया के विनियात्मक नियमों और स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुए संसद् में वाक-स्वातन्त्र्य होगा।

"(२) संसद् या उसकी किसी समितियों में कही हुई किसी बात अथवा दिये हुए किसी मत के विषय में संसद् के किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही न चल सकेगी और न किसी व्यक्ति के विरुद्ध, संसद् के किसी सदन के प्राधिकार के द्वारा या अधीन किसी प्रतिवेदन, पत्र, मतों या कार्यवाहियों के प्रकाशन के विषय में इस प्रकार की कोई कार्यवाही चल सकेगी।

"(३) अन्य बातों में संसद् के प्रत्येक सदन की तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी, जैसी संसद् समय समय पर विधि द्वारा परिभाषित करे तथा जब तक इस प्रकार परिभाषित नहीं की जातीं, तब तक वे ही होंगी जो इस संविधान के प्रारम्भ में इंग्लिस्तान की पार्लियामेंट के हाउस आफ कामन्स की तथा उसके सदस्यों और समितियों की हैं।

"(४) जिन व्यक्तियों को इस संविधान के आधार पर संसद् के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति में लाने का, अथवा अन्य प्रकार से उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार है, उनके सम्बन्ध में खंड (१), (२) और (३) के उपबन्ध उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार वे संसद् के सदस्यों के सम्बन्ध में लागू हैं†।"

---

* May, Parliamentary Practice, PP. 63-138.

†अनु १०५।

विशेषाधिकारों की जो व्याख्या टी॰ अर्स्काइन मे ने की है उसी के अनुरूप भारतीय संविधान में उसका वर्णन किया गया है। * अपने विशेषाधिकारों की रक्षा करने तथा उनको पालन कराने की संसद् को पर्याप्त स्वतन्त्रता होती है। कुछ विषयों में उसके आदेशों का पालन संसद् के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को भी करना होता है। कुछ अवस्थाओं को छोड़कर सामान्यरूप से संसद् के किसी भी आदेश के विरुद्ध न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती। संसद् के सदस्यों को जो विशेषाधिकार प्राप्त हैं उसका यह अर्थ नहीं कि उनके ऊपर कानून का कोई प्रतिबंध नहीं। कानून भंग करने के अपराध में उन्हें भी कड़े से कड़ा दण्ड दिया जा सकता है। ऐसे दर्जनों उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे पता चलता है कि व्यवस्थापक गण शांति भग करने से लेकर चोरी और डकैती तक के अपराधों में बन्दी बनाये जा चुके हैं।

१२ जुलाई १९५२ को लोकसभा के अध्यक्ष श्री मावलंकर ने कहा:—

"जो भारतीय संघ में रहता है वह, जहांतक अधिकारों का सम्बन्ध है वहां तक सदन के क्षेत्र से बाहर नहीं है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह ऊँचा हो या नीचा, चाहे वह सभा में हो या बाहर, इस प्रकार का काम नहीं कर सकता और न ऐसी बात कह सकता है जिससे सदन के या उसके सदस्य के अधिकारों में हस्तक्षेप होता हो या उनकी प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचती हो।"

४ जुलाई १९५२ को मद्रास विधान सभा में एक सदस्य ने मद्रास के एक तामिल दैनिक पत्र पर यह आरोप लगाया कि उसने उक्त सदस्य के भाषण

---

*"Each house, as a constituent part of Parliament, exercises its own Privileges independently of the other. They are enjoyed, however, not by any separate right peculiar to each, but solely by virtue of the law and custom of Parliament. There are rights or powers peculiar to each, . . . but all privileges, properly so called, appertain equally to both houses. These are declared and expounded by each house; and breaches of privilege are adjudged and censured by each: but still it is the law of Parliament that is thus administered."

—May: ibid, p. 65

के साथ ऐसी बातें भी जोड़ दीं जो उक्त सदस्य ने नहीं कही थी। इसपर अध्यक्ष ने व्यवस्था देते हुए समाचार पत्रों के सम्पादकों को चेतावनी दी कि वे सभा की कार्यवाहियों को गलत ढंग से प्रकाशित न करें क्यों कि इसका अर्थ सभा का अपमान है। इसी प्रकार की क्षमा-याचना दिल्ली से प्रकाशित होने वाले एक अंग्रेजी दैनिक पत्र ने १२ दिसम्बर १९५२ को की। उक्त पत्र ने लोक सभा में प्रस्तुत किये जाने वाले एक कार्य-स्थगन प्रस्ताव को (जो फ्रैंकफर्ट से प्रकाशित होने वाले जर्मन भाषा के एक समाचार-पत्र में प्रकाशित इस समाचार के अनुसार प्रस्तुत किया गया था कि रानी एलिजावेथ के राज्याभिषेक के अवसर पर नेहरू जी रानी के प्रति निष्ठा की शपथ ग्रहण करेंगे) पहले ही प्रकाशित कर दिया था। क्षमा याचना करते हुए उक्त पत्र ने लोक सभा के अध्यक्ष को एक पत्र में लिखा कि ऐसे विषयों के प्रकाशन के सम्बन्ध में परम्परा का ज्ञान न होने के कारण अनजान में ही वह समाचार प्रकाशित हुआ है।

पाकिस्तान लोकसभा ने भी २० नवम्बर १९५२ को आजाद पाकिस्तान दल के सदस्य सरदार शौकत हयात खां द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव पर पाकिस्तान के मुख्य पत्र 'डॉन' के विरुद्ध जांच करने के लिए पांच व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त की। प्रस्ताव में यह लिखते हुए कि

> **"१६ नवम्बर १९५२ के 'डॉन' की सम्पादकीय टिप्पणी में पत्र ने विशेषाधिकारों का दुरुपयोग किया है"**

श्री खां ने कहा कि १५ नवम्बर के अंक में उक्त पत्र ने सभा की कार्यवाही को विकृत रूप से प्रकाशित किया और गलत बयानी की है। इस पर समिति की जांच हो रही है।

३ जुलाई १९५२ को राज्य-परिषद् के सदस्य श्री पी० सुन्दरैया द्वारा मोगा में दिये गये भाषण से उत्पन्न अधिकार भंग के प्रश्न पर १२ जुलाई को लोकसभा में वाद-विवाद हुआ। श्री सुन्दरैय्या ने एक सार्वजनिक सभामें भाषण देते हुए डा० सत्यनारायण सिंह द्वारा साम्यवादियों के कार्यों पर लोकसभा में प्रस्तुत किये गये कागजों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में

विशेषाधिकार समिति की कार्यवाही का उल्लेख किया । विशेषाधिकार समिति ने सुन्दरैय्या कांड के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसमें कहा गया कि यह वांछनीय है कि कोई भी व्यक्ति जिसमें सदस्य और प्रेस भी शामिल हैं बिना जांच पड़ताल किये उन मामलों के बारे में कोई वक्तव्य अथवा टीका न प्रसारित करें जिन पर संसद् की कोई समिति विचार कर रही हो ।

दिल्ली में सिकन्दर-राज शर्मा के अन्तर्जातीय विवाह के प्रयत्न के सिलसिले में हुए दंगों के फलस्वरूप लोकसभा के सदस्य श्री वी० जी० देशपांडे भी गिरफ्तार किये गये थे । उनकी गिरफ्तारी का प्रश्न अध्यक्ष के सम्मुख प्रस्तुत किया गया और अध्यक्ष ने एक समिति को इसकी जांच पड़ताल का काम सौंप दिया । समिति के चार सदस्यों को छोड़कर बहुसख्यक सदस्यों ने यह निर्णय किया कि श्री देशपांडे की गिरफ्तारी से भवन के विशेषाधिकार भंग नहीं होते । ९ जुलाई १९५२ को समिति के अध्यक्ष डा० कैलाशनाथ काटजू ने अपनी रिपोर्ट सदन के समक्ष प्रस्तुत की । असहमत होने वाले सदस्यों (डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी, श्री मती सुचेता कृपलानी, श्री सारङ्गधर दास और श्री ए० के० गोपालन) ने यह मत व्यक्त किया कि श्री देशपांडे की गिरफ्तारी से भवन के विशेषाधिकार भंग हुए हैं ।

१७ जून १९५२ को लोक सभा में साम्यवादी दल के नेता श्री ए० के० गोपालन ने अध्यक्ष श्री मावलकर के नाम लिखे एक पत्र में डा० सत्य-नारायण सिन्हा के ऊपर यह आरोप लगाया कि उन्होंने लोक सभा के सामने झूठे, मनगढंत तथा जाली कागज प्रस्तुत किये थे। इसकी जांच पड़ताल का कार्य २३ जून को विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया । १२ दिसम्बर १९५२ को समिति ने निम्न रिपोर्ट प्रस्तुत की—जाँच करना था कि क्या :

(१) ग्यारह जून को डा० सत्यनारायण सिन्हा ने लोक सभा में जो भाषण दिया था वह साम्यवादी सदस्या श्रीमती रेणु चक्रवर्ती का मान घटाने वाला था और इस प्रकार जनता की नजरों में इस सभा का मान घटाने वाला था—और क्या

(२) बारह जून को श्री सिन्हा ने जो कागज-पत्र सभा में पेश किए वे झूठे, मनगढ़न्त और जाली थे।

समिति ने अपने निर्णय में कहा कि इन दोनों बातों के सम्बन्ध में विशेषाधिकार का कोई वास्ता ही नहीं है।

यह घटना जिसे सिन्हा कांड कहा जाता है, इस प्रकार हुई थी कि प्रतिरक्षा मन्त्री की मांगों पर हो रही बहस में श्री सिन्हा ने श्रीमती रेणु चक्रवर्ती के भाषण का जिक्र करते हुए कहा कि उन्होंने जो भाषण दिया वह शब्दशः यों कहिए कि उसकी मूलधारा—एक रूसी लेखक—ले मिन के उस लेख से मिलती है जो उसने फरवरी में लिखा था।

इसी दिन बाद में श्री सिन्हा ने एक रूसी नक्शे का जिक्र किया जिसमें काश्मीर को ब्रिटिश क्षेत्र दिखाया गया था। उपाध्यक्ष ने इस पर कहा कि यदि कोई सदस्य किसी दस्तावेज का हवाला देता है अथवा उसके एक अंश को उद्धृत करता है उसे वह दस्तावेज सभा में उपस्थित करना चाहिए।

अगले दिन बारह जून को डा० सिन्हा ने वे कागज पत्र पेश किए जिनके आधार पर उन्होंने ये बातें कहीं थीं। ये कागज थे : रूस और नाजी जर्मनी के बीच एक गुप्त पत्र की टाइप की हुई प्रतिलिपि, सोवियत प्रेस के चालू डाइजेस्ट के कुछ लेखों के अंश और १९५० में छपा एक सोवियत नक्शा जिसमें काश्मीर को अंग्रेजी शासन में दिखाया गया था।

बाद में समिति के कहने पर डा० सिन्हा ने संसद् के सचिवालय को डाइजेस्ट की तीन प्रतियां तथा "विशेन हिटलर एण्ड स्टालिन" नामक एक पुस्तक और भेजी।

समिति ने श्रीमती रेणु चक्रवर्ती के भाषण और श्री ले मिन के लेख की तुलना की और कहा कि यद्यपि दोनों की विचार दिशा में कुछ समानता प्रतीत होती है तथापि यह कहना गलत होगा कि उनका भाषण शब्दशः अथवा मूल सूत्र में ले मिन की अनुकृति थी।

समिति ने आगे कहा कि ऐसा नहीं लगता कि जो शब्द डा० सिन्हा ने प्रयुक्त किए उनके आधार पर यह मान लिया जाए कि वह सदस्यों या जनता

के मस्तिष्क में यह बात बैठाना चाहते थे कि उनका (श्रीमती रेणु चक्रवर्ती का) भाषण किसी और का सिखाया हुआ है। कोई भी सदस्य यह कहने का हकदार है ही कि एक सदस्य ने जो तर्क पेश किये हों वे पहले कोई और पेश कर चुका है।

जहां तक पेश किए गए कागज-पत्रों का प्रश्न है समिति को जांच करने पर यह पता चला है कि वे एक नियमित रूप से छपने वाली पत्रिका की प्रतिलिपियां और एक जर्मन पुस्तक थीं जो आम जनता के पढ़ने के लिए उपलब्ध हैं।

इन बातों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि डा० सिन्हा ने इन कागज पत्रों को गढ़ा या जाली बनाया। अत: समिति का मत है कि यह आरोप प्रमाणित नहीं होता और इसलिए इस आधार पर भी विशेषाधिकार का अन्तिक्रमण नहीं हुआ।

अन्त में समिति ने कहा इस सभा के सदस्यों से जिस स्तर के व्यवहार की उपेक्षा की जाती है उसके बारे में समिति का विचार है कि डा० सिन्हा और श्री गोपालन दोनों ने सम्बद्ध बातों पर अधिक गौर किए बिना क्षणिक जोश में कार्य किया। डा० सिन्हा को श्रीमती रेणु चक्रवर्ती पर आरोप लगाने से पूर्व अच्छी तरह सोच लेना चाहिए था और श्री गोपालन को यह जांच कर लेनी चाहिए थी कि ये कागज़ात झूठे और जाली हैं अथवा नहीं।

२ जुलाई १९५२ को लोकसभा के सदस्य डा० जयसूर्य ने अपने ३ जून के वक्तव्य पर, जिसमें उन्होंने किसी नागरिक पर यह आरोप लगाया था कि उसने बिना भारत सरकार को सूचना दिये स्विटजरलैंड के एक बैंक में ५ लाख फ्रैंक जमा किया हैं और वह किसी ब्रिटिश फर्म से बातचीत कर रहा है, २ जुलाई १९५२ को लोक सभा में क्षमा याचना की क्योंकि वह बयान सिद्ध न किया जा सका और फिर अध्यक्ष से अपने उस वक्तव्य को वापस लेने की आज्ञा मांगी।

कुछ क्षेत्रों में यह भी विवादास्पद विषय है कि क्या व्यवस्थापिका सभा में उपस्थित होने से पूर्व ही आय-व्ययक का रहस्य खुलना सभा के विशेषा-

धिकारों का उल्लंघन तो नहीं है? यह सर्व विदित है कि एटली-मंत्रिमंडल के सदस्य डाल्टन को अपने पद से इसीलिये पृथक होना पड़ा कि उनके विभाग से आय-व्ययक सम्बन्धी कुछ मदों का संसद् में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व रहस्योद्घाटन हो गया था। किन्तु डाल्टन का त्यागपत्र सभा के विशेषाधिकारों को भंग होने के कारण नहीं बल्कि उसके द्वारा गोपनीयता का पालन न किये जा सकने के कारण हुआ। इसलिए इस मामले को विशेषाधिकार समिति के सम्मुख न रखकर प्रवर समिति के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था। इसी प्रकार का एक मामला मद्रास विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। ३० जून १९५२ को विधान सभा के अध्यक्ष श्री शिव शरणमुखम पिल्लई ने विरोधी दल के नेता श्री विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत किये गये एक प्रस्ताव को, जिसमें यह शिकायत की गई थी कि, पेट्रौल की खुदरा बिक्री पर कर बढ़ाने का सरकारी इरादा पहले ही ज्ञात हो गया था क्योंकि आय-व्ययक के सदन में प्रस्तुत किये जाने से एक सफ्ताह पूर्व ही यह बात समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गयी थी, जब कि इस सभा को ही आय-व्ययक को सर्व प्रथम जानने का अधिकार है, इससे इस सभा के विशेषाधिकारों का उल्लंघन हुआ है। अध्यक्ष ने विरोधी दल के इस प्रस्ताव को अनियमित करार देते हुए कहा कि, इस शिकायत में कोई बात ऐसी नहीं जिससे यह पता चल सके कि आय-व्ययक के रहस्य खुलने से विधान सभा के विशेषाधिकारों को किसी प्रकार की क्षति पहुंची है, इसे विशेषाधिकार जांच समिति के पास नहीं भेजा जा सकता।

२५ अगस्त १९५१ को श्री रफी अहमद किदवाई ने उत्तर प्रदेश के खाद्य मंत्री श्री चन्द भानु गुप्त पर कुछ आरोप लगाये। प्रत्युत्तर में श्री गुप्त ने २८ अगस्त को विधान सभामें एक वक्तव्य दिया जिसके विरुद्ध विरोधी दल के नेता श्री त्रिलोकी सिंह ने शिकायत की कि मंत्री महोदय के वक्तव्य में मेरे एक वक्तव्य की चर्चा की गई है और उसके कुछ अंश आपत्ति जनक हैं। यह विषय श्री गुप्त के उस वक्तव्य से उठा था जिसमें उन्होंने इस आरोप का खंडन किया था कि लगभग ५ करोड़ रुपये का सरकारी अनाज लापता है। श्री त्रिलोकी सिंह द्वारा लगाये गये आरोपों के अनुसार उत्तर प्रदेशीय

विधान सभा की विशेषाधिकार समिति ने श्री गुप्त के द्वारा किये गये विशेषाधिकारों के कथित दुरुपयोग की जांच की। ७ मार्च १९५२ को समिति ने अपना निर्णय देते हुये कहा कि श्री गुप्त ने श्री किदवई के २५ अगस्त १९५१ के आरोपों का उत्तर दिया था, और उन्होंने विशेषाधिकार का दुरुपयोग नहीं किया।

किसी संसद के सदस्य को रिश्वत देनी अथवा संसद के सदस्य का रिवश्त लेना बहुत कड़ा अपराध समझा जाता है। * किसी सदस्य के विरुद्ध रिश्वत सम्बन्धी अपराध की शिकायत होने पर भी जांच समिति बैठाई जाती है और अपराध के सिद्ध होने पर सदस्य को अपदस्थ किया जा सकता है, उसे आर्थिक दंड दिया जा सकता है अथवा दोनो दण्ड दिये जा सकते हैं। ब्रिटिश संसद के सदस्य जान अस्बर्नहम को सन् १६७७ में फ्रांसीसी व्यापारियों से ५०० पौंड रिश्वत लेने के अपराध में सदन की सदस्यता से बंचित कर दिया गया था। उसी प्रकार १६९४ में लोक सभा के अध्यक्ष सर जौन ट्रेवर को तथा १६९५ में गुई को इसी प्रकार के अपराध में अपदस्थ किया गया था।† किसी सदस्य का रिश्वत लेना साधारण नागरिक द्वारा स्वीकार की गई रिश्वत से बड़ा अपराध समझा जाता है क्योंकि वह अपने पद का लाभ उठाकर शासन और समाज में भ्रष्टाचार फैलाने का अपराधी होता है। संसद के सदस्य के लाभ के पद का अगले अध्याय में उल्लेख किया जायगा।

विशेषाधिकार समिति—

विशेषाधिकार भंग होने पर उसकी जांच एक समिति करती है जिसे विशेषाधिकार जांच समिति कहते हैं। कोई भी सदस्य अथवा व्यवस्थापिका अध्यक्ष की सहमति से किसी सदस्य, सभा अथवा उसकी समिति के विशेषाधिकार को भंग करने के सम्बन्ध में प्रश्न उपस्थित कर सकता है। विशेषाधिकार भंग किये जाने के विरुद्ध लिखित सूचना देने का उपबन्ध है। सदनमें इस प्रकार एक दिन में केवल एक ही प्रश्न रखा जा सकता है और वह भी

---

* May: ibid. P 85.

† May: ibid. P 86.

तात्कालिक घटना के किसी निर्दिष्ट विषय तक ही सीमित होगा। प्रश्नोत्तर काल के पश्चात् अध्यक्ष किसी भी समय इस प्रश्न को प्रस्तुत किये जाने की अनुमति देता है।

वर्तमान संसद् की विशेषाधिकार समिति में (जिसके अध्यक्ष डा० कैलासनाथ काटजू हैं) १० सदस्य हैं। समिति की गण पूर्ति के लिये ५ सदस्यों का उपबन्ध है। अधिकतर राज्य विधान-मण्डलों ने संसद की इस व्यवस्था को ही स्वीकार किया है।

समिति सौंपे गये प्रत्येक प्रश्न की पूरी तरह से जांच-पड़ताल करती है। वह प्रत्येक प्रकरण को घटनाओं के आधार पर संकलित करके यह निरुपण देती है कि कोई विशेषाधिकार भङ्ग हुआ है या नहीं, और यदि हुआ है तो उसका प्रकार, वह परिस्थितियां जिनसे वह प्रश्न उत्पन्न हुआ आदि का उल्लेख करती है। समिति सम्बन्धित व्यक्तियों को उपस्थित कराने या कागज-पत्र और लेख्यों को प्रस्तुत कराने की शक्ति रखती है। किन्तु ऐसे विषयों को जो समिति के अधिकार क्षेत्रसे बाहर होते हैं उन पर वह विचार नहीं कर सकती।

विशेषाधिकार समिति के पास कोई प्रश्न सौंपे जाने पर वह निश्चित समय के भीतर अपनी जांच का निर्णय अध्यक्ष के पास प्रस्तुत कर देती है। यह निर्णय समिति के बहुमत द्वारा होता है और अन्तिम समझा जाता है। किन्तु यदि समिति का कोई सदस्य उसके निर्णय से असहमत हो तो वह उसी निर्णय के साथ पृथक रूप से अपनी असहमति का पत्र प्रस्तुत करता है।

विशेषाधिकार समिति की शिफारिश संसद के अध्यक्ष अथवा सभापति के द्वारा सदन में प्रस्तुत की जाती है जो उस पर विचार करती है। सदन का कोई भी सदस्य उल्लिखित शिफारिश पर अपना संशोधन प्रस्तुत कर सकता है। संशोधित प्रस्ताव पुनः समिति के पास भेजा जाता है। लोक सभा की संसदीय प्रक्रिया की नियमावली में उल्लिखित विशेषाधिकार के नियम में जो बातें वर्णित हैं उनके अतिरिक्त अध्यक्ष विशेषाधिकार का कोई भी प्रश्न विशेषाधिकार समिति को परीक्षण, अनुसंधान और सूचना के लिये सौंप सकता है।

———

लाभ का पद

भारतीय संविधान में लाभ के पद का उल्लेख करते हुये लिखा है:
"कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिये अनर्ह होगा—

> "यदि वह भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर जिसे धारण करने वाले का अनर्ह न होना संसद् ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई अन्य लाभ का पद धारण किये हुए है।"*

"लाभ का पद" धारण करनेवाला व्यक्ति संसद् और विधान मंडल की सदस्यता की योग्यता से वंचित समझा जाता है। यह वाक्य हमें ब्रिटेन के उस सामन्तवादी युग का स्मरण कराता है जिसमें राजाओं और उनके मुसाहिब पीयर्स, बैरन्स और लार्ड्स का बोलबाला था जो प्राय: बहुत से लोगों को ऊंचे पदों पर बिठाकर उन्हे अपनी ओर करते थे, और आवश्यकता पड़ने पर उनकी सेवायें स्वीकार करते थे। किन्तु यह लोक-हित के विरुद्ध था और जनता इस बात के लिये प्रयत्नशील थी कि राजाओं और लार्ड्स की शक्ति समाप्त हो जानी चाहिये। इसके लिये ब्रिटिश प्रजा को वर्षों और युगों संघर्ष करना पड़ा। कालांतर में राजा की प्रीवी कौंसिल के सदस्यों तथा अन्य लार्ड्स आदि के वे सब अधिकार समाप्त हो गये जिनसे लाभ उठाकर वे अनुचित उपायों द्वारा लोगों को धन या पद का प्रलोभन देकर उनसे अपना स्वार्थ साधन करते थे। इससे अन्य देशों ने भी प्रेरणा पाई और उनमें भी व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के लिये लाभ का पद धारण करने की परम्परा पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अफ्रीका के कानून की धारा २ (१) B; और उत्तरी अमेरिका के कानून की धारा ४१ में लाभ के पद का उल्लेख किया गया है। इससे पता चलता है कि प्राय: सभी देशों में कानून द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि कोई भी व्यवस्थापक लाभ का पद धारण न करे।

ब्रिटिश संसद् में लाभ के पद के सम्बन्ध में सन १७०७ के 'सक्सेशन ऑफ क्राउन ऐक्ट' (Succession of Crown Act) की धारा २४ में

---

* अनु० १०२ [१] [क]

उल्लेख किया गया है। किंतु उसमें इसकी कोई परिभाषा नहीं दी गई है। उसके लिये ब्रिटेन में समय समय पर चुनाव की जा समितियां नियुक्त की गई थीं उनके निर्णयों को देखने से इस बात का पता चलता है कि लाभ के पद की कहां क्या व्याख्या की गई है। इस सम्बन्ध में सन् १६४१, १६४५ और १६४६ की कमेटियों ने जो निर्णय किये उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि "लाभ के पद के प्राविधिक अर्थ होते हैं और उसका निर्वचन एक विधि का प्रश्न है क्योंकि किसी अधिनियम का निर्वचन सदा एक विधि का प्रश्न होता है और इसी कारण शब्दों के अर्थ का निर्वचन तथ्यों से नहीं अपितु तथ्यों से अलग करके किया जाता है।

"कोई पद, यदि उससे सम्बधित लाभ केवल भाव से सम्बधित अथवा अवास्तविक हो लाभ का पद हो जाता है। लाभ के पद के तात्पर्य हैं एक ऐसे पद से जिससे वेतन, मजदूरी, भत्ते, शुल्क, विशेषाधिकार अथवा प्रतिष्ठा का संबन्ध हो। लाभप्रद पद को धारण करने वाले के लिये इन सबों अथवा इनमें से किसी अपेक्षित वस्तु को ग्रहण करने से अस्वीकार करना, इस बात का निश्चय करने में कि वह अनर्ह है कोई महत्ता नहीं रखता है यदि नियुक्ति संविधि के अनुसार लाभ का पद अथवा स्थान है तो वे उद्देश्य जिनके कारण धारण करनेवाले ने उसे स्वीकार किया अप्रासंगिक हैं और यह तथ्य भी कि वह वेतन के प्रश्न पर कोई महत्व नहीं देते अप्रासंगिक है"❀।

❀"Office of profit has a technical meaning and its interpretation is a question of laws, because the interpretation of an Act is always a question of law, and therefore, the meaning of the words have to be interpreted apart from the facts and not from the facts.

"An office becomes an office of profit even though the profit attached to it may be only national or fictional. An office of profit means an office to which a salary, wages, allowances, fees, or privileges or pre-eminences may be attached. The non-acceptance by the holder of the office of profit all or any of these perquisites is immaterial in determining whether he is disqualified. If the appoinrment is a place or office of profit within the meaning cf the Statute, the motive by which the holder was actuated in accepting it are irrelevant as is also the fact that he may have attached no importance to the questions of remuneration."

ब्रिटिश लोक सभा की प्रवर समिति की २३ अगस्त १६४५ की रिपोर्ट में तो यह भी लिखा है कि ब्रिटेन के संसदीय इतिहास में ऐसा कोई भी दृष्टान्त नहीं है जिसमें ऐसे किसी अभ्यार्थी का संसद के लिये निर्वाचन वैध किया गया हो जो निर्वाचन के समय लाभ का पद धारण करने के कारण अनर्ह हो।*

भारतीय संविधान के अनुच्छेद १६१ में लिखा है : "कोई व्यक्ति किसी राज्य की विधान सभा या विधान परिषद् का सदस्य चुने जाने के लिये तथा सदस्य होने के लिये अनर्ह होगा—(क) यदि वह भारत सरकार के, अथवा प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य की सरकार के, अधीन कोई लाभ का पद धारण किये हुये है। अनुच्छेद १०२ में भी इसका उल्लेख है। लाभ के पद का जो उल्लेख इन अनुच्छेदों में है उसका १९३५ के विधान में भी वर्णन किया जा चुका है! उस कानून की धारा २६ और ६६ में इसका उल्लेख किया गया है।

लाभ का पद धारण करने के सम्बन्ध में भारतीय कानून में जितनी स्पष्ट और विस्तृत व्याख्या की गई है उतनी किसी अन्य देश में नहीं है। लाभ का पद धारण करने वाला व्यक्ति केवल वही नहीं समझा जाता जिसका नाम उससे सम्बन्धित होता है, वरन् उसके परिवार का, प्रत्येक व्यक्ति होता है। यदि वह संयुक्त परिवार का एक सदस्य है, प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप से इस प्रकार का लाभ प्राप्त करने वाला व्यक्ति इस श्रेणी में आ जाता है।

पिछले वर्ष लोक सभा के सदस्य मुदगल के विरुद्ध यह अभियोग लगाया गया था कि लोक सभा का सदस्य होते हुए उनका बम्बई की उन व्यापारिक संस्थाओं के साथ साझा था जिन्हे प्रत्येक रूप से सरकार से लाभ प्राप्त होता था। मुद्गल के चरित्र की जांच-पड़ताल के लिये संसद द्वारा निर्मित जांच

*". . . there is no precedent for validating the election to Parliament of a candidate who was disqualified for voting on account of his holding an office of profit at the time of his election."

—Select Committee Report, P. 4

समिति ने इसकी विस्तृत जांच की। मुगदल दोषी सिद्ध हुए और लोक सभा की सदस्यता से वंचित किये गये।

सदस्यों द्वारा लाभ का पद धारण करने की समस्या लगभग सभी राज्य विधान-मंडलों में प्रस्तुत हुई, जिनमें विशेष कर विधान-मंडल के सदस्यों द्वारा राज्य कमेटियों अथवा जिला कमेटियों का सदस्य होने का अर्थ लाभ का पद धारण करना समझ गया! विन्ध्य प्रदेश की विधान सभा के सम्मुख सरदार नर्वदा प्रसाद सिंह ने ५ नवम्बर १९५२ को एक प्रस्ताव रखा जिसमें कहा गया कि विधान सभा के सदस्यों द्वारा जिला सलाहकार समितियों की सदस्यता स्वीकार करना लाभ का पद धारण करना है। विधान सभा में दो दिन तक (१० और ११ नवम्बर को) वाद-विवाद हुआ। अन्त में अध्यक्ष ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

सन् १९५१ में लोक सभा में तत्सम्बन्धी एक विधेयक प्रस्तुत किया गया था। जिसके उद्देश्य और कारणों में लिखा था :

> "संविधान के प्रारम्भ होने से पूर्व तथा पश्चात् राज्य द्वारा कई समितियों तथा मंडलियों में संसद के सदस्य नियुक्त किये गये और वे उन समितियों तथा मंडलियों के सदस्यों की हैसियत से अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में निर्वाह भत्ता, दैनिक भत्ता, तथा यात्रा भत्ता जैसे भत्ते प्राप्त करते थे। सरकार ने अनुभव किया कि उन दशाओं में संसद की सदस्यता से अनर्हता का प्रश्न सन्देह से मुक्त नहीं है और फिर भी ऐसी नियुक्तियां इस विश्वास के साथ की गयी कि वह संविधान के अनुच्छेद १०२ (१) के अधीन अनर्हता नहीं समझी जायगी। यह विधेयक अनर्हताओं को हटाने के लिये उपबन्ध करने का है जिसका अनुदर्शी प्रभाव होगा।"

परिशिष्ट

(क)

उत्तर प्रदेश राज्य विधान मंडल (अधिकारियों के वेतन तथा भत्ते] विधेयक, १९५२ ई० ।

(जैसा कि उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा पारित हुआ ।)

उत्तर प्रदेश विधान मंडल के अधिकारियों को दिए जाने वाले वेतन तथा भत्तों की व्यवस्था के निमित्त,

विधेयक

संविधान के अनुच्छेद १८६ में यह व्यवस्था की गयी है कि "**विधान सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को तथा विधान परिषद के सभापति और उप-सभापति को ऐसे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जैसे क्रमशः राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा नियत करे**"

इसलिये निम्नलिखित अधिनियम बनाया जाता है:—

संक्षिप्त नाम और आरम्भ :

१—(१) इस अधिनियम का नाम "उत्तर प्रदेश राज्य **विधान मण्डल** [अधिकारियों के वेतन तथा भत्ते] अधिनियम, १९५२" होगा।

(२) यह तुरन्त प्रचलित होगा ।

अध्यक्ष और सभापति का वेतन ।

२—उत्तर प्रदेश विधाग सभा के अध्यक्ष को और उत्तर प्रदेश विधान परिषद के सभापति को बारह सौ रुपये मासिक का शुद्ध (नेट) वेतन दिया जायगा जिसमें इण्डियन इन्कम टैक्स ऐक्ट, १९२२ ई० के अनुसार लिये जाने वाले आयकर सम्मिलित नहीं होंगे ।

उपाध्यक्ष और उपसभापति के वेतन :—

३—उत्तर प्रदेश विधान सभा के उपाध्यक्ष को और उत्तर प्रदेश विधान षदरपके उप-सिभापति को ६ सौ रुपये प्रति मास का वेतन दिया जायगा।

अध्यक्ष और सभापति के लिए बिना किराये के सुसज्जित निवासस्थान :

४—अध्यक्ष और सभापति को लखनऊ में पूरे वर्ष बिना किराये के सुसज्जित निवास-स्थान उससे सम्बद्ध भूमि के साथ, जिसका रख रखाव सार्वजनिक व्यय से होगा, पाने का अधिकार रहेगा और उक्त अधिकारियों को ऐसे किसी अन्य स्थान पर भी जहां पर उत्तर प्रदेश विधान राज्य मंडल का सत्र (सेशन) हो, उक्त प्रकार के निवास-स्थान पाने का अधिकार सत्र की अवधि के लिए और उस से पहले और उससे पीछे ऐसे समय के लिए होगा जो एक सप्ताह से अधिक न हो।

अध्यक्ष और सभापति के लिये सरकारी परिवहन :—

५—अध्यक्ष, और सभापति के उपयोग के लिए उपयुक्त परिवहन की भी व्यवस्था की जायगी जिनका क्रय और रख रखाव, राज्य सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में बनाये जाने वाले नियमों के अनुसार सार्वजनिक व्यय से होगा।

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सभापति और उप-सभापति के भत्ते :—

६—अध्यक्ष उपाध्यक्ष, सभापति, और उप-सभापति को सार्वजनिक कार्य के के लिए यात्रा के निमित्त ऐसी दर पर और ऐसी शर्तों पर जो राज्य सरकार दावारा बनाए जाने वाले नियमों से अवधारित की जायँ, यात्रिक और दैनिक भत्ता पाने का अधिकार होगा।

यू० पी० ऐक्ट संख्या ५, १९३७ का निरसन :

७—यू० पी० लेजिस्लेचर (आफिसर्स सेलेरीज) ऐक्ट, १९३७, निरस्त होगा और एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

५, १९३७ का निरसन।

८—(१) इस अधिनियम के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के लिये राज्य सरकार नियम बना सकती है।

(२)—उक्त अधिकार की व्यापकता को बाधित न करते हुए धारा २ में उल्लिखित करों को राज्य सरकार द्वारा दिये जाने और उनके पुनर्भुगतान की व्यवस्था ऐसे नियमों में की जा सकती है।

उद्देश्य और कारण

संविधान के अनुच्छेद १८६ में यह व्यवस्था की गयी है कि विधान सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को तथा विधान परिषद के सभापति और उप-सभापति को ऐसे वेतन और भत्ते, जिन्हें क्रमशः राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा नियत करे, दिए जायंगे।

इस विधेयक द्वारा तदनुसार व्यवस्था की जा रही है।

सैयद अली जहीर,
न्याय मंत्री।

भारत के संविधान के अनुच्छेद २०७ (१) के अनुसार मैं, होरमसजी पैरोशा मोदी, गवर्नर, उत्तर प्रदेश सिफारिश करता हूँ कि (१) उत्तर प्रदेश के मंत्रियों और उपमंत्रियों के (वेतन तथा भत्तों का) विधेयक, १९५२ ई०, (२) उत्तर प्रदेश विधान मंडल (अधिकारियों के वेतन तथा भत्ते) विधेयक, १९५२ ई० और (३) उत्तर प्रदेश विधान मण्डल (सदस्यों की उपलब्धियों का) विधेयक, १९५२ ई० उत्तर प्रदेश विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किये जायं।

एच० पी० मोदी,
गवर्नर,
उत्तर प्रदेश।

भारत के संविधान के अनुच्छेद २०७ (३) के अनुसार मैं, होरमसजी पैरोशा मोदी, गवर्नर उत्तर प्रदेश सिफारिश करता हूँ कि (१) उत्तर-प्रदेश के मंत्रियों और उप-मंत्रियों के वेतन तथा भत्तों का विधेयक, १९५२ ई०, (२) उत्तर प्रदेश राज्य विधान मण्डल (अधिकारियों के वेतन तथा भत्ते) विधेयक, १९५२ ई०, और (३) उत्तर प्रदेश विधान मण्डल (सदस्यों की

उपलब्धियों का) विधेयक, १९५२ ई० पर उत्तर प्रदेश विधान सभा विचार करे।

एच० पी० मोदी,
गवर्नर,
उत्तर प्रदेश

भारत के संविधान के अनुच्छेद २०७ (३) के अनुसार मैं, होरमसजी पैरोशा मोदी, गवर्नर, उत्तर प्रदेश सिफारिश करता हूँ कि (१) उत्तर प्रदेश के मन्त्रियों और उप-मंत्रियों (के वेतन तथा भत्तों) का विधेयक, १९५२ ई०, (२) उत्तर प्रदेश राज्य विधान मण्डल (अधिकारियों के वेतन तथा भत्ते) विधेयक, १९५२ ई०, और (३) उत्तर प्रदेश विधान मण्डल (सदस्यों की उपलब्धियों का) विधेयक, १९५२ ई० उत्तर प्रदेश विधान परिषद के समक्ष प्रस्तुत किये जायं।

एच० पी० मोदी,
गवर्नर,
उत्तर प्रदेश—

परिशिष्ट

(ख)

भ्रष्टाचार और अवैध आचरण तथा निर्वाचन सम्बन्धी अपराध

अध्याय १

भ्रष्टाचरण—

१२३. गुरुतर भ्रष्टाचरण—निम्नगत आचारण इस ऐक्ट के प्रयोजनार्थ भ्रष्टाचरण मानें जायँगे, यथाः—

(१) रिश्वतखोरी, जैसा कि, किसी उम्मीदवार या उसके एजण्ट द्वारा, अथवा किसी उम्मीदवार या उसके एजण्ट के गुप्त सहयोग से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी भी व्यक्ति को पुरस्कार देना, भेंट प्रस्तुत करना या किसी घूंस का वचन देना, और यह इस आशय से हो कि प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः—

(क) किसी व्यक्ति को किसी निर्वाचन पर बतौर एक उम्मीदवार के खड़े रहने या न खड़े रहने या अपनी उम्मीदवारी वापिस कर लेने का; अथवा

(ख) किसी निर्वाचक को किसी निर्वाचन पर मत देने या न देने का प्रलोभन दिया जाय या—

(१) किसी व्यक्ति को इस प्रकार खड़े रहने या न खड़े रहने के लिये अथवा अपनी उम्मीदवारी से हट जाने के लिये; या

(२) किसी निर्वाचक को इस प्रकार मत देने या न देने के लिये पुरस्कृत किया जाय।

स्पष्टीकरण—इस खण्ड के प्रयोजनार्थ शब्द घूंस केवल आर्थिक घूंस या धन द्वारा आगणित घूंस तक ही सीमित नहीं, और इसमें उन तमाम प्रकार के मनोरंजन तथा तमाम प्रकार के व्यवसायों का भी समावेश होगा जो कि पुरस्कार के रूप में होंगे; किन्तु इसमें ऐसे किन्हीं भी खर्चों

की अदायेगी का समावेश नहीं होगा जो कि किसी निर्वाचन पर, या उसके प्रयोजनार्थ, वास्तविक तौर पर किये गये होंगे तथा धारा ७६ में निर्दिष्ट निर्वाचन सम्बन्धी खर्चों के व्यारे में यथानियम दर्ज किये गये होंगे।

(२) अनुचित प्रभाव, जैसा कि, किसी उम्मीदवार या उसके एजन्ट द्वारा, अथवा उम्मीदवार या उसके एजण्ट के गुप्त सहयोग से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी निर्वाचन सम्बन्धी अधिकार के स्वतत्र प्रयोग में कोई प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः हस्तक्षेप या हस्तक्षेप करने के लिये यत्न :

बन्धान यह है कि—

(क) इस खण्ड के उपबन्धों की सर्वमान्यता को हानि पहुंचाये बगैर उसमें उल्लिखित ऐसा कोई भी व्यक्ति जो

(१) किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसमें कि किसी उम्मीदवार या किसी निर्वाचक का स्वार्थ हो, किसी भी प्रकार की हानि की धमकी देता है, जिसमें सामाजिक एवं जाति बहिष्कार या किसी वर्ग या जाति से बाहर कर देने का भी समावेश होगा; या

(२) किसी उम्मीदवार या निर्वाचक को, उसके दिल में यह मान्यता पैदा करने के उद्देश्यार्थ कि वह, या ऐसा कोई व्यक्ति जिसमें कि उसका कोई स्वार्थ हो, दैवी प्रकोप या धार्मिक अपकीर्ति का विषय बन जायेगा या बना दिया जायेगा, फुसलाता है या फुसलाने का यत्न करता है,

वह, इस खण्ड के भावार्थों के अनुसार ऐसे उम्मीदवार या निर्वाचक के निर्वाचन सम्बन्धी अधिकार के स्वतंत्र प्रयोग में हस्तक्षेप करने वाला माना जायेगा

(ख) सार्वजनिक नीति की किसी घोषणा को या सार्वजनिक कार्यवाही के किसी वचन को, अथवा निर्वाचन सम्बन्धी किसी अधिकार में हस्तक्षेप करने के अभिप्राय के बगैर केवल किसी वैधानिक अधिकार के प्रयोग को, इस खण्ड के भावार्थों के अनुसार, हस्ताक्षेप नहीं माना जायगा।

(३) किसी उम्मीदवार या उसके एजेण्ट द्वारा, अथवा किसी उम्मीदवार या उसके एजेण्ट के गुप्त सहयोग से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, मतपरचा के लिये एक ऐसे प्रार्थना पत्र का प्राप्त करना, या उक्त प्राप्ति में सहायता देना या एतदर्थ यत्न करना, जो कि किसी एक व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के नाम में किया जाता है, फिर चाहे वह अन्य व्यक्ति जीवित हो या मर चुका हो, या जो किसी व्यक्ति द्वारा किसी काल्पनिक व्यक्ति के नाम में किया जाता है, अथवा जो मतपरचा की प्राप्ति अर्थ किसी व्यक्ति द्वारा अपने नाम में किया जाता है, जब कि इस तथ्य के कारण कि उसने उसी निर्वाचन क्षेत्र में या किसी अन्य निर्वाचन क्षेत्र में पहले से ही अपना मत दे रखा है, उसे मत देने का अधिकार नहीं।

(४) मतदान के घण्टों के दौरान में पोलिंग स्टेशन से किसी उम्मीदवार या उसके एजेण्ट द्वारा, अथवा किसी उम्मीदवार या उसके एजेण्ट के गुप्त सहयोग से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी मतपर्चा का हटाना।

(५) किसी उम्मीदवार या उसके एजेण्ट द्वारा, या किसी उम्मीदवार या उसके एजेण्ट के गुप्त सहयोग से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी उम्मीदवार के व्यक्तिगत चारित्र्य या आचरण के सम्बन्ध में, या किसी उम्मीदवार की उम्मीदवारी या उम्मीदवारी वापिस ले लेने के सम्बन्ध में, किसी ऐसे तथ्य के निवेदन का प्रकाशन जो कि ग़लत है अथवा जिसे वह या तो गलत मानता है अथवा सही नहीं मानता और जो एक ऐसा निवेदन है जिस से कि उक्त उम्मीदवार के निर्वाचित हो जाने के सुयोगों को हानि पहुंचने की यथार्थरूप में सम्भावना हो सकती है।

(६) किसी भी निर्वाचक को (स्वयं उम्मीदवार, या उसके परिवार के सदस्यों अथवा उसके एजेण्ट के अतिरिक्त) धारा २५ के अधीन निवेशित किसी पोलिंग स्टेशन, अथवा मतदान के लिये धारा २९ की उपधारा (१) के अधीन नियत किसी स्थान पर पहुँचाने या वहां से ले जाने के प्रयोजनार्थ, उक्त उम्मीदवार या उसके एजेण्ट द्वारा या, उम्मीदवार अथवा उसके एजेण्ट के गुप्त सहयोग से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी वाहन, या नाव का

किराया पर लेना अथवा प्राप्त करना, फिर चाहे इसके लिये कोई रकम अदा की जाती हो या नहीं :

पर बन्धान यह है कि किसी निर्वाचक द्वारा, या अनेक निर्वाचकों द्वारा उनके संयुक्त खर्च पर, उसे या उन्हें पोलिंग स्टेशन या मतदानार्थ नियत स्थान पर पहुँचाने अथवा वहां से ले जाने के लिये किसी वाहन या नाव का किराया पर लेना, यदि इस प्रकार किराया पर लिया गया वाहन या नाव एक ऐसा वाहन या नाव हो जो कि यांत्रिक बल से नहीं चलाया जाता, इस खण्ड के अधीन बतौर एक भ्रष्टाचरण के नहीं माना जायेगा :

अधिक बन्धान यह है कि किसी निर्वाचक द्वारा ऐसे पोलिंग स्टेशन या मतदान के लिये नियत स्थान पर मत देने के लिये पहुँचने या वहां से वापस लौटने के प्रयोजनार्थ, अपने खर्च पर, किसी सार्वजनिक परिवहन, वाहन या नाव अथवा ट्रामकार या रेल गाड़ी के उपयोग को, इस खण्ड के अधीन, बतौर एक भ्रष्टाचरण के नहीं माना जायेगा।

स्पष्टीकरण—इस खण्ड में अभिव्यक्ति "वाहन" से अभिप्रेत है, कोई ऐसा वाहन जो कि पथ परिवहन के प्रयोजनार्थ उपयोग में लाया जाता है, फिर चाहे वह यांत्रिक बल द्वारा गतिमान होता हो या अन्यथा और चाहे उसका अन्य वाहनों को खींचने के लिये उपयोग किया जाता हो या अन्यथा।

(७) इस ऐक्ट का, या उसके अधीन विरचित किसी भी नियम का उल्लंघन करते हुए, किसी उम्मीदवार द्वारा, या उसके किसी एजेण्ट द्वारा किसी खर्च का करना या एतदर्थ किसी को प्राधिकृत करना, अथवा किसी व्यक्ति को नौकरी पर लगाना।

(८) किसी उम्मीदवार या उसके किसी एजेण्ट द्वारा, अथवा किसी उम्मीदवार या उसके एजेण्ट के गुप्त सहयोग से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, उक्त उम्मीदवार के निर्वाचित हो जाने के सुयोगों में अभिवृद्धि लाने के उद्देश्यार्थ, भारत की सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन मुलाज़िमत करनेवाले किसी व्यक्ति से, ऐसे व्यक्ति द्वारा मत देने के अतिरिक्त, कोई भी सहायता प्राप्त या उपलब्ध करना।

स्पष्टीकरण—इस खण्ड के प्रयोजनों के लिये—

(क) भारत की सरकार के अधीन मुलाज़िमत करनेवाले व्यक्ति में ऐसे किसी व्यक्ति का समावेश नहीं होगा जो कि केन्द्रीय सरकार द्वारा बतौर एक ऐसे व्यक्ति के घोषित किया जा चुका है जिस पर कि इस खण्ड के उपबन्ध लागू नहीं होंगे।

(ख) किसी राज्य की सरकार के अधीन मुलाज़िमत करने वाले व्यक्ति में एक पटवारी, चौकीदार, दफ़ेदार, ज़ैलदार, शानबाघ, करनाम, तलाटी, तलारी, पाटिल, गांव का मुनसिफ़, गांव का मुखिया या उस राज्य में नियुक्त किसी भी नाम से सम्बोधित गांव के अन्य किसी पदाधिकारी का भी समावेश होगा, फिर चाहे उस द्वारा ग्रहण किया हुआ पद समस्त समय के लिए हो या नहीं किन्तु, इस परिभाषा में (उपर्युक्त किसी ग्राम्य पदाधिकारी के अतिरिक्त) ऐसे किसी भी व्यक्ति का समावेश नहीं होगा, जो कि केन्द्रीय सरकार द्वारा बतौर एक ऐसे व्यक्ति के घोषित किया जा चुका है, जिस पर कि इस खण्ड के उपबन्ध लागू नहीं होंगे।

१२४. लगु भ्रष्टाचरण:— इस ऐक्ट के प्रयोजनों के लिए निम्नगत आचरण भी भ्रष्टाचरण माने जायेंगे :—

१—धारा १२३ के खण्ड (१) से (८) में निश्चित किया गया कोई भी कृत्य जब कि वह किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाये जो कि एक उम्मीदवार या उसका एजेण्ट नहीं, अथवा जो कि किसी उम्मीदवार या उसके एजेण्ट के गुप्त सहयोग से कृत्य करने वाला व्यक्ति नहीं।

२—किसी निर्वाचन पर किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के नाम, फिर चाहे वह व्यक्ति जीवित हो या मर चुका हो या किसी काल्पनिक व्यक्ति के नाम, मत परचा के लिए प्रार्थनापत्र देना या अपने नाम में ही ऐसा प्रार्थना पत्र देना, जब कि इस तथ्य के कारण कि वह व्यक्ति उसी निर्वाचन क्षेत्र में या किसी अन्य निर्वाचन क्षेत्र में अपना मत पहिले से ही दे चुका है, उसे मत देने का अधिकार नहीं।

३—निम्न सम्बन्धों में किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी घूंस का लेना या उक्त घूंस की प्राप्ति अर्थ कोई करार, चाहे वह बतौर बदला के हो या पुरस्कार के, तय करना, अर्थात्—

क—बतौर उम्मीदवार के खड़ा रहने या खड़ा न रहने के लिए अथवा अपनी उम्मीदवारी से हट जाने के लिए किसी व्यक्ति द्वारा; या

ख—मत देने या न देने के बदला में अपने आप के लिए, या किसी अन्य व्यक्ति के लिए, अथवा किसी निर्वाचक को मत देने या न देने पर प्रलोभित करने के लिए, या किसी उम्मीदवार को अपनी उम्मीदवारी से हट जाने के लिए;

स्पष्टीकरण.—इस खण्ड के प्रयोजनों के लिये अभिव्यक्ति "घूँस" का वही अर्थ होगा जैसा कि उसके लिये धारा १२३ के खण्ड (१) के प्रयोजनों के लिए किया गया है।

४—निर्वाचन के खर्चों के किसी भी ऐसे ब्यौरे को प्रस्तुत करना जो कि किसी महत्वपूर्ण मामला के विषय में गलत है, या ऐसे किसी ब्यौरे के प्रमाणीकरण की घोषणा करना।

५—वर्ण, नस्ल, जाति या धर्म के आधार पर मत देने या न देने के लिए व्यवस्थित अभ्यर्थना करना, या किसी उम्मीदवार के निर्वाचित हो जाने के सुयोगों की अभिवृद्धि अर्थ धार्मिक एवं राष्ट्रीय चिन्हों, जैसा कि, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय प्रतीक, का उपयोग करना अथवा उन के नाम पर अभ्यर्थना करना।

अध्याय २

अवैध आचरण—

१२५. अवैध आचरण—इस ऐक्ट के प्रयोजनों के लिये निम्नगत आचरण अवैध आचरण माने जायंगे:—

१—उम्मीदवार या उसके एजेण्ट के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी सार्वजनिक सभा के आयोजन के कारण, अथवा किसी विज्ञापन, परिपत्र या प्रकाशन पर, अथवा उक्त उम्मीदवार के निर्वाचन की सहायता या प्राप्ति

के प्रयोजनार्थ खर्च करना या एतदर्थ किसी को अधिकृत करना, सिवाय उस दशा के जब कि वह व्यक्ति इस कार्य के निष्पादनार्थ उम्मीदवार द्वारा लिखित रूप में प्राधिकृत किया गया हो।

स्पष्टीकरण :— ऐसे खर्च जो कि किसी संस्था या संगठन द्वारा, ऐसी संस्था या संगठन द्वारा अनुमोदित किसी उम्मीदवार के निर्वाचन की सफलता की वृद्धिअर्थ उपर्युक्त रूप में किया जाता है, या प्राधिकृत किया जाता है, इस खण्ड के भावार्थानुसार किये गये या प्राधिकृत किये गये खर्च नहीं माने जायेंगे।

(२) ऐसी किसी इमारत, कमरा या अन्य स्थान का, जहां कि जनता को मादक मद्य बेचा जाता हो, बतौर समिति-खंड (कमेटी रूम) के अथवा किसी ऐसी सभा के प्रयोजनार्थ जिस में कि निर्वाचक-वर्ग को प्रविष्ट करवाया जाता हो, किराया पर लेना, उपयोग में लाना अथवा किराया पर देना।

(३) निर्वाचन के प्रति निर्देश करने वाले ऐसे किसी भी परिपत्र, (सरकुलर) ख्यापन-पत्र या विज्ञापन का जारी करना जिस पर कि उसके मुद्रक तथा प्रकाशक का नाम और पता न दिया गया हो।

अध्याय ३

निर्वाचन विषयक अपराध—

१२६. निर्वाचन के दिन पर सार्वजनिक सभाओं का प्रतिषेध :
१—कोई भी व्यक्ति किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में, उस दिनांक या दिनांकों पर जब कि उक्त निर्वाचन-क्षेत्र में निर्वाचन के लिये मत डाले जाते हों, किसी भी सभा का न तो संयोजन करेगा या न ही उसे बुलायेगा, अथवा उसमें उपस्थित ही हो सकेगा।

२—कोई व्यक्ति जो उपधारा (१) के उपबन्धों का उल्लंघन करेगा वह दो सौ पचास रुपया तक जुर्माना का भागी होगा।

१२७. निर्वाचन सभाओं में दंगाफसाद :— १—कोई व्यक्ति जो ऐसी कसी सार्वजनिक सभा में जिस पर कि यह धारा लागू होती है, उस कारोबार

की कार्यवाहियों को रोकने के आशय से जिस के लिये उक्त सभा बुलाई गई हो, उच्छृङ्खल रूप से बर्ताव करेगा या अन्य व्यक्तियों को ऐसा बर्ताव करने के लिये उकसायेगा वह दो सौ पचास रुपया तक जुर्माना का भागी होगा।

२—यह धारा राजनैतिक प्रकार की ऐसी किसी भी सभा पर लागू होगी, जो कि किसी निर्वाचन क्षेत्र में उक्त निर्वाचन क्षेत्र को, एक सदस्य या अनेक सदस्यों को निर्वाचित करने का आदेश देने वाले अधिसूचन के जारी होने के दिनांक तथा जिस पर निर्वाचन होता है उस दिनांक के बीच बुलाई जाती है।

३—यदि किसी पुलिस पदाधिकारी को यथार्थ रूप में यह सन्देह हो जाय कि किसी व्यक्ति ने उपधारा १ के अधीन कोई अपराध किया है तो वह, जब उसे उक्त सभा के प्रधान द्वारा इस बात की प्रार्थना की जाय, उस व्यक्ति से फौरन अपना नाम और पता जाहिर करने की मांग करे तथा यदि वह व्यक्ति इस प्रकार अपना नाम और पता जाहिर करने से इन्कार करे या उसमें असफल रहे अथवा पुलिस पदाधिकारी को सकारण सन्देह हो जाय कि उसने अपना नाम या पता गलत बताया है तो, उस दशा में, उक्त पुलिस पदाधिकारी उसे बिना वारन्ट गिरफ्तार करे।

१२८. मतदान के रहस्य भेद को गुप्त रखना :— १—ऐसे प्रत्येक पदाधिकारी, क्लर्क, मुन्शी, एजेन्ट [प्रतिनिधि] या अन्य व्यक्ति को, जो कि मतों की लेख्य बद्धता या उनकी गिनती के सम्बन्ध में किसी कर्त्तव्य का पालन कर रहा हो, मतदान के रहस्य भेद को गुप्त रखना होगा, और वह गुप्तता बनी रहे इसमें सहायता देनी होगी, तथा [सिवाय किसी ऐसे प्रयोजन के लिए जो कि किसी विधि के अधीन प्राधिकृत किया गया हो] ऐसी गुप्तता के भंग होने की जिससे सम्भावना हो, ऐसी कोई भी संसूचना किसी भी व्यक्ति को सवाहित नहीं करनी होगी।

२—ऐसा कोई भी व्यक्ति जो उपधारा (१) के उपबन्धों का उल्लंघन करेगा वह अधिक से अधिक तीन मास तक कारावास के दण्ड का या जुर्माना का अथवा दोनों प्रकार के दण्डों का भागी होगा।

१२९. पदाधिकारी, इत्यादि, निर्वाचन के समय उम्मीदवारों के निमित्त कार्य नहीं करेंगे अथवा न ही मतदान पर प्रभाव डालेंगे :—१.—ऐसा कोई भी व्यक्ति जो कि किसी निर्वाचन में रिटर्निङ्ग अफसर या असिस्टेण्ट रिटर्निङ्ग अफसर है अथवा अध्यक्ष है या पोलिंग अफसर है, अथवा रिटर्निङ्ग अफसर या अध्यक्ष द्वारा किसी निर्वाचन के सम्बन्ध में किसी कर्त्तव्य के पालनार्थ नियुक्त किया गया कोई पदाधिकारी या क्लर्क है, उक्त निर्वाचन के प्रबन्ध के संचालन में किसी उम्मीदवार को निर्वाचन में सफलता प्राप्ति के ध्येय की उन्नति अर्थ कोई भी कृत्य (सिवाय मत देने के) नहीं करेगा।

२—उपर्युक्त कोई भी व्यक्ति तथा पुलिस दल का कोई भी सदस्य—

(क) किसी व्यक्ति से किसी निर्वाचन पर अपना मत देने के लिए प्रेरित करने का, या

(ख) किसी व्यक्ति को किसी निर्वाचन पर अपना मत न देने के लिए प्रेरित करने का, अथवा

(ग) किसी निर्वाचन को किसी व्यक्ति पर मत देने के विषय में प्रभाव डालने का यत्न नहीं करेगा।

३—ऐसा कोई भी व्यक्ति जो उपधारा (१) या उपधारा (२) का उल्लंघन करेगा वह अधिक से अधिक छः मास तक कारावास के दण्ड का या जुर्माना का, अथवा दोनों दण्डों का भागी होगा।

१३०. पोलिंग स्टेशनों में या उनके निकट मत याचना [कैनवासिंग] का प्रतिषेध :—(१) कोई भी व्यक्ति उस दिनांक या दिनांकों पर जब कि किसी पोलिंग स्टेशन पर मत लिये जाते हों, उक्त पोलिंग स्टेशन में, अथवा पोलिंग स्टेशन से एक सौ गज के फासला के अन्दर आये हुए किसी सार्वजनिक या निजी स्थान में, निम्नगत कार्यों में से कोई भी कार्य नहीं करेगा, यथा :—

(क) मत-प्राप्ति अर्थ प्रचार; या

(ख) किसी भी निर्वाचक से मत प्राप्ति अ ै याचना करना; या

(ग) किसी भी निर्वाचक को किसी निश्चित उम्मीदवार को मत न देने के लिए प्रेरित करना; या

(घ) किसी भी निवचक को उक्त निर्वाचन में मत न देने के लिए प्रेरित करना; अथवा

(ङ) निर्वाचन सम्बन्धी (किसी शासकीय सूचना के अतिरिक्त) किसी सूचना या चिह्न को प्रदर्शित करना।

(२) ऐसा कोई भी व्यक्ति जो उप-धारा (१) के उपबन्धों का उल्लंघन करेगा, वह दो सौ पचास रुपया तक जुर्माना का भागी होगा।

(३) इस धारा के अधीन दण्डनीय अपराध हस्तक्षेप योग्य अपराध होगा।

१३१. पोलिंग स्टेशनों में अथवा उनके निकट उच्छृङ्खल आचरण के लिये शास्ति—(१) कोई भी व्यक्ति उस दिनांक या दिनांकों पर जब कि किसी पोलिंग स्टेशन पर मत लिये जाते हों, मत देने के प्रयोजनार्थ पोलिंग स्टेशन का मुआयना (विज़ट) वाले किसी व्यक्ति को क्षुब्ध करने अथवा पोलिंग स्टेशन पर काम कर रहे व्यक्तियों के कार्य में विघ्न डालने के उद्देश्य से

(क) उक्त पोलिंग स्टेशन में या उसके द्वार पर अथवा उसके निकटवर्ती किसी सार्वजनिक या निजी स्थान पर मानववाणी को विस्तृत अथवा पुनरुत्पन्न करने वाले किसी यंत्र, जैसा कि मेगाफोन या लौड-स्पीकर का उपयोग या इस्तमाल नहीं करेगा, या

(ख) किसी पोलिंग स्टेशन में या उसके द्वार पर अथवा उसके निकटवर्ती किसी सार्वजनिक या निजी स्थान पर नहीं चिल्लायेगा या अन्यथा किसी उच्छृङ्खल प्रकार का व्यवहार नहीं करेगा।

(२) कोई व्यक्ति जो उप-धारा (१) के उपबन्धों का उल्लंघन करेगा, अथवा इस उल्लंघन में जानबूझ कर सहायता देगा या इस पर किसी को प्रेरित करेगा वह तीन मास तक कारावास के दण्ड का या जुर्माना का अथवा दोनों दण्डों का भागी होगा।

(३) यदि किसी पोलिंग स्टेशन के अध्यक्ष के पास इस मान्यता का

कारण हो कि कोई व्यक्ति इस धारा के अधीन दण्डनीय कोई अपराध कर रहा है, या कर चुका है तो वह, ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिये, पुलिस के किसी भी पदाधिकारी को निदेशित करे, और इस पर उक्त पुलिस पदाधिकारी को उसे गिरफ्तार करना होगा।

(४) पुलिस का कोई भी पदाधिकारी उपधारा (१) के उपबन्धों के किसी भी प्रकार के उल्लंघन के निवारणार्थ जैसा कि उचित रूप में आवश्यक हों, ऐसे कदम उठाये तथा बलप्रयोग करे और ऐसे उल्लंघन के लिये उपयोग में लाये जाने वाले किसी भी यंत्र को हस्तगत करे।

१३२. पोलिंग स्टेशन पर दुर्व्यवहार के लिये शास्ति—(१) कोई व्यक्ति जो किसी पोलिंग स्टेशन पर मत देने के लिये नियत किये गये घण्टों के दौरान में दुर्व्यवहार करता है या अध्यक्ष के वैध निदेशों के मानने में विफल रहता है वह, उक्त अध्यक्ष द्वारा अथवा वहां पर लगाये गये किसी कार्य-वाहक पुलिस पदाधिकारी द्वारा, या ऐसे अध्यक्ष द्वारा एतदर्थ प्राधिकृत किये गये किसी व्यक्ति द्वारा, उक्त पोलिंग स्टेशन से हटाया जाय।

(२) उपधारा (१) द्वारा उक्त अधिकार-सत्ताओं का इस प्रकार प्रयोग नहीं किया जायेगा, जिस से किसी ऐसे निर्वाचक को जो कि अन्यथा मत देने का अधिकार रखता है, उस स्टेशन पर अपना मत दर्ज करवाने के अवसर से वंचित किया जाय।

(३) यदि कोई व्यक्ति जिसे कि किसी पोलिंग स्टेशन से इस प्रकार हटाया गया हो उस पोलिंग स्टेशन पर अध्यक्ष की आज्ञा के बिना पुनः प्रविष्ट होगा, तो वह तीन वर्ष तक कारावास के दण्ड का या जुर्माना का अथवा उभय दण्डों का भागी होगा।

(४) उप-धारा (३) के अधीन दण्डनीय अपराध हस्ताक्षेप्य अपराध होगा

१३३. निर्वाचनों पर वाहनों को अवैध रूप में किराया पर लेने या प्राप्त करने के लिये शास्ति—यदि कोई व्यक्ति किसी निर्वाचन के समय या निर्वाचन के सम्बन्ध में किसी ऐसे भ्रष्टाचार का दोषी हो जैसा कि धारा १२३ के

खण्ड ६—में निश्चित किया गया है, तो वह दो सौ पचास रुपया तक जुर्माना का भागी होगा ।

१३४. निर्वाचनों के सम्बन्ध में शासकीय कर्तव्यों का भंग—(१) यदि कोई व्यक्ति जिस पर कि यह धारा लागू होती है किसी उचित कारण के बगैर किसी ऐसे कार्य के करने या न करने का दोषी हो जिससे कि उसके शासकीय कर्तव्य का भंग हो जाता है, तो वह पांच सौ रुपया तक जुर्माना का भागी होगा ।

(२) ऐसे किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, किसी भी कार्य के करने या न करने के विषय में हानि पूरण का कोई भी वाद या अन्य वैधानिक कार्यवाहियों दायर न की जायंगी ।

(३) निर्वाचक नामावली रजिस्ट्री करने वाला पदाधिकारी [इलेक्टोरल रजिस्ट्रेशन अफसर], रिटर्निङ्ग अफसर, आसिस्टैन्ट रिटर्निङ्ग अफसर, अध्यक्ष, पोलिंग अफसर तथा निर्वाचकों की सूची तय्यार करने, या नामीकरण पत्रों [nominations], या उम्मीदवारियों को वापिस लेने, अथवा किसी निर्वाचन पर, मतों को दर्ज कराने या गिनने के कार्य सम्बन्धी किसी कर्तव्य के पालनार्थ नियुक्त किया गया कोई अन्य व्यक्ति यह सब वे व्यक्ति हैं जिन पर यह धारा लागू होती है; तथा इस धारा के प्रयोजनार्थ अभिव्यक्ति "शासकीय कर्तव्य" का इसके अनुसार ही भावार्थ होगा, किन्तु इसमें उन कर्तव्यों का समावेश नहीं होगा, जो कि इस ऐक्ट के अथवा जनता का प्रतिनिधित्व ऐक्ट १९५० ई० [१९५० ई० के ऐक्ट ४३] से अन्यथा, किसी अन्य विधि के द्वारा या अधीन, आरोपित किये गये होंगे ।

१३५ पोलिंग स्टेशन से मत परचों को हटाना अपराध होगा—(१) ऐसा कोई भी व्यक्ति जो किसी निर्वाचन पर, किसी पोलिंग स्टेशन से किसी मत-परचा को सकपट ले जायेगा या ले जाने का यत्न करेगा, अथवा ऐसे किसी कृत्य की घटना में जानबूझ कर सहायता देगा या उसके घटनार्थ किसी को प्रेरित करेगा, वह एक वर्ष तक कारावास के लिये या पांच सौ रुपया तक जुर्माना के लिये या दोनों के लिये दण्डनीय होगा ।

(२) यदि किसी पोलिंग स्टेशन के अध्यक्ष के पास इस मान्यता के लिये कारण हो कि कोई व्यक्ति उपधारा (१) के अधीन दण्डनीय कोई अपराध कर रहा है या कर चुका है ,तो ऐसा अध्यक्ष ऐसे व्यक्ति को, पूर्व इस के कि ऐसा व्यक्ति पोलिंग स्टेशन को छोड़ ।जाय उससे पहिले, गिरफ्तार करे, या उसे गिरफ्तार करने के लिये किसी पुलिस अफसर को निदेशित करे, तथा ऐसे व्यक्ति की तलाशी ले अथवा किसी पुलिस अफसर द्वारा उसकी तलाशी करवाये:

पर बन्धान यह होगा कि जब किसी स्त्री की तलाशी करवाना आवश्यक हो ज़ाय तो, उस दशा में, यह तलाशी सभ्य-व्यवहार को पूर्णरूपेण लक्ष्य में रखते हुए किसी अन्य स्त्री द्वारा की जायेगी।

(३) तलाशी। होने पर यदि गिरफ्तार किये व्यक्ति से कोई मतपरचा उपलब्ध हो तो वह अध्यक्ष द्वारा किसी पुलिस अफसर के संरक्षण में सिपुर्द कर दिया जायेगा, अथवा जब तलाशी किसी पुलिस अफसर द्वारा की जाय तो वह ऐसे पुलिस अफसर द्वारा अपने संरक्षण में ही रखा जायेगा।

(४) उप-धारा (१) के अधीन दण्डनीब अपराध हस्ताक्षेप्य अपराध होगा।

धारा १३६ अन्य अपराध तथा तत्सबन्धी शास्ति:—

(१) एक व्यक्ति निर्वाचन सम्बन्धी अपराध का तब दोषी माना जायेगा जब कि वह—

क—किसी भी नामीकरण पत्र को सकपट बिगाड़ता है या उसे सकपट नष्ट करता है; या

ख—किसी रिटर्निंग अफसर द्वारा, अथवा उसकी प्राधिकारसत्ता के अधीन, चिपकाई गई किसी सूची, सूचना या अन्य दस्तावेज को सकपट बिगाड़ता है, नष्ट करता है या अपनीत करता है; या

ग—किसी मत-परचा को अथवा किसी मत-परचा पर शासकीय चिह्न को या पहचान को किसी घोषणा को अथवा डाक द्वारा संप्रेषित मत-परचा के सम्बन्ध में जा सरकारी लिफाफा काम में लाया जाता है, उसको सकपट बिगाड़ता है या सकपट नष्ट करता है; या

घ—बगैर योग्य प्रधिकार-सत्ता के, किसी व्यक्ति को कोई मत-परचा देता है; या

ङ—किसी मत-परचा की पेटी (बैलट-बाक्स) में उस मत-परचा के अतिरिक्त, जिसके कि डालने के लिये वह विधि द्वारा प्राधिकृत किया गया है, सकपट कोई और चीज डालता है; या

च—उस वक्त निर्वाचन के लिये इस्तमाल किये जाने वाले किन्हीं मत-पर्चों या किसी मत-पर्चा की पेटी को, योग्य प्राधिकारसत्ता प्राप्त किये बगैर, नष्ट करता है, ग्रहण करता है, खोलता है या उनमें किसी अन्य प्रकार हस्तक्षेप करता है; या

छ—सकपट अथवा, स्थिति अनुसार, योग्य प्राधिकार-सत्ता के बगैर, उपर्युक्त कृत्यों में से किसी भी कृत्य के करने का यत्न करता है, या ऐसे किन्हीं भी कृत्यों के करने में जानबूझ कर सहायता देता है या एतदर्थ किसी को प्रेरित करता है।

(२) कोई भी व्यक्ति जो कि इस धारा के अधीन निर्वाचन सम्बन्धी किसी अपराध का दोषी होगा वह—

क—यदि वह रिटर्निङ्ग अफसर या असिस्टेन्ट रिटर्निङ्ग अफसर होगा या पोलिंग स्टेशन का कोई अध्यक्ष या निर्वाचन के सम्बन्ध में शासकीय कर्तव्य पर नियुक्त किया गया कोई अन्य पदाधिकारी या क्लर्क होगा तो वह दो वर्ष तक के लिये कारावास का या जुर्माना का अथवा दोनों दण्डों का भागी होगा।

ख—यदि वह कोई अन्य व्यक्ति होगा तो छः मास तक के लिये कारावास का अथवा जुर्माना का या दोनों दण्डों का भागी होगा।

(३) इस धारा के प्रयोजनार्थ एक व्यक्ति बतौर शासकीय कर्तव्य पर नियुक्त किये गये व्यक्ति के रूप में तब माना जायगा जब कि वह किसी निर्वाचन या निर्वाचन के किसी भाग के संचालन के कर्तव्य पर लगाया गया होगा, जिसमें कि मतों की गिनती अथवा उक्त निर्वाचन के बाद उपयोग में लाये गये मत-परचों तथा अन्य दस्तावेजों के लिये जिम्मेवार रहने का भी

समावेश होगा, किन्तु अभिव्यक्ति "शासकीय कर्तव्य" में इस ऐक्ट के अतिरिक्त या जनता का प्रतिनिधित्व ऐक्ट १९५० ई० (१९५० ई० के ऐक्ट ४३) के अतिरिक्त, किसी अन्य विधि के द्वारा या अधीन आरोपित किसी भी कर्तव्य का समावेश नहीं होगा।

(४) उपधारा (२) के खण्ड (ख) के अधीन दण्डनीय अपराध एक हस्तक्षेप योग्य अपराध होगा।

१३७ कतिपय अपराधों के विषय में अभियोग--(१) यदि निर्वाचन कमीशन, या अनुच्छेद ३२४ के खण्ड (४) के अधीन नियुक्त किसी स्थानीय कमिश्नर, अथवा राज्य के मुख्य निर्वाचन पदाधिकारी (चीफ इलेक्टोरल आफिसर) के पास इस मान्यता का कोई कारण हो कि किसी राज्य में किसी निर्वाचन के सम्बन्ध में धारा १२९ के अधीन या धारा १३४ के अधीन अथवा धारा १३६ की उपधारा (२) के खण्ड (क) के अधीन दण्डनीय कोई अपराध घटित हो चुका है तो, उस दशा में, उक्त निर्वाचन कमीशन, स्थानीय कमिश्नर, या स्थिति अनुसार, मुख्य निर्वाचन पदाधिकारी का कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसी जांच करवाये तथा ऐसे अभियोग दायेर करवाये जैसा कि उक्त घटना की परिस्थितियों के सम्बन्ध में उसे आवश्यक प्रतीत हो।

(२) कोई भी अदालत धारा १२९ के अधीन या धारा १३४ के अधीन अथवा धारा १३६ की उप-धारा (२) के खण्ड [क] के अधीन दण्डनीय किसी अपराध में हस्तक्षेप नहीं करेगी, जब तक कि निर्वाचन कमीशन या अनुच्छेद ३२४ के खण्ड [४] के अधीन नियुक्त किसी स्थानीय कमिश्नर अथवा समुचित राज्य के मुख्य निर्वाचन पदाधिकारी के आदेश द्वारा,. अथवा इन में से किसी एक द्वारा प्रदत्त प्राधिकार-सत्ता के अधीन, कोई फरियाद दायेर नहीं की जाती।

१३८. १८९८ ई० के ऐक्ट ५ का संशोधन.--भारतीय दण्ड विधि संहिता (जाप्ता फौजदारी) १८९८ ई० में--

(क) धारा १९६ में शब्द तथा अंक "धारा १२७" के बाद, शब्द, अंक

और शब्दान्तर" तथा धारा १७१ च, जहां तक कि उसका छद्मकारिता के अपराध से सम्बन्ध" अन्तर्यस्त होंगे;

(ख) अनुसूची २ में—

(१) भारतीय दण्ड विधान संहिता (ताजिरात हिन्द), १८६० ई० (१८६० ई० के ऐक्ट ४५) की धारा १७१-च (एफ) सम्बन्धी प्रविष्टि में पृष्ठ-विभाग २ के परिच्छेद से, शब्द "और छद्मकारिता" निकाल दिये जायंगे;

(२) इस प्रकार संशोधित उक्त प्रविष्ट के पृष्ठ-विभाग २ के परिच्छेद के बाद निम्नगत परिच्छेद अन्तर्यस्त होगा, यथा :—

"किसी निर्वाचन में छद्मकारिता।"

(३) पृष्ठ-विभाग (कालम) ३ में उप-खण्ड (२) द्वारा अन्तर्यस्त परिच्छेद के सामने निम्न परिच्छेद अन्तर्यस्त होगा, यथा:—

"बगैर वारन्ट के गिरफ्तार करे।"

(४) पृष्ठ-विभाग ४, ५, ६, ७ और ८ में, उप-खण्ड (२) द्वारा अन्तर्यस्त परिच्छेद के सामने, शब्द "वैसा ही" अन्तर्यस्त होगा,

(५) पृष्ठ-विभाग ३ में भारतीय दण्ड विधान संहिता की धारा १७१-छ (जी) सम्बन्धी प्रविष्टि में, शब्द "वैसाही" के स्थान पर शब्द "बगैर वारन्ट के गिरफ्तार नहीं करेगा" स्थानापन्न होगे।

परिशिष्ट

(ग)

संसदीय प्रक्रिया में प्रयुक्त प्राविधिक शब्दों के पर्याय

अतारंकित प्रश्न—Unstarred questions
अधिकार—Right
अधिनियम—Act
अधिपत्र—Warrant
अधिमान—Preference
अधिष्ठाता-मण्डल—Panel of Presiding Members
अधिष्ठाता सदस्य—Presiding Member
अधिवक्ता–Advocate, Counsel
अध्यक्ष—Speaker
अध्यादेश—Ordinance
अननुज्ञापित—Disallow
अनुपाती प्रतिनिधित्व—Proportional representation
अननुमोदन—Disapprove
अनिश्चित काल के लिये–Sine die
अनुच्छेद—Article
अनुज्ञा—Leave, Permission
अनुदान–Grant
अनुपस्थिति—Absence
अनुपूरक—Supplementary
अनुमति—Assent
अनुसूचित—Scheduled
अपमानजनक वक्तव्य—Defamatory Statement
अपमानजनक विवरण—Defamatoiy Statement
अपवर्जित—Excluded
अपास्त—Dropped
अपेक्षित—Required, Requisite
अभिभाषण—Address
अभिलेख—Recoid
अभ्यंश—Ouota
अभ्यर्थी—Candidate
अमान्य—Invalid
अल्पसूचित तारांकित प्रश्न—Short Notice question
अवशिष्ट—Residuary
अवहेलना—Breach
अविश्वास–No-Confidence
अव्यवस्थित कथन—Disorderly expression
असंगति—Irrelevance
असमाप्त—Unexhausted

असरकारी सदस्य—Private Member
असहमति—Disagreement

आ

आदेश—Order
आधिक्य—Surplus
आनुपातिक प्रतिनिधित्व—Propor. tional Representaion
आनुषंगिक—Consequential
आपाति—Urgent
आय-व्ययक—Budget
आह्वान—Summoning

उ

उपबन्ध—Provision
उपबन्धित—Provided
उपवेशन—Meeting, Sitting
उपस्थापन—Presentation
उपस्थिति—Attendance
उपाध्यक्ष—Deputy Speaker
उपान्त—Margin
उल्लंघन—Infringement

ए

एकल संक्रमणीय मत—Single transferable vote

औ

औपचारिक प्रस्ताव—Formal motion

क

करार—Agreemect
कारावास—Imprisonment
कार्य-विवरण—Agenda
काल्पनिक समस्या—Hypothetical Proposition
कार्य-स्थगन—Adjournment
क्रम—Order
क्रमागत अभ्यर्थी—Continuing Candidate
क्षमा याचना—Apology

ख

खण्ड—Clause

ग

गणपूर्ति—Quorum
ग्राह्य—Admissibility
ग्राह्यता—Admissibility

च

चक्रानुक्रम—Rotation
चर्चा—Discussion

छ

छोटी पोटली—Sub-parcel

ज

जांच—Investigation

त

तर्क—Argument
तारांकित प्रश्न—Starred question

त्याग-पत्र—Resignation

द

दोषारोपण—Imputations

न

नकारात्मक मत—Negative Vote

नाम-निर्देशन-पत्र—Nomination paper

निकाय—Body

निर्देश—Direction

नियन्त्रण—Control

नियम—Rule

नियमित प्रस्ताव—Formal motion, Substantive motion

निर्बन्ध—Limitation

निराकरण—Removal

निर्णायक मत—Casting Vote

निर्दिष्ट—Specified

निर्देश—Reference

निर्दोष-सिद्ध—Exculpation

निर्बन्धन—Restriction

निर्योग्यता—Disability

निर्वचन—-Interpretation

निर्वाचन—Election

निर्वाचनाधिकारी—Returning officer

निलंबन—Suspension

निष्कर्ष—Inference

निष्कासन—Expulsion

निस्तारण—Disposal

न्यूनतम मत प्राप्त करने वाला—Lowest on the poll

प

पञ्जिका—Register

पञ्जी—Register

पदेन—Ex-officio

परन्तु—Provided

परन्तुक—Proviso

परामर्श—Cousulation

परिणाम पत्र—Result Sheet

परिशिष्ट—Appendix

परिषद्—Council

परिसीमा—Limitation

पर्ची—Lottery

पात्र—Eligible

पारण—Passing

पुनरावृत्ति—Repetition

पुनःस्थापन—Introduce

पुनःस्थापना—Introduction

पूरक—Supplementary

पूर्वता—Precedence

पृथक् कर देना—Ommission

पोटली—Parcel

प्रक्रम—Stage

प्रकीर्ण—Miscellaneous

प्रख्यापित—Promulgated
प्रतिज्ञान—Affirmation
प्रतिपत्री—Proxy
प्रतिरूप—Counterfoil
प्रतिलिपि—Copy
प्रतिवेदन—Report
प्रतिहस्ताक्षर–Countersignature
प्रत्यायोजन—Delegation
प्रत्यावर्तन—Return
प्रपत्र—Form
प्रमाणीकरण—Authentication
प्रवर समिति–Select Committee
प्रविष्टि—Entry
प्रशासन—Administration
प्रश्नोत्तर—Questions and Answers.
प्रस्ताव—Motion
प्रस्तावक—Mover
प्रस्तावना—Preamble
प्रस्थापक—Proposer
प्राक्कलन—Estimate
प्राथमिकता—Priority
प्रारम्भिक मत—Original Vote

ब

बिम्ब—Disc

भ

भर्त्सना—Admonition

भारसाधक सदस्य—Member-in-Charge
भाषा—Language
भिन्न की उपेक्षा—Neglect of fraction

म

मंजूरी—Sanction
मतदान—Voting
मन्तव्य—Intention
मन्त्री—Minister
मान्य—Valid
मूल्य—Value
मूल्य की हानि—Loss of value
मौखिक—Oral

य

यथास्थिति–As the case may be
यथोचित परिवर्तन—Mutatis Mutandis
याचिका—Petition

र

राज्यपाल—Governor
राय—Opinion
राष्ट्रपति—President
रिक्तता—Vacancy
रूप—Form
रूपभेद—Modification

ल

लगातार—Consecutive

लम्बित सूचनाएं—Pending Notice
लिपि—Script
लेखानुदान—Vote on account
लेख्य—Document

व

वक्तव्य—Statements
वण्टन—Allot
वर्ग—Class
वर्गीकरण—Classification
वाद-विवाद—Debate
वाद-विषय—Subject matter
वापसी—Withdrawal
विघटन—Dissolution
वित्त मन्त्री—Finance Minister
वित्तीय—Financial
विधान—Legislation
विधान निर्माण—Legislation
विधान मण्डल—Legislature
विधान विभाग—Legislative Department
विधेयक—Bill
विनियम—Regulation
विनियोग—Appropriation
विनिश्चय—Decision
विभाजन—Division
विमति टिप्पणी—Minute of Dissent
विवरण—Statement
विवाद—Debate
विवादान्त—Closure
विशेषाधिकार—Privilege
विहित—Prescribed
वैकल्पिक—Alternative
वैधानिक प्रश्न—Point of order
व्यंगात्मक वाक्य—Ironical Expression
वृत्तपत्र—Journal
व्यपगत—Lapse
व्यवस्थित प्रस्ताव—Substantive motion
व्याख्या—Explanation
शक्ति—Power
शपथ—Oath
शर्तें—Conditions
शलाका—Ballot
शाब्दिक—Verbal
शास्ति—Reprimand
शिष्टाचार—Decorum
शीर्षनाम—Title

स

संकल्प—Resolution
संक्रमण पत्र—Transfer-sheet
संक्रमित—Transferred
संचार—Communieation

संयुक्त प्रवर समिति—Joint select Committee

संविधान—Constitution

संशोधन—Amendment

सचिव—Secretary

सत्र—Session

सत्रावसान—Prorogation

सदन—House

सदस्य—Member

सदस्य को इंगित करना—Naming a member

सन्तुलन-पत्र—Ballance sheet

सन्देश—Message

समाहान—Convene

सम्बद्ध मन्त्री—Minister Concerned

सभा—Assembly

सभा की कार्यवाहियां—Proceedings of the Assembly

सभापति—Chairman

सभासचिव—Parliamentary Secretary

समर्थक—Seconder

समान—Identical

समाप्त—Exhausted

समिति—Committee

सम्मति—Consent

सिद्धान्त—Principle

सिपारिश—Recommendation

सुसंगत—Relevant

सूक्ष्म परीक्षण—Scrutiny

सूचना—Notice

सूचना पंजी—Notice Register

स्थगन—Adjounment, Postponement

स्वविवेक—Discretion

हटा देना—Ommission

हस्ताक्षर करने वाला—Signatory

सहायक पुस्तकों की सूची

१—अम्बिका प्रसाद वाजपेयी—हिन्दू राज्यशास्त्र
२—कन्हैयालाल वर्मा—संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान
३—जवाहरलाल नेहरू—हिन्दुस्तान की कहानी
४—डा० पट्टाभि सीतारमय्या—कांग्रेस का इतिहास
५—डा० ब्रजमोहन शर्मा—राजशास्त्र के मूल सिद्धान्त
६—विश्वनाथ राय—पार्लमेंटरी शासन पद्धति
७—भारत का संविधान

1. A. B. Keith— A Constitutional History of India
2. „ „ —The Constitution of England
3. Amar Nandi—The Constitution of India
4. A. Ramswami Ayengar—The Indian Constitution
5. Campion—Introduction to the Procedure of the House of Commons.
6. Canway—The Failure of the Federalism in Australia
7. Chamier—Parliamentary Procedure in India
8. Courtenay Ilbert—Parliament, Its History, Constitution and Practice-
9. C. S. Emden—The People and the Constitution
10 Dicey—Government of India
11. D. G. Ritchie—Principles of State Interference
12. Dr. W. I. Jennings—Parliament
13. Edward Porritt—The Unreformed House of Commons 2 Vols.
14. Eric Taylor—The House of Commons at Work
15. G. N, Joshi—Constitution of India
16. Garner—Political Scieuce and Government

17. G. V. Mavalankar—Parliamentary Life in India
18. Horwill—Usages of the American Constitution
19. Jermey Bantham—Essay on political Tactics
20. J. A. R. Marriot—English Political Institutions
21. J. J. Rousseau—Social Contract
22. J. F. S. Ross—Parliamentary Representation
23. Josef Redlich—The procedure of the House cf Commons. 3 Vols.
24. Kenneth Mackenzie—The English Parliament.
25. Laski—Parliamentary Government in England.
26, ,, —Grammar of Politics.
27. ,, American Democracy.
28. Munro—Governmens of Europe.
29 ,, ,, The Constitution of United States
30 N. Gangulee—Constituent Assembly fcr India
31. Ogg—English Goverment and poiitics
32. Our Constitution, published by the Covt of India
33 P. D. Basu–A Commentary on thc constitution of India
34 P. M. Briers and others—Papers on Parliament
35. Prof. Dicey—Law of the Constitution
36. Quintin Hogg—Parliament : A Reader's Guide
37. Punnaih—Constitutional History of India
38. Ramsey Muir—How Britain is Governed
39—Robert Luce—The Legislative Procedure
40. R. R. Saksena—A Handbook of Indian Legislatures
41. S. A. Khan—The Indian Federation
42. Sir Fedrick Pollock–History of the Science of politics

43. Sir Cecil Carr— Concerning English Administrative Law
44. Sir R. Palgrave— The House of Commons,
45. Sizwick—Elements of Political Science
46. Sapre—Indian Constitution and administration
47. T, Erskine May—Parliamentary Practice
48. U. P. Legislative Council Proceedings
49. Viscount Bryce—Modern Democracies
50. Walter Bagehot—The English Constitution
51. W. Jeans—Parliamentary Reminiscences
52. Willoby—Nature of the State
53. W. Stubbs—Constitutional History of England

(दूसरा संस्करण प्रकाशित होगा)

रियासती इतिहास के खूनी पृष्ठों की बोलती प्रतिमा

"देशी राज्य और जन-आन्दोलन"

(भूमिका लेखक डा० पट्टाभि सीतारमय्या)

पर

देश के गन्य-मान्य नेताओं और पत्रों की सम्मतियां

भूतपूर्व कांग्रेस-अध्यक्ष के शब्दों में—

"........अंग्रेजों के संरक्षण में रहने वाले राजाओं के किलों के भीतर बन्द पांच सौ साठ से अधिक रियासतों की उनके लौह-पंजों से मुक्ति की कहानी किसी अंश तक प्रेरणा देने वाली है। इस प्रकार की कहानी टिहरी-गढ़वाल के श्री परिपूर्णानन्द ने, जो कि अपनी लम्बी यातनाओं तथा महान् त्याग के कारण इस कार्य के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं, विशुद्ध एवं धारा-प्रवाह हिन्दी में लिखी है। वस्तुतः प्रत्येक रियासत की मुक्ति की कहानी उन नवयुवकों के बहे हुए खून, पसीने और आंसुओं की कहानी है जिनके परिश्रम से ऐसा चमत्कारपूर्ण परिणाम निकला है।........मुझे इसमें सन्देह नहीं कि यह पुस्तक कालेज की पाठ्य पुस्तकों में होगी और भारतीय नागरिकों के लिये प्रतिदिन काम में आने वाली एक पुस्तिका (Manual)।"

श्री अशोक मेहता की अभिव्यञ्जना वृत्ति में—

"........पुस्तक पर दृष्टि पड़ते ही लगता है कि वह रोचक और लाभ-दायक होगी।"

माननीय लालबहादुर शास्त्री लिखते हैं—

"देशी राज्यों का जन-आन्दोलन भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन की एक कड़ी है। देशी राज्यों की जानकारी के बिना राष्ट्रीय आन्दोलन की कहानी अधूरी रह जाती है।...प्रस्तुत पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी, इसमें सन्देह ही क्या।"

हिन्दुस्तान (दैनिक) दिल्ली—

"भारतीय जन-आन्दोलन से सम्बन्धित इस सवा सौ पृष्ठ की पुस्तक के २५ अध्यायों में भारतीय राज्यों में जन-आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।........

"देशी राज्य सम्बन्धी पुस्तकें थोड़ी हैं। आवश्यकता है कि इस प्रकार की पुस्तकों को प्रोत्साहन दिया जाय।"

नव भारत (साप्ताहिक) बम्बई—

"........लेखक ने कुशलता से स्थान-स्थान पर नेताओं के वक्तव्यों, प्रस्तावों, पुस्तकोंतथा अन्य प्रकार की सामग्री का उल्लेख करते हुए तथा उनमें से यथायोग्य उदाहरण देते हुए अपनी चीजों को और भी पुष्ट किया है और हमारे सम्मुख बड़ी ही सरलता से वास्तविकता और सत्यता को स्पष्ट किया है। उस समय से आज तक के रियासतों सम्बन्धी अधिवेशनों, सत्याग्रहों और जन-आन्दोलनों का, तथा देश की प्रमुख घटनाओं का, जिनका कि रियासतों से कुछ सम्बन्ध था, वर्णन भी संक्षेप में योग्यतापूर्वक किया गया है जो कहीं भी नीरस नहीं होने पाया। रियासतों की पृष्ठभूमि और गत इतिहास को समझने के लिये ये छोटी-छोटी रूप-रेखायें महत्वपूर्ण भी हैं और मनोरंजक भी, और यही इनको एक बड़ी विशेषता है।"

—:*:—

———